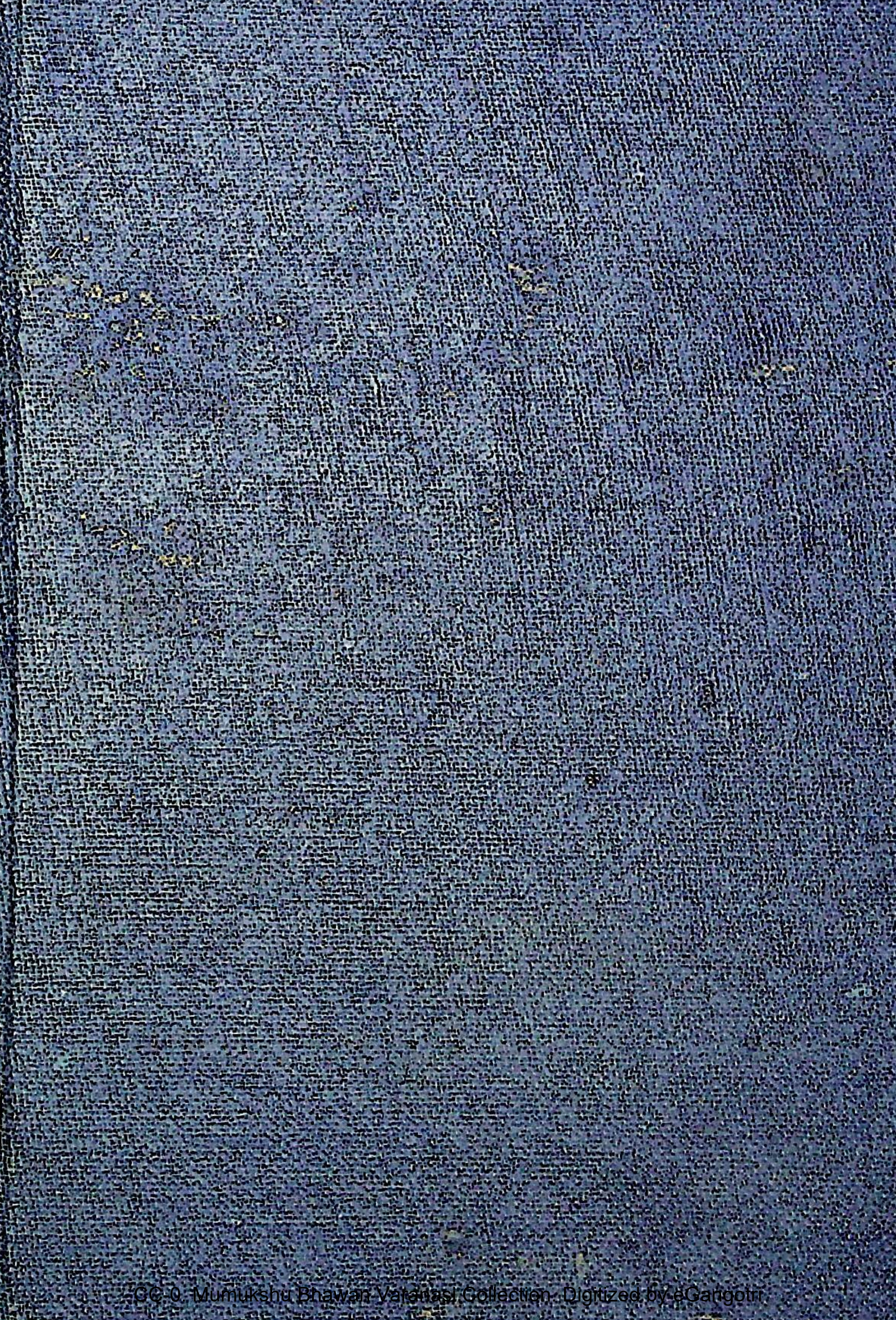


* श्रीयुगलकिशोरो जयति *

* श्री *

व्यास-वाणी

व्यास भक्त से भक्त हैं, सन्तन अति सुख देत।
तनकर मनकर वचनकर, परे विपिन के खेत॥

प्रकाशक—
श्री १०८ श्रीहरिराम व्यास वंशोद्भव
आचार्य राधाकिशोर गोस्वामी।

श्रीयुगलकिशोरो जयति

श्रीव्यास-वाणी

[सिद्धान्त और रस सहित]





व्यास भक्त से भक्त हैं,
सन्तन अति सुख देत।
मन कर तन कर वचन कर,
परे विपिन के खेत॥
'ललित'



प्रकाशक-

श्रीहरिराम व्यासवंशोद्भव-

आचार्य श्रीराधाकिशोर गोस्वामी.

प्रथम-संस्करण
[१९९४ वि० सम्वत्]

न्यौछावर—अजिल्द १)
सजिल्द १।)

मुद्रक—
बा० प्रभुदयालु मीतल,
अग्रवाल प्रेस, वृन्दावन।

वक्तव्य

[लेखक—श्रीनन्दकिशोर गोस्वामी]

लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात् प्रेमी पाठकों के कर कमलों में 'श्रीव्यास-वाणी' का नवीन संस्करण भेंट करते हुए हमें नितान्त प्रसन्नता हो रही है।

प्राचीन प्रतिलिपि में जिस प्रकार शब्दों को पाया गया, उसी प्रकार प्रकाशित संस्करण में रक्खा गया है। जैसे "श" की जगह पर "स", "ण" की जगह पर "न" इत्यादि।

शीघ्रता में छपने के कारण प्रूफ संशोधन में जो त्रुटियां रह गई हों, प्रेमी पाठक ठीक करके पढ़ लेंगे। जैसे "स्याम" के स्थान पर "स्मास" इत्यादि छप गया है।

११७ संख्या की साखी श्री ललितमोहन देवजी की हैं जोकि भूल से प्रेस में चली गई, और छाप दी गई । इसके लिये पाठक क्षमा करेंगे ।

श्रीव्यासजी रचित "नव-रत्न" ग्रन्थ (संस्कृत) भी शीघ्र ही हिन्दी टीका के सहित छापने का विचार किया गया है ।

भूमिका-लेखक श्रीइन्द्रजी ब्रह्मचारीजी को विशेष धन्यवाद है, आशा है, श्रीब्रह्मचारीजी "नव-रत्न" का हिन्दी अनुवाद भी शीघ्र ही करके प्रेमी पाठकों के कर-कमलों में भेंट करने का सुअवसर प्रदान करेंगे ।

श्रीव्यासजी का मंगल बाबा जुगलदासजी ने लिखा था । वह भी प्रकाशित संस्करण में उपस्थित किया जाता है ।

माघ शुक्ला ११,
संवत् १९९४ वि०

विनीत—
श्रीनन्दकिशोर गोस्वामी ।





प्राक्कथन

नमो नलिन नेत्राय वेणुवाद्य विनोदिने ।
राधाधर सुधा पान शालिने वनमालिने ॥
नूतन जलधर सञ्चये गोप वधूटी दुकूल चौराय ।
तस्मै कृष्णायनमः संसार मही रुहस्य वीजाय ॥



अनन्त अलौकिकानन्दमय भगवान् की अनुपमा अनुकम्पा से परात्पर परिपूर्ण पुरुषोत्तम परमानन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की प्राण प्रेयसी जू की परमान्तरङ्गा अङ्गजा सहचरी श्रीविशाखा जू के पूर्णावतार, करुणा कूमार, प्रेमागार, सनाढ्य द्विजाढ्य कुल कुमुद सुधाकर, रसिकेन्द्र चक्र चूड़ामणि श्रीव्यासवंशीय सम्प्रदाय प्रतिष्ठायकाद्याचार्य, श्री १०८ श्रीव्यासजी महाराज की श्रीयुगल प्रेम विकासिनी, रसिकोन्मादिनी, समुज्वल रस



सञ्चारिणी वाणीजी का यथार्थ सुसम्पादित संस्करण 'व्यासवाणी' के नाम से रसिक भक्तजनों के समक्ष रखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। यद्यपि अद्यावधि दो एक संस्करण छप चुके हैं तथापि वे अयथावत् होने से सन्तोषजनक नहीं हैं। श्रीव्यासजी के सम्बन्ध में प्रचलित कतिपय किम्बदन्तियों और साम्प्रदायिक मतों के कारण कुछ भ्रान्त धारणाएँ फैल गई हैं, उन्हीं का निराकरण करना निम्नलिखित पंक्तियों के लिखाने का कारण है।

भारतवासियों के इतिहास में १६ वीं शताब्दी का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष पर विधर्मियों का पूर्ण प्राय आधिपत्य हो चुका था। भारतीय, शारीरिक, राजनैतिक सत्ता खो चुके थे। तीव्र वेग से विजातीय सभ्यता और संस्कृति, जनसाधारण पर अपनी मायामयी मरीचिका से मोह का जाल फैला रही थी। हिन्दू संस्कृति, सनातन-धर्म, प्राञ्च सभ्यता आदि के निर्देशक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में होने के कारण लोग उनसे विमुख हो रहे थे। निकट था कि विजातीय संस्कृति में लोग विमूढ़ हो जाते और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की अपौरषेय वाणी—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तथात्मानंसृजाम्यहम्।

दा

के अनुसार भगवान् की लोक संग्राहिका अनंत करुणा से, उस मोह जलचक्र में पड़ी हुई धर्म की पावन नौका के उद्धार के लिये अनेक चतुर नाविकों का आविर्भाव हुआ। श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीवल्लभाचार्य चरण, श्रीसूरदासजी, श्रीनंददासजी, स्वामी हरिदासजी एवं श्रीहित हरिवंशजी और रूपसनातन गोस्वामीजी प्रभृति आचार्यों ने अपनी पवित्र एवं मधुर वाणी द्वारा अत्याचार से जर्जरित अनन्य गतिक, विमूढ़ जनसमाज को आश्वासन दिया। उनके शुष्क प्राणों में प्रेमलक्षणा भक्ति के अमृत रस को प्रवाहित कर नवचैतन्य प्रदान किया। भगवान् के लीलामय मधुर स्वरूप के, साधु परिरक्षक मंगलमय पावन दर्शन कराकर कृतार्थ करदिया। जनसमाजके हृदयमें नवीन भाव, नूतन आशा, रसमय भक्ति के प्रवाहों से आन्दोलित हो उठे। उस समय श्रीतुलसीदासजी आदि कवियों ने श्रीरामचन्द्र भगवान् के चरित्र का गान किया और श्रीसूरदासजी आदि महाकवियों ने श्रीकृष्णभगवान् के यश से नभोमंडल को गुँजाया। श्रीश्याम सुन्दर के परम भक्तों ने श्रीकृष्ण के प्रेममय स्वरूप का आधार लेकर प्रेमतत्व की अनुपम व्यंजना की। 'श्रीकृष्ण के जिस अनन्त माधुरी सदन अलौकिक रूप का वर्णन इन परम रसिकाचार्यों ने किया है, वह रूप अनन्त माधुर्य की तरंगों से

परिपूरित अगाध सौंदर्य का समुद्र है। उस सार्वभौम प्रेमालम्बन के सन्मुख मनुष्य का हृदय अलौलिक प्रेमालोक से फूला-फूला फिरता है।* श्रीयुगल रस रसिक महानुभावों ने श्रीकृष्ण परात्पर रूप के नित्य विहार का वर्णन जयदेव और विद्यापति के गेय पदों से परम सरस मधुर और भावपूर्ण वाणी में किया है।

उस समय—जबकि श्रीराधाकृष्ण के अलौकिक महिमा गान की—लोकोत्तर लावण्यमयी लीलाओं की अमृतमय रस-सरिता तुच्छ कूल मर्यादाओं का भी अतिक्रमण कर समस्त भक्तजनों की--अन्तर्चेतना को परिस्रावित कर रही थी--उसी समय, महर्षि गीत-पुण्य कीर्ति भागीरथी सम पुण्यतोया श्रीवेत्र-वती नदीके तटपर अवस्थित बुंदेलखण्ड की तत्कालीन राजधानी ओरछा नगरी में सम्बत् १५६७ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ के परम पुनीत दिवस सनाढ्य कुल कौस्तुभ माध्वमत मार्तण्ड पं० श्री १०८ श्री सुमोखन शुक्लजी के घर श्रीमती पद्मावती की धन्य कुक्षि से रसिकेन्द्र शेखर पं० श्री हरिराम व्यासजी का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीव्यासजी के पितृवंश में लक्ष्मीजी की विशेष रूप से कृपा थी। उनके 'वंश में इतना अधिक वैभव था कि

---

* आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हि० सा० का इतिहास।

जिसके लिये श्री आधिभौतिक श्रीलक्ष्मीजी का उद्यापन गया था। अद्यावधि वहाँ व्यासपुरा प्रसिद्ध है। आज तक ध्वस्त प्रायः ओरछा नगरी की उजड़ी अट्टालिकायें, वेत्रवती का काञ्चना घाट, उक्त वंश की अद्भुत समृद्धि और महान् वैभव के साक्षी हैं। ऐसे समृद्ध गृह में श्रीव्यासजी ने जन्म लिया। पितृदेव ने बड़ी धूम-धाम से जन्मोत्सव मनाया। समस्त ओरछा निवासी जनता उक्त उत्सव से कृतार्थ हुई। श्रीव्यासजी महाराज के पितृदेव कलिपावनावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु के गुरुभाई श्रीमाधवदासजी के शिष्य थे, अतएव वैष्णव समाज का उत्सवमें खूब स्वागत सत्कार हुआ। श्रीव्यासजी महाराज छोटी ही अवस्थामें व्याकरणादि शास्त्रों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया और जब यज्ञोपवीत संस्कार होगया तो वेदादि का अध्ययन किया।

जब व्यासजी की अवस्था वैष्णव दीक्षा के योग्य हुई, तब इनके पितृदेव ने अपने श्रीगुरुदेव के आने पर उन्हीं की दीक्षा दिलाने का निश्चय किया परन्तु श्रीव्यासजी की निष्ठा पितृ-चरणों में अधिक थी, अतः आपने पितृदेव से प्रार्थना कर युगल-मन्त्र सविधि ग्रहण किया। जब श्रीमाधवदासजी ओरछा पधारे तब उनके सहचर्य से श्रीमद्भागवत सम्बन्धी शंकायें दूर हुईं। और पराभक्ति का और अधिक विकाश हुआ। योग्य

अवस्था में एक सुकुलीन ब्राह्मण की पुत्री श्रीसुशीलाजी के साथ श्रीव्यासजीका पाणि-ग्रहण हुआ। आपकी अद्भुत विद्वद्धुरीणता एवं अपूर्व प्रेमानुराग देखकर तत्कालीन ओरछा नरेश श्रीमहाराजा मधुकरशाह ने आप से गुरु दीक्षा ग्रहण की थी।

पं० हरीराम व्यासजी ने वेदादि तथा षट् शास्त्रों का अध्ययन कर अगाध पाण्डित्य प्राप्त किया था। उन्हों ने प्रारम्भ में ही अपनी प्रखर प्रतिभा से अनेक विद्वानों को वाद-विवाद में परास्त किया था। शीघ्र ही उनकी विद्वत्ता का यश चारों ओर फैल गय। जब एक बार शास्त्रार्थ की प्रबल इच्छा हुई तो आप कई विद्वानों के साथ काशी पहुँचे और वहाँ के बड़े-बड़े विद्वानों को परास्त किया। तब तक आप बहुत से पण्डितों को परास्त कर चुके थे और बहुत से विजय-पत्र आपके पास थे। काशी में भी आपको बहुत से विजय-पत्र प्राप्त हुए। एक रात्रि को जब आप विश्राम कर रहे थे, स्वप्नावस्था में श्रीविश्वनाथजी ने आपको दर्शन दिये और कहा—"आप इधर वादविवाद में क्यों लगे हैं? क्या आपको अपना वह वचन भूल गया है कि, "हरि हम कब ह्वै हैं ब्रजवासी।" इस प्रकार प्रबोधन पूर्व संस्कार सहसा जागृत हो उठे और प्रातःकाल व्यासजी ने अपने सम्पूर्ण विजय-पत्र श्रीविश्वनाथ भगवान् के अर्पण कर दिये।

व्यासजी के विचारों और भावनाओं में महत् परिवर्तन होगया। अब शुष्क विवाद को छोड़कर एकान्त में प्रियतम की आराधना करने की लालसा बलवती होउठी। काशी के विद्वानों में इस घटना से बड़ी हलचल मची और उन्होंने सभा करके पण्डित हरिरामजी को "व्यास" की पदवी प्रदान की। तभी से पण्डित हरिराम शुक्ल श्रीव्यासजी के नाम से विख्यात हुए। आप शीघ्र ही ओरछा लौट आये और वेत्रवती के तट पर एकान्त स्थान तुङ्गारण्य पर आश्रम बना श्रीराधाकृष्ण की उपासना में एकान्त रूप से रत होगये। अविरत साधना और अलौकिक प्रेम के फलस्वरूप प्रियतम ने प्रसन्न होकर श्रीनवलकिशोर रूप में दर्शन दिये। आप निकुंज में श्रीविशाखा सखी के स्वरूप हैं। रसिक-संसार को सर्वोत्कृष्ट समुज्वल रस परिवेशन के अर्थ ही आप को श्रीयुगल सरकार ने भूतल पर प्रगट किया था।

ओरछा नरेश श्रीमहाराज मधुकर शाह आपके प्रिय शिष्य थे। महाराज एक-निष्ठ गुरु-भक्त थे, और प्रति दिन गुरु महाराज के चरण स्पर्श करने का उनका नियम था। शरद् पूर्णिमा का दिन था। महाराज ने अपने यहाँ बड़े समारोह से उत्सव सम्पन्न किया। उसी उत्सव की व्यग्रता के कारण महाराज उस दिन गुरु दर्शन न कर सके। रात्रि में उत्सव की

समाप्ति पर जब महाराज अन्तःपुरमें पधारे तब महारानीसे पश्चा-तापोपयुक्त शब्दों में कहने लगे कि आज मैं उत्सव की व्यग्रता से श्रीगुरु चरण दर्शनों को नहीं जासका। यह सुन महारानी ने कहा कि वास्तव में यह विशेष त्रुटि हुई। उत्सव और उत्सवा-धीष श्यामसुन्दर के सानिध्य का सौभाग्य तो श्रीगुरु चरण प्रताप से ही प्राप्त हुआ है। अब भी अवसर है, पधारिये! अवश्य गुरु पाद-पद्म दर्शन कीजिये, मैं भी आपकी सेवा में चलती हूँ। तब महारानी के साथ अर्द्धरात्रि में श्रीगुरुचरण के दर्शनों को चले।

त्वंगारण्य में आज अपूर्व शोभा थी। निशीथ की निस्तब्धता और पुण्यतोमा वेत्रवती तट, शरद् का निर्मल राकाशशि अपनी शत-शत किरणों से सुधा वर्षा कर रहा था। श्रीव्यासजी आज शरद् की निर्मल रास रजनी में प्रेम विह्वल होकर रासोत्सव में लगे थे। प्रिया प्रियतमजू को प्रसन्न करने के लिये अनुराग विह्वल होकर सपत्नीक नृत्य में रत थे। उसी प्रेम-विवश दशा में राजा और रानी दोनों ने श्रीगुरुदेव के दर्शन किये। दृष्टि पड़ते ही दोनों ऐसे मुग्ध हुए कि स्वयं प्रेमावेश में नृत्य में रत हो गये। इस अपूर्व उत्सव को देवताओं ने देखकर जयकार सहित पुष्प वृष्टि की। भक्त हृदय की तल्लीनता देखकर

स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् ने प्रिया सहित प्रकट होकर दर्शन दिये। पुष्प भूमि पर गिरते ही सुवर्णमय होगये। अद्यावधि ओरछा की गद्दी पर राज्याभिषेक के समय महाराजाओं को उन पुष्पों के दर्शन कराये जाते हैं। इसी प्रकार शारदीय रासोत्सव सम्पन्न हुआ और श्रीव्यासजी ने महाराज को अनन्य-भक्त का वरदान दिया।

श्रीवृन्दावन आगमन

श्रीकृष्ण भगवान् की पूर्ण कृपा तो श्रीव्यासजी पर थी ही, हृदय में युगल रूप के प्रति अनुराग अपनी पराकाष्ठाको पहुँचा तो उनकी श्रीवृन्दावन जाने की उत्कट उत्कण्ठित हो उठी। अपूर्व वैभव और देव-दुर्लभ मान सम्मान को तृण के समान त्याग-कर श्रीव्यासजी संवत् १६१२ में ओरछा से श्रीवृन्दावन धाम चले आये।

ओरछासे व्यासजीके चले आने पर महाराज मधुकरशाह को सत्संग के अभाव से एवं श्रीगुरुचरण विरह में ओरछा सूना-सूना मालूम होने लगा। "बिछुरत एक प्राण हर लेही" यह तुलसीदासजी का बचन उस दुःख को व्यक्त करता है जो साधु-जनों के वियोग से उत्पन्न होता है। जब महाराज को धैर्य न रहा तब आप श्रीव्यासजी को लिवाने को वृन्दावन पहुँचे।

नव



भक्त-माल की टीका में श्रीप्रियादासजी ने इस घटना का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं—

आये गृह त्यागि वृन्दावन अनुराग करि,
गयो हियो पागि होय न्यारौ तासों खीजिये।
राजा लेन आयो ऐ पै जाइबौ न भायो,
श्रीकिशोर उरझायो मन सेवा मति भीजिये ॥

महाराज ने गृह लौटने के लिये श्रीव्यासजी से अनुरोध किया और कहा कि क्या ओरछा में वृन्दावन नहीं है। कहा है—

ओरछा (श्री) बृन्दावन सों धाम,
सात धार मिल वहत वेतवा जमुना जल उनमान।"

यह बचन सुनकर श्रीव्यासजी ने गम्भीरता पूर्वक महाराज को श्रीधाम वृन्दावन का परिचय यथार्थ रूप में दिया और कहा कि श्रीवृन्दावन तो श्रीवृन्दावनचन्द्र का साक्षात् श्रीविग्रह ही है, "पञ्च कोशात्मकं भूमि वनं मे देह रूपकं" अतएव इस पवित्र भूमि में वास करने से ही युगल-रूप की कृपा और साक्षात्कार प्रत्येक समय प्राप्त होता है। इस प्रकार गुरु के मुख से श्रीधाम का यथार्थ परिचय प्राप्त कर महाराज ने भी श्रीवृन्दावन वास का निश्चय कर लिया। अस्तुः—

इसके प्रथम कि मैं श्रीव्यासजी के विषय में कुछ लिखूँ, यह उचित प्रतीत होता है कि श्रीव्यासजी के सम्बन्ध में एक प्रचलित धारणा का उल्लेख करूँगा, बात यह है कि कुछ लेखक महानुभावों ने व्यासजी के सम्बन्ध में लिखा है कि वृन्दावन आकर उन्होंने श्रीहितहरिवंशजी से शास्त्रार्थ की इच्छा प्रगट की, परन्तु उनके एक पद "यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहु कोने सचुपायौ।" को सुन कर उनसे दीक्षा लेकर शिष्य हो गये।' इसी एक बात को "एकं सद् विप्रा वहुधा वदन्ति" के अनुसार नाना प्रकार से मसाला लगाकर घटा-बढ़ा के लिख कर लोगों ने अपनी गवेषणा की इति श्री कर दी है। परन्तु श्रीव्यासवाणी की आन्तरिक आलोचना से यह स्पष्ट प्रकट है कि यह बात निराधार है, क्योंकि व्यासवाणी में श्रीहितहरिवंश जी का स्थान-स्थान पर उल्लेख होने पर भी एक सखा, जैसे दूसरे अपने स्नेही का उल्लेख करता है उसी प्रकार किया गया है। श्रीहिताचार्य के तिरोधान के ऊपर जो पद लिखा गया है यदि वारीकी से उसे देखा जाय तो उक्त कथन आप ही स्पष्ट हो जायगा! वह पद यों है:—

हुतो रस रसिकन को आधार।
बिन हरिवंसहि सरस रीति को कापै चलिहै भार॥
को राधा दुलरावै गावै, वचन सुनावै चार।

वृन्दावन की सहज माधुरी कहिहै कौन उदार ॥

इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उपर्युक्त कथन स्पष्ट दिखाई देता है। अन्यत्र भी जिन स्थानों पर श्रीहिताचार्य का प्रसङ्ग आया, इसी प्रकार उल्लेख किया गया है। जैसे श्रीव्यासवाणी में ऐसे अनेक पद हैं, जिनमें श्रीहरिदासजी तथा श्रीहरिवंशजी के प्रति श्रीव्यासजी ने सखा-भाव प्रदर्शित किया है। भला कोई शिष्य भी कहीं अपने गुरु के प्रति सखा-भाव रखता है। प्रेमी तथा विचारशील पाठकों के अवलोकनार्थ श्रीव्यासवाणी का एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है। अवश्य ही यह भ्रम कुछ लोगों को पाठ-भेद के कारण हुआ है। जैसे—

"व्यासहि गुरु हरिवंश बताई अपनी जीवन मूर।"

इस स्थान पर ठीक पाठ "व्यासहि हित हरवंश बताई अपनी जीवन मूर" प्राचीन लिखित पुस्तकों में हित हरिवंश ही पाठ है। कुछ महानुभावों ने कई प्रक्षिप्त पद्यों को मिलाकर इस सिद्धान्त को पुष्ट करने की चेष्टा की है। उनसे हम क्या कहें? श्रीव्यासजी तो उदार हृदय के महात्मा थे। उन्होंने सभी सम्प्रदाय—सभी साम्प्रदायिक मार्गों के सन्तों का बड़े आदर के साथ स्मरण किया है--

व्यास कुलीननि कोटि मिलि पण्डित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पान ही तुलैं न तिनके सीस॥

इस प्रकार सभी सन्तों का उन्होंने श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। हम प्रथम ही लिख आये हैं कि उन्होंने अपने पिता श्रीशुक्लजी से वैष्णव दीक्षा ग्रहण की थी और उन्होंने स्थान-स्थान पर स्पष्टतापूर्वक यही निर्देश किया है। श्रीमाध्व सम्प्रदायान्तर्गत श्रीव्यासजी ने एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ "नवरत्न" संस्कृत में तथा नित्य उपासना के लिये व्रज-भाषा में एक ग्रन्थ "व्यास-वाणी" नाम से निर्माण किया है। जिसके मङ्गलाचरण में आपका प्रसिद्ध पद है--

वन्दौं श्रीसुकल पद पङ्क-जन।
सत्तचित् आनन्द की निधि गई हिय की जरन।
नित्य वृन्दावन विपिन सन्तत जुगल मम आभरन॥
व्यास मधुपहि दियो सर्वस प्रेम सौरभ सरन॥

इसी प्रकार श्रीरास-पद में उल्लेख है--

कह्यौ भागवत शुक अनुराग। कैसे समझै बिन बड़ भाग॥
चाहत है वृन्दावन वास। श्रीगुरु शुक्ल कृपा करी॥
'व्यास' आसकर वरणौं रास; रास रसिक गुन गाइ हौं॥

अन्यत्र भी आपने गुरु-रूपा सखी के रूप में श्रीशुक्लजी का उल्लेख किया है--

वन्दे राधारमण मुदारम्।

श्रीगुरु सुकुल सहचरी ध्याऊँ दम्पति सुख रस सारम्॥

यहाँ सखी रूप में लिखने का यही कारण है कि बिना उस अलौकिक समर्पण भावना के रास-निकुञ्ज में प्रवेश नहीं है और सखी-रूप में ही अनुकूलता है। इसी प्रकार नित्य-उपासना में (मङ्गल नित्य पद) इस प्रकार उल्लेख है--

[१]

जय-जय श्रीगुरु सुकुल वंश उदित भयौ।
उग्यो है यश भानु तिमिर जग को गयौ॥
गयो जग को तिमिर सजनी ताप तीनों श्रम घटे।
पञ्चरस को तत्व लै शृंगार प्रेम सुखन जटे॥
पियत निशदिन तत्सुखी सुख नवल तन सहचरि गयौ।
जय-जय श्री०॥

[२]

जय-जय श्रीगुरु शुकल भक्त हित अवतरे।
कर्म-ज्ञान कौं छाँड़ि प्रेम पथ अनुसरे॥

अनुसरे प्रेम सुपन्थ दृग आगम निगम जो कथि कह्यौ।
सुनु गिरा अगनित जीव उधरे भक्ति रस भक्तन लह्यौ॥
लोभ रत अरु क्रोध कामी चरन परसत सब तरे।
जय-जय श्री० ॥

[३]

जय-जय श्री गुरु शुकल सहचरी प्रिया की।
सदा वसै नवकुञ्ज चाहि लखि प्रिया की॥
प्रिया उर की जानि वपुदो आन एक सहज सदा।
बौरात से जब वचन बोले सुधि नहीं कछु जिया की॥
जय-जय श्री० ॥

[४]

जय-जय श्रीगुरु शुकल मोहि सरवस दियौ।
उरझे प्राननि प्राण निवारत सुख हियौ॥
हियौ सुख धसि चार सजनी जुगल हिय दरसाइयौ।
अङ्ग अङ्गनि चक्षुरसना प्रीति सो उर लाइयौ॥
दई व्यासहि पीकदानी वास दम्पति हिय नयौ।
जय-जय श्रीगुरु शुकल मोंहि सरवस दयौ॥

इन पदों से स्पष्ट है कि पिताजी से ही दीक्षा के रूप में इन्होंने सर्वस्व प्राप्त किया था। ओरछा ही में श्रीनवलकिशोरजी को

प्रकट हो गए थे। तब आप्तकाम व्यासजी को श्रीहिताचार्यजी की दीक्षा की क्या आवश्यकता थी ?

इस प्रकार यह स्पष्ट उल्लेख होने से ज्ञात हो जाता है कि श्रीगुरु-दीक्षा उन्होंने अपने पिता से ली थी और यह धारणा केवल सम्प्रदायिक किम्बदन्ती ही है। यद्यपि इस किम्बदन्ती ने इतना व्यापक रूप धारण किया कि हिन्दी के अन्वेषण कर्ताओं तक ने इसको स्थान दिया। उदाहरणार्थ— रसाल का हि० सा० का इतिहास पृष्ठ ३०४, रामचन्द्र शुक्ल का हि० सा० का इतिहास पृष्ठ १८६ आदि ॥ इसके अतिरिक्त एक लेख त्रैमासिक 'हिन्दुस्तानी' में डा० उमेश मिश्र एम० ए० डी० लिट्० का "प्राचीन वैष्णव सम्प्रदाय नाम से प्रकाशित हुआ है। उसमें श्रीव्यासजी के सम्प्रदाय को हित सम्प्रदाय से अलग मानकर भी उन्होंने श्रीव्यास को श्रीभट्ट का शिष्य लिखा है। लेखक महोदय ने यह बड़ी भूल की है, क्योंकि श्रीभट्ट निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे। शायद लेखक महोदय किसी और महात्मा के भ्रम में श्रीव्यासजी के बारे में ऐसा लिखगये हैं। उसमें इसी प्रकार की और भी भ्रमात्मक बातें लिखी हुई हैं। अच्छा हो कि अन्वेषक महोदय इस विषय में सतर्कता से काम लें।

इस प्रकार यह सिद्ध होजाता है कि श्रीव्यासजी के सम्बन्ध में उक्त किम्बदन्ती बिलकुल भ्रांत है।

एक बात और है कि श्री गुरुमन्त्र का या दीक्षा का मुख्यतया यही उद्देश्य होता है कि श्रीगुरु पादिष्ट साधना से भगवान् का सान्निध्य या आत्म साक्षात्कार प्राप्त हो, यदि इसी दृष्टि से प्रस्तुत विषय पर विचार किया जाय तो दीक्षा की शून्य योजना स्वयं खण्डित हो जाती है, श्रीव्यास जी महाराज को तो स्वयं तुङ्गारण्य में श्रीनवलकिशोर रूप में दर्शन हो चुके थे। तो फिर उन्हें किसलिये दुबारा वृन्दावन आकर श्रीगुरु दीक्षा की आवश्यकता प्रतीत हुई, श्रीव्यासजी महाराज तो श्रीनवलकिशोरजी के साक्षात् दर्शन पाकर प्रतियोगी, सहयोगी का भेद निकाल चुके थे, फिर भला श्रीहिताचार्य को शास्त्रार्थ के लिये किस प्रकार ललकारते और फिर भी दिग्विजय समृद्ध गर्व को खोकर दीक्षा मन्त्र ग्रहण करना तो बिलकुल झूँठ है। ओरछा में श्रीव्यासजी ने जो ब्रजवासी की उत्कण्ठा सूचक पद लिखे उनमें श्री हरिवंशजी को सखीभाव में लिखा है।

हरि हम कब ह्वै है ब्रजवासी।
कब मिलि हैं वे सखी सहेली हरवंसी, हरदासी॥

इस पद में जिस सखी भाव से उन्होंने श्रीहरिवंशजी का वर्णन किया है, उसे देखते हुये श्रीवृन्दावन जाकर गुरु दीक्षा लेने की बात तो प्रेमी पाठकों को स्पष्ट अक्षरशः झूँठ मालूम होगी इससे यथार्थ में यही प्रतीत होता है कि श्रीव्यासजी महाराज तथा श्रीहरिवंशजी महाराज दोनों एक ही रास निकुञ्ज के परिकर थे। विद्वान् लोगों को विचार और आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर ही इस विषय को देखना चाहिये।

ओरछा नरेश श्रीमहाराज मधुकुर शाह नरेश होने पर भी उच्चकोटि के सन्त थे, प्राचीन ब्रह्मवादियों में शिरोमणि जनक के समान ही वे उस राज वैभव में सामान्य पुरुष की तरह रहते थे, उन्हें श्रीगुरुचरणों के अनुग्रह से ही भगवत् दर्शन प्राप्त हुये थे।

मधुकुरशाह महाराज के विषय में कि वे कितने उच्च-कोटि के महात्मा थे, इस सम्बन्ध दो घटनाओं का नीचे उल्लेख किया गया है—

ओरछाधिपति एक समय अकबरशाह के अश्वारोहियों में कहीं जारहे थे, महाराज बाहर से तो राजकाज किया करते थे, परन्तु उनका मन 'प्रियाप्रीतम' की मानसी पूजा में संलग्न रहता था। उस दिन श्रीमहाराज ठाकुरजी की मानसी पूजा करते हुये घोड़े पर सवार बादशाह के साथ जारहे थे, बादशाह के एक

सेवक ने बादशाह से कहा कि श्रीओरछानरेश घोड़े पर ऊँघते हुये जारहे हैं । यदि इस समय किसी आकस्मिक घटना का सामना होजाय तो यह क्या पुरुषार्थ दिखला सकते हैं। इस पर शाह ने पास जाकर मधुकुरशाह को पुकारा। महाराज का ध्यान भङ्ग होकर नेत्र खुले, नेत्रों का खुलना था कि महाराज के कपड़े तथा घोड़े पर तथा नीचे पृथ्वी पर बेसन फैल गया; इस चमत्कार को देखकर अकबरशाह स्तब्ध हो गये जब बादशाह ने पूछा कि यह क्या है, और आप नेत्र बन्द किये क्या कर रहे थे। महाराज ने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया, मैं श्रीजी की अमनियां के लिये कढ़ी सिद्ध कर रहा था, परन्तु आपने मेरा ध्यान भङ्ग कर दिया, इससे अमनियां में विघ्न पड़ गया। अकबरशाह इस घटना को देखकर अवाक् रह गये और महाराज के प्रति जो श्रद्धा उनमें थी वह कई गुनी हो गई।

एक दिन श्रीमधुकुरशाह महाराज शाही दरबार में विराजमान थे, अकस्मात् वे अपनी दोनों हथेलियाँ मलने लगे। बादशाह तथा दरबारी लोग देखकर आश्चर्य से चकित हुये। वह मधुकुरशाह महाराज से हाथ मलने का कारण पूछने लगे। पहले तो कारण बताने में महाराज ने बहुत आनाकानी की, परन्तु जब बादशाह ने बहुत आग्रह किया तो महाराज ने कहा

कि श्रीजगदीश के जामामें आग लग गई थी। श्रीविग्रह के समीप उस समय कोई पुजारी नहीं था इससे मैंने आग बुझाई है। इस घटना को सुनकर बादशाह और दरबारियों को विश्वास न हुआ तो महाराज ने हथेलियाँ खोलकर दिखलाईं जो काली हो गई थीं, इस पर किसी ने चेटक समझ कर बादशाह से आग्रह किया कि जगन्नाथपुरी में सवार द्वारा पत्र भेजकर खबर मँगाई जावे। बादशाह ने पत्र भेजकर समाचार पूछा तो यह बात ज्ञात हुई कि अमुक तिथि को अमुक समय श्रीजगदीशजी के जामा में आग लग गई थी, परन्तु श्रीमधुकुरशाहजी ने यहाँ आकर जामा की आग बुझाई और उसी समय लौटकर चले गये। श्रीजगन्नाथपुरी से आये हुये पत्र में वही तिथि तथा वही समय था जब श्रीमहाराज दरबार में बिराजमान थे। इस घटना से अकबरशाह को महाराज मधुकुरशाह के प्रति असीम श्रद्धा तथा प्रेम हो गया। श्रीमहाराज मधुकुरशाह का जीवन इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है, परन्तु लेख का कलेवर बढ़ जाने के कारण, तथा उनके जीवन चरित्र का इस लेख से विशेष सम्बन्ध न होने के कारण उपरोक्त दो ही घटनाओं का उल्लेख यहाँ किया गया है। अस्तु! हम इस विषय में इतना ही लिखकर पुनः अपने विषय पर आते हैं।

हाँ हमने ऊपर लिखा है कि श्रीव्यासजी बड़े ही उदार हृदय के लोकोत्तर महानुभाव थे, जाति पाँति के सम्बन्ध में एक स्थान में लिखा गया है:—

रसिक अनन्य हमारी जाति।
कुलदेवी (श्री) राधा वरसानो खेरौ ब्रजवासिन सौं पाँति ॥

इस सम्बन्ध में आपके चरित्र में एक बड़ी अद्भुत घटना का उल्लेख मिलता है कि एक दिन श्रीव्यासजी मध्याह्न में श्रीगोविन्दजी के दर्शनार्थ जारहे थे। दर्शन और महाप्रसाद का नित्य का नियम था। इसलिये जब मार्ग में किसी से सुना कि मन्दिर में राजभोग हो गया तो श्रीव्यासजी के चित्त में बड़ा खेद हुआ। उसी समय मार्ग में डलिया में महाप्रसाद लाते हुये एक भंगिन को देखा। पूँछने पर जब यह निश्चय हो गया कि यह महाप्रसाद ही है तो शीघ्रता से आपने उस डलिया में से एक पकौड़ी लेकर मस्तक से लगाकर पाली। शीघ्र ही इस अलौकिक भावना की चर्चा सर्वत्र फैल गई। आप महाप्रसाद लेकर श्रीयमुनातट पर रसिक समाज में पधारे। उस समय वहाँ महाराज मधुकुरशाह दर्शनार्थ आये और सत्सङ्ग में महाप्रसाद का वही प्रसङ्ग छिड़ गया। महाराज मधुकुरशाह ने विनय की कि "जो मर्म विमुख हैं, वे तो इस

विषय पर अपवाद ही करेंगे।" तब श्रीव्यासजी ने मन्द स्मित से कहा कि—

व्यासहि ब्राह्मण मति गनौं हरिभक्तन कौ दास।
वृन्दावन के स्वपच की जूठनि खहिये माँगि॥

× × ×

हमारौ जीवन मूरि प्रसाद।
अतुलित महिमा कहत भागवत मेटत सब प्रतिवाद॥
जो षट् मास ब्रतन के कीन्हें एक शीत के स्वाद।
दर्शन पावत साथ खात मुख परसत हरत निषाद॥
लेत देत जो करत अनादर सो नर अधम गवाद।
श्रीगुरु सुकल प्रताप व्यास यह रस पायौ अनहाद॥

इस प्रकार गुरु की महाप्रसाद में अचल निष्ठा देखकर महाराज चकित हो उठे।

इस प्रकार जब मधुकुरशाह को वृन्दावन में बहुत समय बीत गया तो राज्य कार्य का ध्यान कर श्रीव्यासजी ने अन्य सन्तों द्वारा महाराज से ओरछा जाने को कहलवाया। इस प्रकार गुरु चरणों की इच्छा जानकर मधुकुरशाह पुनः ओरछा को लौट आये। श्रीव्यासजी का वृन्दावन में निश्चल

अनुराग देखकर श्रीव्यासजी की पत्नी और पुत्र वृन्दावन में जाकर वहीं निवास करने लगे।

वृन्दावन में श्रीव्यासजी श्रीसेवाकुञ्ज के समीप किशोर वन में श्रीयुगल रूप की आराधना में तत्पर रहते थे। संवत् १६२० की बात है एक दिन आप निभृता शेषकरण रूप से अन्तरङ्ग भावना में निमग्न थे। माघ मास की शुक्ला एकादशी थी। उसी समय सहसा श्रीकिशोरवन में श्रीयुगल-किशोरजी का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीव्यासजी युगल दर्शन कर कृतकृत्य होगये। तब आपने बहुत बड़ा एक मन्दिर निर्माण कराकर उसमें श्रीयुगलकिशोरजी को अतिशय समारोह से विराजमान किये। फिर क्या था? उक्त मन्दिर में प्रतिदिन वैष्णवों का समाज होता, कीर्तन होता। इस प्रकार श्रीव्यासजी एक मन एक प्राण होकर श्री जी की सेवा में लीन हो गये।

एक दिन आप बड़े प्रेम से श्रीयुगलकिशोर जी का शृङ्गार करते समय जरकसी चीरा धारण करा रहे थे। चीरा श्रीजी के सर पर से बार-बार खिसक जाता और व्यासजी बार-बार धारण कराते। जब अनेक बार ऐसा हुआ तो श्रीव्यासजी प्रणयावेश में शृङ्गार छोड़कर वन को चले गये। कुछ समय बाद मन्दिर में लौटकर देखा तो श्रीयुगलकिशोरजी के शिर पर

चीरा अद्भुत छटा से शोभायमान था। तब व्यासजी प्रेमावेश पूर्वक हँसकर उपालम्भ के स्वर में कहा—धन्य महाराज मैं तो बाँधता-बाँधता हार गया। पसन्द न आया, ठीक है मेरा बाँधा क्यों आपको पसन्द आयगा ?

सेवा के सम्बन्ध में आपकी भावना और निष्ठा बड़ी ही उच्चकोटि की थी। एक दिन शृङ्गार समय वंशी धारण कराने में श्रीजी का कोमल कर कमल कठोर वंशी के हलके आघात से छिल गया। श्रीव्यासजी के परम सुकुमार हृदय को इस घटना से बड़ी चोट पहुँची और वे अत्यन्त दुखी हुए। उसी अनुतपितावस्था में श्रीजी की आज्ञा हुई कि उस स्थान पर वस्त्र को गीला कर पट्टी बाँध दो। आज्ञानुसार श्रीव्यासजी बहुत दिनों तक गीली पट्टी कर कमल में बाँधते रहे। ऐसी थी उन भक्तशिरोमणि की भक्तिपरायणता और भावुकता।

इसी प्रकार एक और घटना द्वारा श्रीव्यासजी के भावुक हृदय का दिग्दर्शन होता है, वह यों है कि एक समय रासोत्सव होरहा था। नृत्य करते समय स्वामिनी जू के एक चरण का नूपुर टूट गया। आप निकट बैठे थे, शीघ्रही आपने अपना यज्ञोपवीत तोड़कर नूपुर को ठीक बाँध दिया। उस समय कोरे कर्मकांडी मर्म विमुख ब्राह्मणों ने इस घटना को सुनकर आश्चर्य के साथ

रोष भी हुआ। इन लोगों की उस भावना को देखकर श्रीव्यासजी ने यह पद उनको सुनाया—

रसिक अनन्य हमारी जाति।
कुल देवी राधा बरसानौ खैरो ब्रजवासिन सौं पाति॥
गोत गुपाल जनेऊ माला, शिखा शिखण्डि हरि मंदिर भाल।
हरि गुन नाम वेद धुनि सुनियत मूँज पखावत कुश करताल॥
साखा जमुना हरि लीला षट्कर्म प्रसाद प्राण धन रास।
सेवा विधि निषेध जड़ सङ्गति वृत्ति सदा वृन्दावन वास॥
सुभृति भागवत कृष्ण नाम संध्या तर्पन गायत्री जाप।
वंशी रिषि जजमान कल्पतरु व्यास न देत असीस सराप॥

धन्य हैं जिनको ऐसा ब्राह्मण होने का सौभाग्य प्राप्त हो, इस घटना को नाभाजी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ भक्तमाल में लिखा है। वह छप्पय यों है—

काहू के आराध्य मच्छ कच्छ सूकर नरहरि।
वावन परसाधरन सेतु बन्धनहु सैल करि॥
एकन की यह रीति नेम नवधासौं लाए।
सुकुल सुमोखन सुवन अचुत गोत्री जुकाहए॥
नौ गुनी तोरि नूपुर गुह्यो महत समामधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दामको, भक्ति इष्ट अति व्यास के॥

इस प्रकार श्रीव्यासजी के चरित्र में अनेक अलौकिक घटनाऐं हैं, जो उनके उदार हृदय, एकान्त अनुराग, पराभक्ति, उत्कृष्ट भावना को पद-पद पर सूचित करती है। एवं आपके भाव विभूषितान्तःकरण का पूर्ण परिचय दिया है।

इसके अनन्तर श्रीव्यासजी की वाणी के सम्बन्ध में दो शब्द लिखकर यह प्राक्कथन समाप्त किया जायेगा। श्रीव्यासजी की समस्त वाणी प्रधानतः दो विभागों में विभक्त को जा सकती है। एक "सिद्धान्त" दूसरा "रस-विहार"। सिद्धान्त नामक विभाग में श्रीव्यासजी के समस्त पद आते हैं, जो उन्होंने अपने साम्प्रदायिक तत्त्वों के स्पष्टीकरणार्थ विरचित किये थे। दूसरे विभाग में व्यासजी ने वृन्दावन श्रीधाम, व्रजराज, व्रजवासी आदि की महिमा का कथन किया है। वास्तव में श्रीवृन्दावनधाम के प्रति अपनी जिस दृढ़ा भक्ति और निश्चल प्रेम का परिचय दिया है, वह अत्यन्त सुन्दर है। महाराज मधुकुरशाह ने जिस समय ओरछा की वृन्दावन से तुलना करते, वहाँ चलने की प्रार्थना की थी, उस समय श्रीव्यासजी ने जो उत्तर दिया, वह देखिये—

वृन्दावन के रूख हमारे मात पिता सुत बंध।
गुरु गोविंद साधुगति मति सुख फल फूलनि को गंध।

इनहिं पीठदै अनत दीठिकरि, सो अन्धन में अन्ध ।
'व्यास' इनहि छोड़े औ छुड़ावै,ताकों परियों कन्ध ॥

वृन्दावन की पवित्रता के सम्बन्ध में व्यासजी का निम्नाङ्कित दोहा प्रसिद्ध ही है:—

'व्यास'मिठाई विप्र की तामें लागे आग ।
वृन्दावन के स्वपच की जूठन खाइये माँग ॥

श्रीवृजभूमि की शोभा वर्णन करते-करते उनकी रसना नहीं थकती । शस्यश्यामला श्रीकृष्ण भूमि के दर्शन मात्र से ही नेत्रों की रूप दर्शन लालसा आप ही आप शान्त हो जाती है। कैसी पवित्र और शान्त है व्रज की मधुरिमा—

वृन्दावन की शोभा देखें मेरे नैन सिरात ।
कुञ्जनिकुञ्ज पुञ्ज सुख वर्षत हर्षत सब को गात ।
राधामोहन के निज मंदिर महाप्रलय नहि जात ॥
ब्रह्मा तै उपज्यौ न अखण्डित कबहूँ नाहिं नसात ।
फनि परि रवितरि नहि विराट् महँनहि संध्या नहिं प्रात ॥
माया काल रहित नित नूतन सदा फूल फल पात ।
निरगुन सगुन ब्रह्मतैं न्यारौं विहरत सदा सुहात ॥
'व्यास'विलास रास अद्भुत गति निगम अगोचर बात ॥

श्रीव्यासजी ने इस एक ही पद में कितनी प्राञ्जलता और विशदता के साथ श्रीधाम तत्त्व का दर्शन कराया है। वास्तव में जिस स्थान में परात्पर श्रीश्यामसुन्दर की नित नव रास क्रीड़ा होती रहती है। जिनकी नृत्यभंगिया के समतालों पर अशेष ब्रह्माण्ड भ्रमण करता है उस स्थान में—उसमें लोक जन-पावन भूमि में क्या सामर्थ्य है महाप्रलय वहाँ प्रवेश कर सके। ब्रह्मा में जिसके निर्माण की शक्ति नहीं, जो सम्पूर्ण संसार से अलग है, जिसका यथार्थ तत्त्व अवाङ्मनसगोचर है, वह नटवर की लीला-भूमि धन्य है। वृज की छटा 'इदमित्थम्' कह कर नहीं कही जा सकती। श्रीव्यासजी कहते हैं—

त्रिभुवन को कवि कहित सकत कछु अद्भुत छवि की बात।
व्यास वचन नहि मुख कहि आवै ज्यों गूगों गुर खात॥

इसी प्रकार श्रीव्यासजी की सम्पूर्ण वाणी वृजभूमि की महिमा से परिपूर्ण है।

श्रीव्यासजी के उपासना सम्बन्धी सिद्धान्त भी अत्यन्त अनूठे हैं। आपके मत से जब तक हृदय में प्रेम नहीं, प्रियतम के प्रति दृढ़ अनुराग न हो, मनोमन्दिर में युगलमाधुरी विराजमान हो, तो मनुष्य कितना ही ज्ञानी, विद्वान् क्यों न हो, बिलकुल व्यर्थ है।

भक्ति विना परिडत वृथा ज्यौं चन्दन खरभार ।

यह भगवत्-प्रेम पुस्तकों की विद्या नहीं है । यह तो विशुद्ध आत्मा में मन मसृणितान्तःकरण में श्रीकृष्ण विरह से उत्पन्न सान्द्रभावनात्मक अनिर्वचनीय सम्पत्ति है । जिसके पास यह है, उसके समस्त लोकाचार वेद, कर्म, धर्म का वाह्याडम्बर सब व्यर्थ है । हृदय में जब प्रियतम के प्रेम की भावना ज्योति जागृत है तब इन शुष्क तर्कों में क्या रक्खा है । यह प्रियतम का प्रेम तभी मनुष्य को प्राप्त होता है । जब मानवात्मा अपने सम्पूर्ण लोकवेद के द्वैत को छोड़कर कर्मकाण्ड के शुष्क बंधनों से निर्मुक्त होकर सम्पूर्ण रूप से अपने को प्रियतम के हाथों में समर्पित कर देती है । इसलिये कहा है :—

भावो यावदहंयोसित पुमान् षंढस्तनोभ्रमात् ।
तावत्सु गोपी भावस्य कथमभ्युदयो भवेत् ॥

ऐसे ही दृढ़ अचल प्रेम की कथा ही व्यासजी का जीवन है । अपने इष्ट देव में अनन्य रूप में उनकी आस्था थी । एक बार किसी ने पूँछा, आप तो विद्वान हैं, श्रीयुगलकिशोरजी के अतिरिक्त आप अन्य किसी में भेद भाव क्यों नहीं रखते ? तब श्र यासजी ने कितना सुन्दर अन्तर दिया है:—

(श्री) राधावर ध्याइकें और ध्याइये कौन।
व्यासहि देत बने नहीं बरी बरी प्रति लौन ॥
व्यासहिं अवजिन जानियो लोक वेद को दास।
(श्री) राधावल्लभ उर वसे औरन तें जु उदास ॥

ठीक ही है। जब अन्तरात्मा सम्पूर्ण रूप से प्रियतम समर्पित की जा चुकी है। जब रोम-रोम में सर्वत्र प्रियतम व्या रहे हैं तब दूसरे को स्थान ही कहाँ है? इसीलिये व्यासजी एक स्थान पर लिखा है कि जो हरि के भक्त हैं उन्हें कोई बा नहीं आती—

हरिदासन के निकट न आवत प्रेत पितर जमदूत।
जोगी भोगी सन्यासी अरु पंडित मुंडित धूत ॥
ग्रह गनेश सुरेश शिवाशिव डरकरि भागत भून।
सिद्धिनिधिविधि निषेध हरिनामहिं डरपत रहत कपूत ॥
सुख दुख पाय पुन्य मायामय ईति भीति आकूत।
सब की आस त्रास तज व्यासहि भावत भक्त सपूत ॥

इस प्रकार एकान्त रूप से साधना और प्रेम के सिद्धा को लेकर उपासना में लीन रहते हुए व्यासजी "परित्राणाय साधूनाम्" वाली लोकसंग्रह भावना

विस्मृत नहीं किया है। उन्होंने दुष्टों और पाखण्डियों को खूब खरी खोटी सुनाई है।

धन भौ मीत धर्म भौ वैरी पतितन सौं हितवाई।
जोगी जतीं तपी सन्यासी व्रज छोड्यो अकुलाई।
× × × ×
देखत संत भयानक लागत भावत ससुर जमाई।
दान लेन को बड़े पातकी मचलन को बँभ नाई।
लरन मरन को बड़े तामसी वारौं कोटि कसाई।
उपदेशन को गुरुगुरु गुसाईं आचरनैं अधमाई।
व्यास दास के सुकृत साँकरै हैं गोपाल सहाई।

इसी प्रकार अन्यत्र भी इन अहम्मथ पाखण्यिों को खूब फटकारा है। अपने सिद्धान्तोंमें सर्वत्र व्यासजी ने उसी अलौकिक प्रेम का उपदेश दिया है जिसको प्राप्त करके मनुष्य सचमुच ही पूर्ण काम अथवा आप्तकाम हो जाता है। वास्तव में वह प्रेम की परावस्था गीता के स्थिर यज्ञ से कहीं ऊँची है भक्त को न सांसारिक निंदा की चिन्ता है न प्रशंसा की। अपितु प्रशंसा को तो भक्त अपनी साधना में और भी घातक समझते हैं। क्योंकि वही तो मनुष्य के अहं तत्व को उत्तेजित करती है। इसी लिये श्रीव्यासजी ने कहा है—

दोहा—व्यास बड़ाई लोक की कूकर की पहिचान।
प्रीति करहिं मुख चाटहि वैर करै तनु हानि॥

इन लोकोत्तर महानुभावों के सिद्धान्त किस ने एकनिष्ट कितने दृढ़ उच्च थे।

श्रीव्यास जी की रचना के दूसरे विभाग का नाम 'रसविहार' कहा गया है। उसका वर्णन करना क्षुद्र लेखनी के सामर्थ के सर्वथा बाहर है। भगवान् की जिस शाश्वत लीला को अपने नित्यपरिकरता के प्रभाव से साक्षात् दृष्टिगोचर किया और फिर उसका जिस ललित वाणी में वर्णन किया है वह तो सुधासिन्धु को समान जिधर से चखिये उधर हो से मीठा है। एवं भावान्तर जरा मृत्यु से रहित कर परमाप्यायक और इतर राग विस्मारक है। व्यासजीने अपने रास संबंधी पदों में लीला पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं का इतना सुन्दर, इतना मोहक, इतना सजीव वर्णन किया है कि मानो उनकी ललित भाषा में वह मूर्तिमान हो उठतो है। अपनी सुन्दर कविता में उन्होंने जिस अनंत आनंदमय सौंदर्य के समुद्र का, जिस अशेष शोभा शालिनो अमरावती का साक्षात्कार किया है, वह धन्य है। उस सौंदर्य और माधुर्य्य के एक कण को पाकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाते हैं। उसी मधुरिमा की श्री व्यासजी ने अपनी वाणी में मूर्तिमती कर दिया है। भक्तजनों ने आनन्दार्थ दो एक उदाहरण दिये जाते हैं। वैसे तो व्यासजी रचना मात्र उसी का उदाहरण है—



श्री प्रियाजी के 'गौर तेज' का मधुर वर्णन प्रेमीगण स्वयं देखें।

गौर मुख चन्द्रमा की भाँतिं ।
सदा उदित वृन्दावन प्रमुदित कुमुदिनि वल्लभ जाति ।।
नील निचोल सुहार गगन में लसति तारिका पाँति ।
झलकति अलक दशन दुति दमकत मनहुं किरन कुल कांति ।।
गंड कोस पर श्रम जल ओसजु अधरन सुधा चुचाति ।
मोहन की रसना सु चकोरी, पीवत रस न अघाति ।।
हाँस कला कुल सदा सुहाई, तनु छवि चाँदनि राति ।
नैन कुरंग निकट सिंघनि डर उन पर अति अनखाति ।।
नाह निकट नहि राहु विरह डर पट शोभा न समाति ।
देखत पाप न रहत 'व्यास' दास तन नाम बुझात ।।

सत्य है। ऐसी माधुरीमय झाँकी की झलक पाकर किस के त्रिताप नहीं नष्ट हो जावेंगे। उस स्थान संसार के ताप शाप की गति ही कहाँ है।

पावस प्रकृति का कितना सुंदर वर्णन है। पाठक देखें—

आज कछु कुंजन में वरषासी ।
बादल दल में देखि सखीरी चमकति है चपलासी ।

नाही नाही बूँदन कछु घुरवा से पवन बहै सुखरासी।
मन्द मन्द गरजन सी सुनि मनु नाचति मोर सभासी ॥
इन्द्र धनुष से वक पंकति डोलति बोलत कोकलासी।
चन्द्र बधू छवि छाई रही मनु गिरि पर श्याम घटासी ॥
उमगि मरीरुह सी महि फूली भूली मृग माला सी।
रटहि(व्यास) चातक ज्यौं रसना रस पीवत हूँ प्यासी ॥

भावुक काव्य प्रेमी देखें 'मरीरुह सी महि फूली' औ 'रस पीवत ही प्यासी' में कितना चमत्कार है।

सुघर (श्री) राधिका प्रवीन वीना, वर रास रच्यो,
(श्री) श्याम संग वर सुधंग तरन तनया तीरे।
आनन्दकन्द वृन्दावन शरद चन्द मन्द मन्द पवन,
कुसुम पुंज ताप दवन धुनित कल कुटीरे ॥
रुतिन किंकिनी सुचारु, नूपुरु तिमि बलय हारु
अङ्ग रव मृदङ्ग ताल तरल तिरप चीरे।
गावत अति रङ्ग रह्यो, मोपै नहिं जात कह्यो,
व्यास रस प्रवाह वह्यौ निरखि नैन सीरे ॥

भावुक भक्तवृन्द ! देखिये भगवान् के अपार माधुरी धा[म] का वर्णन करते-करते श्रीव्यासजी की वाणी भी मानों रस विव[श]

हो शिथिल होकर कहती है—मोपै नहिं कह्यौ जाति।' इस पद में श्रीव्यासजी ने वास्तवमें वही कह दिया है जो अनिर्वचनीय है।

एक और—

वृन्दावन कुंज कुंज केलि बेलि फूली।
कुन्द कुसुम चन्द नलिन विद्रुम छवि भूली॥
मधुकर सुक पिक मराल मृगज सानुकूली।
अद्भुत घन मण्डल पर दामिनि सी झूली॥
व्यासदास रङ्ग रासि देखि देह भूली।

कौन है ऐसा जो इस रूप को देखकर भी देह को न भूल जावै। कहाँ तक उदाहरण दें। प्रेमी भक्त स्वयं आनन्द लें।

काव्य की दृष्टि से भी श्रीव्यासजी की रचना अत्यन्त उच्च कोटि की है। उनकी रचना अपार माधुरी धाम और अनन्त सौन्दर्यशालिनी है। सभी प्रसिद्ध विद्वानों और प्रेमी काव्य मर्मज्ञों ने श्रीव्यासवाणी की शत मुखों से सराहना की है। धन्य हैं वे महानुभाव जिनकी भाव रस सभी कविता सुधा-समान बनकर अनेक प्रेमी तृषितों के हृदयों को आह्लाद और परमानन्द प्रदान करती है। इस विषय में हम अधिक अपनी तरफ से न कर श्रीनील सखीजी की सम्मति उद्धृत किये देते पाठक देखें कि वह कितनी सत्य है—

जय जय विशद व्यास की वानी।
मूलाधार इष्ट रस मय, उत्कर्ष भक्ति रस सानी।
लोक वेद भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी।
स्वादित सुचि रुचि उपजै पावत मृदु मनसा न अघानी॥
सक्ति प्रमोघ विमुख भञ्जन की, प्रगट प्रभाव बखानी।
मत्त मधुप रसिकन के मन की रस रंजित रजधानी॥
कलि के कलुष विदारण कारण तीक्ष्ण तरल कृपानी।
कपट दंभ कूरी दूरी कर वसन दास पन छानी॥
रस शृङ्गार सरस यमुना सम वर धारा घहरानी।
विधि निषेधतरु वर तरु तोरत हरि यश जलधि समानी॥
सुन्दर बदन युगल छबि भूषण चीर चातुरी ठानी।
पहिरै प्रेम कंचुकी सोहत सुख मन्दिर महरानी॥
श्रवण सीप चातक विरही कौं ज्यौं स्वातिन कौ पानी।
सुख सन्तोष बढ़ावै दूजै मुक्त फलद अनुमानी॥
हरि लीला सागर तैं रस भर बरषै सुझर सुहानी।
सींचत सुहृद हृदय के दारण घन माला सम जानी॥
भक्ति अनन्य सलिल उपजाई मृदुल सघन सरसानी।
पायैं ताहि क्षुधित जन मन के जिये जीव सुखमानी॥

जनु सन्तन के सुयश चन्द्र की शोभा स्वच्छ दिखानी।
जातै जाय प्रकृति जामिन कौ तम तामस दुखदानी॥

युगल विहार विटप सों लिपटी सुवरण वेलि निवानी।
लगे रँगीले सुमन जासु में फल रस मय निर्वानी॥

दधि माधुर्य माठ वृन्दावन भरौ अमोघ अमानी।
सहज सत्वगुण बँधौ जासु मैं गोपी सुमति सयानी॥

सखी रूप नवनीत उपासक अमृत निकस्यो आनी।
'नीलसखी' प्रणमामि नित्य सो अद्भुत कथनमथानी॥

श्रीनील सखीजी का कहना वास्तव में सर्वांश सत्य है। श्री व्यासजी की कविता परम भक्त श्रीजयदेव के गीत गोविन्द से भी मनोहारिणी, सरस मधुर और कोमल है। अन्त में श्रीरासेश्वरी श्रीराधारानीजू की अङ्गजा सहचरी श्रीविसाखाजू के अवतार श्रीव्यासजी को प्रणाम करके प्राक्कथन को समाप्त करता हूँ।

श्रीवसन्तोत्सव संवत् ९४ } श्रीहरीराम व्यास वंशोद्भव आचार्य श्रीलाड़लीकिशोर गोस्वामी।



श्रीव्यासजी का मंगल ।

(श्री युगलदास कृत)

जय जय जय श्री व्यास शुक्ल कुल तन लियौ ।
अनुपम मार्ग बताय सबन निर्भय कियौ ॥
रसिक अनन्य अनन्य भक्ति दृढ़ अनुसरी ।
सारा सार विचार गिरा परगट करी ॥

करी प्रगट सु प्रेम लच्छनि भक्ति सरित सुहावनी ।
निज प्रवाह बहाय हरिपद सिन्धुजन पहुँचावनी ॥
प्रफुल्लित गावत सुनत अति सरसु रसिकन को हियौ ।
जय जय जय श्री व्यास शुक्ल कुल तन लियौ ॥

जय जय जय श्री व्यास भक्त वन चन्दना ।
रसिक उडुन विच चन्द्रमोह तम कन्दना ॥
हरिजन हरिसम जान सराहत सुख जहाँ ।
व्रजरज महा प्रसाद हेतु भाविक महाँ ॥

महाँ भाविक विपिन के जिहिं तजत नहीं च्छण एकहू ।
करत वादन नृत्य गान उछाह नहिं सुध नेकहू ॥
रस ही रस शृंगार उपासक रसिक रास आनन्दना ।
जय जय जय श्री व्यास भक्त वन चन्दना ॥

जय जय जय श्री व्यास कहाँ लग गुण गनों।
दामिन सम दुति अंग वसन उडुगन मनों ॥
सेवत युगल किशोर वेष अलिकौ कियें।
सुरति समय ढिंग रहत पीकदानी लियें ॥
पीकदानी लियें निश दिन कुञ्ज महलन राजहीं।
समय ऋतु कौ जान दोउन वस्त्र अंगनि साजहीं ॥
रिझत सुन सुठ वचन प्रिया प्रीत चित हित अति घनों
जय जय जय श्री व्यास कहाँ लग गुन गनों ॥
जय जय व्यास किशोर नाम जो उच्चरै।
होवे कैंसेहु पतित जगत तै उद्धरै ॥
छिन छिन बाढ़ै प्रीत रीति रस जानि है।
युगल किशोर स्वरूप सो निज हिये आनि है ॥
आनि है निज हिये रूप सो अन्त सहिचरि सम्पदा।
रङ्ग महलन टहल सेवै व्यास स्वामिन पद सदा ॥
युगलदासी फिर महा मति विषम भव अब नहिं परै।
जय जय व्यास किशोर नाम जो उच्चरै ॥

श्री व्यासजी कौ मङ्गल सम्पूर्ण।

भूमिका

[लेखक—श्रीइन्द्रजी ब्रह्मचारी, सम्पादक "श्रेय"]

हम लोगों के शास्त्र में, मंत्र के आदि में "ॐ" रहता है। इस शब्द को पूर्ण की वाणी कहते हैं। वाणी सत्य का स्वरूप है, कज्ञा के शंख-कुहर में असीम का निवास है। अतल-भाव समुद्र कल-कल ध्वनि के साथ फ्रान्सीसी राष्ट्र-विप्लव की बाढ़ ने योरोप में एक नये युग का सञ्चार किया था, इसका कारण यह नहीं कि उस दिन पीड़ितों ने पीड़ितकारियों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी थी, वरन इसका कारण यह था कि उस युग के आदि में वाणी थी। वह वाणी केवल फ्रान्स के तत्कालीन राष्ट्रीय आवश्यकता के पिंजड़े में बँधे हुए समाचार-पत्रों के मेड़ों से ढके हुए, बिना समझे स्कूली-पुस्तकों की बोली बोलनेवाले तोते की वाणी न थी। वह मुक्तपक्ष आकाश-विहारी वाणी थी। समस्त मनुष्यों का पूर्णतर मनुष्यत्व की ओर उसने पथ-निर्देश किया था।

एक समय इटली के उद्बोधन के दूत मेजिनी और गेरीवाल्डी' थे। उन्होंने जिस मंत्र से इटली का उद्धार किया था, वह इटली के तत्कालीन शत्रु-विनाश के द्रुतफलदायक मारण-उच्चाटन पिशाच मंत्र न था, समस्त मनुष्यों को नाग-पाश से छुड़ाने के लिए गरुड़ मंत्र था, जो नारायण के आशीर्वाद से मृत्यु-लोक में अवतीर्ण हुआ था। इसीलिए उसको वाणी कहते हैं।

उँगली के सिरे में जो स्पर्श-बोध है, उसके द्वारा मनुष्य अन्धकार में घर की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है, यह स्पर्श-बोध उसका निजी है। किन्तु सूर्य के प्रकाश से जो स्पर्श-बोध सारे संसार को होता है, वह प्रत्येक प्रयोजन के लिए उपयोगी होता है और प्रत्येक प्रयोजन का अतीत होता है, उसी प्रकाश को वाणी का रूपक कहा गया है।

साइन्स ने एक दिन योरोप में युगान्तर लाया था। क्यों! इसका कारण यह नहीं कि उसने प्रकृति के ऊपर मनुष्य की शक्ति का परिचय दिया था, वरन इसका कारण यह है कि उसने जगत् की तत्व-सम्बन्धी ज्ञान की अन्धता को मिटाया। यूनिवर्सल एस्पेक्ट् आफ़ रियलिटी को स्वीकार करने के लिए

मनुष्य ने अपने प्राण तक को उत्सर्ग किया है। आज साइन्स ने उस युग को पार कर के एक और नवतर-युग के सन्मुख मनुष्य को उपस्थित किया है। साइन्स का रथ भौतिक-जगत् की चरम सीमा पर मूल-सत्य के द्वार पर आ पहुँचा है। वहाँ पर सृष्टि की आदि वाणी है।

वाणी उसी को कहते हैं जो मनुष्य के अन्तस्थ परम अव्यक्त को आह्वान करके बाहर में अभिव्यक्ति की ओर ले आती है, जो उपस्थित प्रत्यक्ष की अपेक्षा अनागत पूर्णता को वास्तवतर सत्य प्रमाणित करती है। प्रकृति पशुओं को केवल दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रयत्न में ही लगा रखा है। सृष्टि की वाणी ने मनुष्य-मनुष्य को जीविका के संकीर्ण जगत् को उद्धार कर ऐसी जीवन-यात्रा में लगा दिया है, जिसका लक्ष्य उपस्थित-काल को छोड़ कर आगे बढ़ना है।

मनुष्य के कानों में ये शब्द सुनाई पड़े—'एक स्थान में टिक रहना तुम्हारे लिये नहीं है, तुमको सच्चे ढङ्ग से जीवित रहना होगा। उसके लिये मरना भी पड़े तो वह भी उत्तम है।' जीवन-यापन के सङ्कीर्ण-पथ में जो प्रकाश प्रज्ज्वलित हो रहा है, वह रात्रि का धुँधला प्रकाश है, उसके द्वारा पशुओं का काम चल सकता है, किन्तु मनुष्य निशाचर जीव नहीं है।

भूमिका

समुद्र-मन्थन के दुस्साध्य-कार्य में तले के रत्नों को किनारे पर लाने के लिए वाणी ने मनुष्य को आह्वान किया। इसके द्वारा मनुष्य ने जो आन्तरिक सिद्धि पाई, वह वाह्य-सिद्धि की अपेक्षा बड़ी है। देवता के काम में सहयोग करना ही आन्तरिक सिद्धि है। इसी के द्वारा अपनी प्रच्छन्न-शक्ति के ऊपर मनुष्य की श्रद्धा निःसंशय स्पष्ट भाव से उन महापुरुषों में देखी जाती है, जिनकी आत्मा स्वच्छ-जीवन के आकाश में मुक्तमहिमा से प्रकाशित है। जिनके देखने से स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होता है कि उनमें वाणी मूर्तिवती होकर प्रतिष्ठित है, केवल बुद्धि, इच्छा शक्ति अथवा उद्यम का होना ही श्रद्धा का निदर्शन नहीं है।

ऐसे मनुष्य के देखने की उत्कट इच्छा आज कल हम लोगों में इसलिए हो रही है कि आज चारों ओर से मनुष्य का आत्मविश्वास ही आत्मघात हो रहा है। इसलिए राष्ट्रीय स्वार्थ-बुद्धि ने सभी साधनों को पीछे ठेल दिया है। मनुष्य वस्तु के मूल्य से सत्य का विचार कर रहा है। इस प्रकार जब सत्य उपलक्ष्य बन जाता है और लक्ष्य बन बैठता है और कोई चीज तब विषय का लोभ प्रबल हो उठता है और मनुष्य लोभ के मारे धीरज खो बैठता है।

विषय-सिद्धि के अध्यवसाय में विषय-बुद्धि अपनी साधना के पथ को जितना ही संक्षिप्त कर सकती है, उतनी ही

उसकी जीत है, क्योंकि विषय-बुद्धि की सिद्धि तो साधना-पथ के शेष प्रान्त में है। सत्य की साधना में सर्वक्षण सिद्धि है। वह गान के सदृश है, गान के अन्त में गान नहीं है, गान तो गाने के सभी अंश में व्याप्त है। वह फल के सौन्दर्य के सदृश है, आरम्भ से ही फूल का सौन्दर्य जिसकी भूमिका है, किन्तु लोभ की प्रबलता से जब सत्य विषय का वाहन बन जाता है, उस समय इन्द्र को उच्चश्रवा की सईसी करनी पड़ती है। उस समय साधना को ठग कर सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा होती है; जिसका परिणाम यह होता है कि सत्य विमुख हो जाता है और सिद्धि विकृत हो जाती है।

मानव-इतिहास के जिस उत्तरकाण्ड में हम लोग आ पहुँचे हैं, उसमें हम लोग जल्दी-जल्दी जनता के मन को फुसलानें वाली सिद्धि के लोभ में सत्य को छोड़ देने का ढङ्ग पकड़े हैं।

निष्ठुर स्वार्थी मनुष्य मानस-कली को विकसित करने के लिए आग में डाल रहा है।

जिस मानस-मुकुल के विकास के लिये साधना की आवश्यकता है। जनता के सामने तत्कालीन क्षणिक आवश्यकता के लिये उसको परिणत सत्य को प्रमाणित करने के शौक से आयोजन की धूम-धाम और उत्तेजना तो होती है, किन्तु उसके

पीछे जो असल-वस्तु मानस रहता है, वह अन्तर्द्धान हो जाता है।

लोभ के चाञ्चल्य से जब सर्वत्र ही सत्य का उत्पीड़न चल रहा है तब इसके विरुद्ध तर्क-बुद्धि को खड़ा करने से कुछ फल नहीं होता, उस समय ऐसे मनुष्य की आवश्यकता पड़ती है जो वाणी का दूत हो, सत्य-साधना में अत्यधिक समय लगने पर भी जिसका धीरज न टूटे, साधना-पथ से आदि से लेकर अन्त तक सत्य का अमृत-पाथेय ही जिसको आनन्दित रखे।

अब तक भारत में जितनी भी आत्माएँ आईं, दिव्य संदेशों को अपनी वाणी द्वारा सुनाकर चली गईं। उपनिषद्-काल से लेकर अब तक का इतिहास इस प्रसङ्ग का साक्षी है।

अष्टछाप के श्रीमहानुभाव, श्रीश्रीभट्ट, श्रीहरिव्यासदेव, श्रीहरिदासस्वामी, श्रीहितहरिवंश, श्रीव्यासजी, श्रीध्रुवदास, श्रीवृन्दावनदास, श्रीसेवकजी, श्रीनागरीदास, श्रीभगवतरसिक, श्री-अलबेलीअलि, श्रीवंशीअलि इत्यादि सभी महानुभावों का प्राकट्य लीला-मात्र है।

इनके जीवन के आदि और अन्त में सर्वत्र ही गान है, इनकी वाणी में जो वस्तु-रस है, उसका आस्वादन इनके कृपा-पात्र ही कर सकते हैं।

इनकी प्रत्येक लीला में "भाव-भावना" का ही शृङ्गार पाया जाता है।

इन्होंने जो कुछ कहा, प्राणों की भाषा में, अन्तस्थ के स्वर में, आध्यात्म 'आह्लाद एवं परमाह्लादिनी" की निकुञ्ज-स्थली में विचरण करते हुए ही कहा है।

श्रीगोपाल भट्ट, श्री हितहरिवंश, श्री हरिदासस्वामी, श्रीव्यासजी आपस में एक दूसरे-से अत्यन्त स्नेह करते थे, एक दूसरे को आदर-भाव से देखते थे।

ये सभी श्रीमहानुभाव नित्य-नगर के कलानागर हैं। इनके अर्चाविग्रह श्रीराधाकृष्ण हैं, इनके सिद्धान्त प्रेम-वेदी पर अवस्थित हैं, इनकी उपासना में प्राणों का प्रियतम एवं प्रिय-प्रियतमा नित्य क्रीड़ा कौतुक कर रही हैं। ये सभी प्रेम-पथ के आचार्य एवं रस-सिद्धान्त के प्रदर्शक तथा नित्य-लीला-निकुञ्ज के उपासी हैं।

इनके प्रारम्भ में प्रेम-दीप का शीतल प्रकाश एवं मध्य में रस-भावना की क्रीड़ा तथा अन्त में मधुमय-निकुञ्ज की रसमयी वेदी की प्रतिष्ठा है।

यह समग्र जीवन है, इस जीवन का अध्यक्ष एक मात्र इष्ट है। इष्ट ही सब कुछ कार्य सँभालता है।

श्रीव्यासवाणी के प्रत्येक स्वर में वह संकेत है, जिसका पाठ करने से पाठक लीलाधर के लीला-निकुञ्ज में प्रवेश कर सकता है।

श्रीव्यास-वंशावतंस श्रीराधाकिशोरजी गोस्वामी ने प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन कर रसास्वादियों के ऊपर महती अनुकम्पा की है।

श्रीआचार्य-वंशज गोस्वामी श्रीनन्दकिशोरजी का प्रयत्न भी प्रशंसनीय है।

रहस्यरण्य-निवासी श्रीविशाखाशरणजी महाराज का पुस्तक-प्रकाशन के सम्बन्ध में अधिक आग्रह है, इन सभी श्रीमहानुभावों का, पाठकों को कृतज्ञ होना चाहिये।

श्रीरमण-रेती, श्रीवृन्दावन
श्रीवसन्तपञ्चमी, ६४वि०

विनीत—
इन्द्र ब्रह्मचारी

सिद्धान्त-रस विषय-सूची

❀ सिद्धान्तरस पदानुक्रमणिका ❀

(ह)



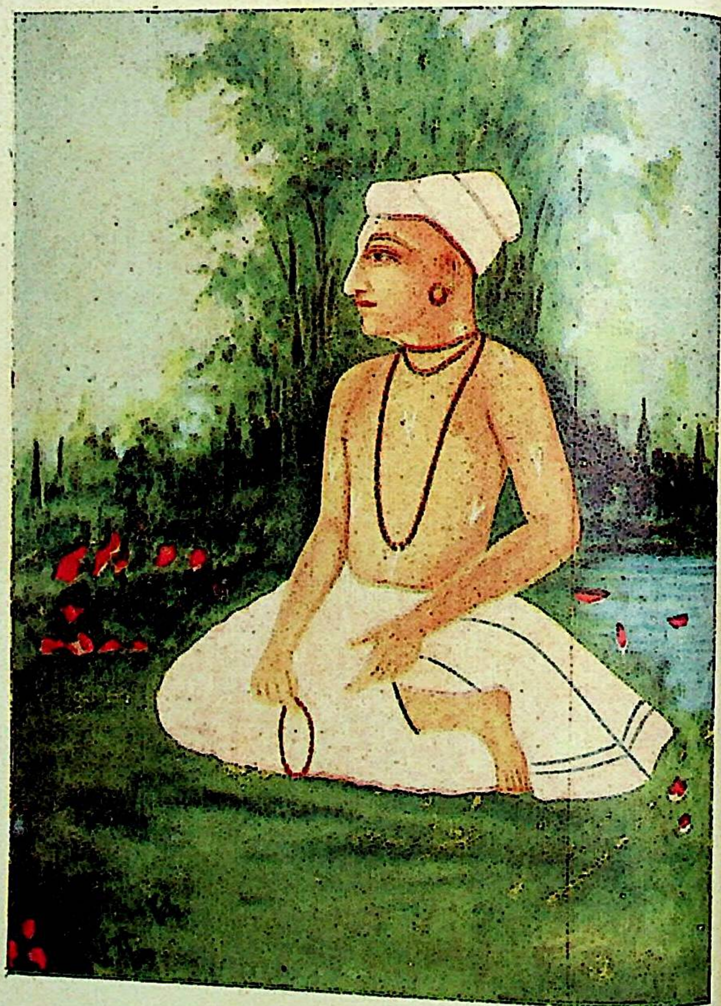
श्रृङ्गार रस विषय–सूची

श्रृङ्गार-रस-विहार पदानुक्रमणिका ।

इति शृङ्गार-रस विहार पदानुक्रमणिका ।







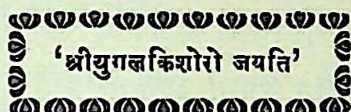
श्रीमान् माध्वमत मार्तण्ड अनन्य श्री रसिकाचार्य
निकुञ्ज निवासी पण्डित प्रवर विश्वविजयी
श्री श्री हरिराम 'व्यास' जी महाराज

श्रीव्यास-वाणी



श्रीमान् माध्वमत मार्तण्ड अनन्य श्री रसिकाचार्य
निकुञ्ज निवासी पण्डित प्रवर विश्वविजयी
श्री श्री हरिराम 'व्यास' जी महाराज

श्रीहितदास-वाणी



श्रीगुरु-स्तुति—

राग-सारङ्ग—

वन्दे श्रीसुकल पद पङ्कजन ।
सत्त चित्त आनन्द की निधि गई हिय की जरन ॥
नित्य वृन्दाविपिन संतत जुगल मम आभरन ।
'व्यास' मधुपहि दियो सर्वसु प्रेम सौरभ सरन ॥१॥

साधु-स्तुति—

राग-जयतिश्री-

(श्री) माधवदास सरन में आयौ ।
हौं अजान ज्यौं नारद ध्रुव सों कृपा करी सन्देह भगायौ ॥
जिनहिं चाहि गुरु सुकल तज्यौ-वपु फिरकैं दरसन पायौ ।
सो सिर हाथ धरौ करुना करि प्रेम भक्त फल पायौ ॥

हरिवंसी, हरिदासी सों मिलि कुञ्जकेलि-रस गाय सुनायौ।
गुरुहरि,साधु,नाम,बन,जमुना, महाप्रसाद रसालय भायौ॥
जातें सहज प्रिया प्रीतम बस कलजुग वृथा गँवायौ।
मनसा वाचा और कर्मना व्यासहि स्याम चतायौ ॥२॥

राग-सारङ्ग–

नमो नमो नारद मुनिराज ।
विषयिन प्रेम भक्ति उपदेसी,
छलबल किये सबन के काज ॥
जासों चित दै हित कीनौ ते,
सब सुधरे साधु समाज ।
'व्यास' कृष्ण लीला रँग राचे,
मिटगई लोक वेद की लाज ॥ ३ ॥

नमो नमो जय सुकदेव बानी ।
जो सुमिरत हरि मन में आवत
गावत सुधरे सब अभिमानी ॥

तासों प्रीति करत भ्रम छूटत,
कर्म दुरासा त्रास डरानी ।
मद मत्सर माया सुत जाया,
काया विसरी सब दुख दानी ॥
जिन सर्वोपरि वृन्दावन की,
सहज माधुरी केलि बखानी ।
निर्मल भजन अनन्य जिन निरसे,
जोगादिक तुछि ध्यानी ॥
जिनकी विषै भागवत सन्तत,
भक्ति भाव भक्तन पहिचानी ।
जय जय 'व्यास' उत्तरानन्दन,
आनँद कन्द सरद घन पानी ॥ ४ ॥

सुक नारद से भक्त न कोऊ जिहि भागवत सुनायौ ।
बिनु भागवत भक्ति न उपजै साधन साध बतायौ ॥
जिनके वचन सुनत सन्देह परीछत देह भुलायौ ।
संसारी ताकौ करुना करि सुखदानी दिखरायौ ॥
जिनकी कृपा कृपाल होति हरि सुत ह्वै आपु बँधायौ ।
तिन कारन गिरवर धरि विष पावक पीवत सुख पायौ ॥
कहा-कहा न कियौ करुनानिधि निज दासनिको भायौ ।
कोटि अजामिलहू तैं पापी व्यासहि नाम लिवायौ ॥५॥

श्रीजयदेव से रसिक न कोई, जिन लीला रस गायौ।
जाकी जुगति अखण्डित मण्डित,
सबही के मन भायौ ॥
विविधि विलास कला कवि मण्डन,
जीवनि के भागनि आयौ ।
'पतित पत्र' मुखते विसरतहीं,
राधा माधव दरसन पायौ ॥
बृन्दावन कौ रसमय वैभव,
जिनि पहिलैं सबनि सुनायौ ।
ता पाछे औरन कछु पायौ
सो रसि सबनि चखायौ ॥
पद्मावति चरनन कौ चारन,
जिहि गोविन्द रिझायौ ।
'व्यास' न आस करी काऊ की
कुञ्जन स्याम बुलायौ ॥ ६ ॥

अनन्य नृपति (श्री) स्वामी हरिदास ।
(श्री) कुञ्जविहारी सेये बिनु जिन,
छिन न करी काहू की आस ॥

सेवा सावधान अति जान,
सुघर सरस गावत दिन रास।
ऐसो रसिक भयो नहीं ह्वै है,
भुव मण्डल आकास ॥
देह विदेह भये जीवत ही,
विसरे विश्व विलास ।
श्रीवृन्दावन रज तन मन भजि,
तजि लोक वेद की आस ॥
प्रीत रीत कीनी सबही सों,
किये न खास खवास ।
अपनौ व्रत हठि ओर निवाह्यौ,
जब लगि कण्ठ उसास ॥
सुरपति भुवपति कञ्चन कामिनि,
जिनके भायैं घास ।
अबके साधु 'व्यास' हमहूं से,
जगत करत उपहास ॥ ७ ॥

राग-गौरी—

नमो नमो जै श्रीहरिवंस ।
रसिक अनन्य वेनु कुल मण्डन,
लीला मनासरोवर हंस ॥

नमो जयति (जै) श्रीवृन्दावन,
सहज माधुरी रास विलास प्रसंस।
आगम निगम अगोचर,
(श्री) राधे चरन सरोज व्यास अवतंस॥८

राग-सारङ्ग—

साँची भक्ति नामदेव पाई।
कृष्न कृपा करि दीनी जाकौं लोकनि वेद बड़ाई॥
प्रीति जानि पय पियौ कृपानिधि छाँनि छबीलैं छाई।
चरन पकरि सठ के हठ बल ज्यों हरि सों बात कहाई॥
जाके हित हरि मन्दिर फेर्‌यौ चित दै गाइ जिवाई।
जिन रोटी घी चुपरि स्याम कौं अपने हाथ खवाई॥
जाकी जाति पाँति-कुल वीट्ठल सन्तजना सब भाई।
ताकी महिमा 'व्यास' कहा कहै जाके सुवस कन्हाई॥९॥

कलि में साँचौ भक्त कबीर।
जबतें हरि चरननि रुचि उपजी तब ते बुन्यो न चीर॥
दीनौं लेइ न कबहूं जाचै ऐसो मत को धीर।
जोगी, जती, तपी, संन्यासी तिनकी मिटी न पीर॥
पाँच तत्व ते जन्म न पायौ काल ग्रस्यौ न शरीर।
'व्यास' भक्ति को खेत जुलाहौ हरि करुना में नीर॥१०॥

मेरैं भक्त हैं देई देऊ।

भक्तनि जानौ भक्तनि मानौ निज जन मोहि बतेऊ॥

माता पिता भैय्या मेरे भक्त दमाद सजन बहनेऊ।

सुख सम्पत्ति परमेश्वर मेरैं हरिजन जाति जनेऊ॥

भवसागर को वेरौ भक्तै केवट बड़ हरि खेऊ।

बूड़त बहुत उबारे भक्तनि लिये उबारि जरेऊ॥

जिनकी महिमा कृष्ण कपिल कहि हारे सर्वोपरि वेऊ।

'व्यास'दास के प्रान जीवन धन हरिजन बाल बड़ेऊ॥११॥

राग-नट—

श्री (हित) हरवंस से रसिक (स्वामी) हरिदास से,

अनन्यनि की को वपुरा अब करि सकै सारी।

जिन वृन्दावन साँचौ करि जान्यौ,

'राधावल्लभ' कुंजविहारी॥

रूप सनातन हैं वैरागी,

उपकारी सब के हितकारी।

'व्यास' धन्य धनि ब्रजवासी हैं,

कृष्णदास गोबर्द्धन धारी॥१२॥

राग-देवगान्धार—

जै-जै मेरे प्रान सनातन रूप।
अगतिन की गति दोऊ भैय्या जोग जज्ञ के जूप॥
(श्री) वृन्दावन की सहज माधुरी प्रेम सुधा के कूप।
करुनासिन्धु अनाथबन्धु जय भक्ति सभा के भूप॥
भक्ति भागवत मति आचारज कुल के चतुर चमूप।
भुवन चतुर्दश विदित विमल जस रसना के रस तूप॥
चरन कमल कोमल-रज छाया मेटत कलि रवि धूप।
'व्यास' उपासक सदा उपासी (श्री) राधा-चरन अनूप ॥१३॥

राग-धनाश्री—

प्रबोधानन्द से कवि थोरे।
जिन राधावल्लभ की लीला-रस में सब रस घोरे॥
केवल प्रेम विलास आस करि भव-बन्धन दृढ़ तोरे।
सहज माधुरी वचननि रसिक अनन्यनि के चित चोरे॥
पावन रूप नाम गुनि उरि धरि विषै विकार जु मोरे।
जाया माया ग्रह देही सों रवि-सुत बन्धन छोरे॥
लोक वेद सारङ्ग अङ्ग के सेत हेत के फोरे।
यह प्रिय 'व्यास' आस करि(श्री)हितहरिवंसहि प्रतिकर जोरे १४॥

पद्मावती पति पद सरनम् ।
कुंजकेलि कविराज मुकुट मनि,
रसिक अनन्यनि आभरनम् ।
श्रीहित हरिवंस हंस सुख सुखमय,
बचन रचन दुख जल तरनम् ।
श्रीजयदेव 'व्यास' कुल वन्दित,
ब्रज युवती नट नित करनम् ॥१५॥
साँची प्रीति श्रीविहारिनि दासै ।
कै करवा कै कुञ्ज कामरी,
कै सिर श्रीस्वामि हरिदासै ॥
प्रतिवादहि सहि सकत न तिनके,
जानत नहीं कहा कहै त्रासै ।
महामाधुरी मत्त मुदित ह्वै गावत,
रस जस जगत उदासै ॥
छिन ही छिन परतीत बढ़त रस,
रीतिनि देखि विचित्र-वदन विलासै ।
अङ्ग-अङ्ग नित्य विहार करत मिलि,
यहै आस निजु वनवसि 'व्यासै' ॥१६॥

इतनौ है सब कुटुम्ब हमारौ ।
सैना धना अरु नामा पीपा और कबीर, रैदास चमारौ॥
रूप, सनातन कौ सेवक गङ्गल भट्ट सुढारौ।
सूरदास, परमानन्द मेहा मीराँ भक्त विचारौ॥
ब्राह्मन राजपुत्र कुल उत्तम तेउ करत जाति कौ गारौ।
आदि अन्त भक्तन को सर्वस राधावल्लभ प्यारौ॥
आसूकौ हरिदास रसिक हरिवंस न मोहि बिसारौ।
इहि पथ चलत स्याम स्यामाके'व्यासहि'वोरौभव तारौ॥१७

विरह—

राग–सारङ्ग—

साँचे जु साधू रामानन्द ।
जिन हरि जू सो हित करि जानौ और जानि दुख द्वंद॥
जाको सेवक कबीर धीर अति सुमति सुरसुरानन्द।
तब रैदास उपासक हरि कौ सूर सु-परमानन्द॥
इतने प्रथम त्रिलोचन नामा दुखमोचन सुख-कन्द।
खेम-सनातन भक्ति–सिंधु रस रूप राघवानन्द॥
अलि हरिवंसहि फब्यौ राधिका पद-पङ्कज मकरंद।
कृष्नदास हरिदास उपास्यौ वृन्दावन को चंद॥
जिन बिनु जीवत मृतक भये हम सह्यों विपति को फंद।
तिनु बिनु उरको सूलमिटै क्यों जिये व्यास अति मंद॥१८

राग-देवगन्धार—

हुतौ, सुख रसिकनि कौ आधार।
बिनु हरिवंसहि सरस रीति कौ कापै चलि है भार॥
को राधा दुलरावै गावै वचन सुनावै चार।
श्रीवृन्दावन की सहज माधुरी कहि है कौन उदार॥
पद रचना अब कापै ह्वै है निरस भयो संसार।
बड़ो अभाग अनन्य सभा कौ उठिगो ठाठ सिंगार॥
जिन बिनु दिन छिन सतयुग बीतत सहज रूप आगार।
'व्यास'एक कुल कुमद-बन्धु बिनु उड़गन जूंठौ थार॥१९॥

राग धनाश्री—

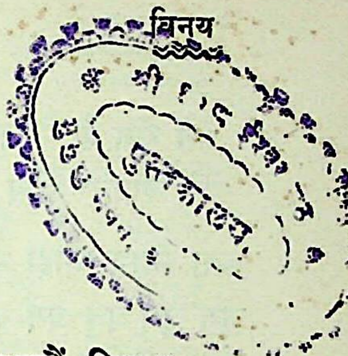
पै न छवि कोऊ कवन बखाने।
जीव कुकात प्रीति कहिवे कों व्याकुल होत अपानै॥
अति अगाध रस-सिंधु माधुरी वेई पै कहि जानै।
ताको वार-पार नहिं पावत विधि शिव सेष धरत श्रुति ध्यानै॥
कोटि-कोटि जयदेव सरीखे कहत सुनत न अघानै।
'व्यास' आस मन की कौ पुजवै श्रीहरिवंस समानै॥२०॥

राग-सारङ्ग—

बिहारहिं स्वामी बिनु को गावै।
बिनु(हित) हरिवंसहि राधिकावल्लभ को रस-रीति सुनावै॥

रूप सनातन बिनु को वृन्दाविपिन माधुरी पावै।
कृष्नदास बिनु गिरधरजू को को अब लाड़ लड़ावै॥
मीराबाई बिनु को भक्तनि पिता जान उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सब बन्धु कहावै।
परमानन्ददास बिनु को अब लीला गाय सुनावै।
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कविहि कहि आवै।
और सकल साधन बिनु कौ यह कलिकाल कटावै।
'व्यासदास' इन बिन कौं अब तन की तपन बुझावै ॥२१

साधु-सिरोमनि रूप सनातन।
जिनकी भक्ति एक रस निवही प्रीत कृष्न राधा तन।
जाको काज सवाँर्यौ चित्त दै हित कीनौ छिन तातन।
जाकै विषय-वासना देखी मनसा करी न वातन॥
श्रीवृन्दावन की सहज माधुरी रोम-रोम सुख गातन।
सब तजि कुंज केलि भज अहनिसि अति अनुराग सदा तन
तृन हूं ते नीचे तरहूं ते सहकर आमानी मान सुहातन।
असि धारा व्रत और निवाह्यौ तिन मन कृष्न-कथा तन॥
करुनासिंधु कृष्नचैतन्य की कृपा फली दुहुँ भ्रातन।
तिन बिनु 'व्यास' अनाथ भये सब सेवत सूखे पातन ॥२



विनय—

राग-कान्हरो—

मेरी पराधीनता मेटौ हरि किन ।
अपनै सरन राखिलेहु बलिजाऊँ,
बिमुखनि के द्वारैं उझकौं जिन ॥
तुम्हरे दासहि आस और की,
उपजत नाहिनै स्याम तुम्हैं धिन ।
सिंघन के बालक भूखे हूं,
प्रान तजत नहीं चरत हरचौ त्रिन ॥
ताही प्रभु की प्रभुता साँची,
जाकौ सेवक सुख पावै दिन ।
'व्यासहि' आस राधिका-वर की,
रूठौ तूठौ अब ही किन ॥२३॥

राग-सारङ्ग—

मोहि देउ भक्ति को दान ।
या सम्पति कौ दाता और न, हौं मागौं कछु आन ॥
एक चुरु जल प्यासो जीवै यौं राखै कौ मान ।
पाछैं सुधा सिन्धु कहा कीजै छूटि गये जै प्रान ॥
ऐसे अँग न देइ कुरंग सुनत नादहि सही बान ।
जैसैं मद गयन्द बिनु बिछुरैं सहि न सकत ऐलान ॥

तैसें भृंग बँध्यौ जल सुत सौ एक लोभ परधान ।
ऐसें 'व्यास' आस कर बाँधे मुकरे वे भगवान ॥२४॥

कर्ता स्याम सनेही सब कैं ।
जुग जुग बतु जग जीवनि कैसैं जिनहिं छाँड़ि हैं अब कैं ॥
बहुत दुखित दुख सागरतें हरि काढ़ि लये कर केसनि वहकैं।
इतनी आस'व्यास'की पुजवहु राखहु वृन्दावन में दबकैं॥२५

वेद् भागवत स्याम बनायौ ।
गुरु बचननि परतीति बड़ाई साधन सब सन्देह भगायौ॥
त्रिभुवन में भुवि जालगि जनये निजु वपु छीन छुड़ायौ।
साधु संग कीनी वंसी वस निस्चै करि मन भायौ॥
जहाँ भक्त सब जात तहाँ ते अजहूं कोऊ न आयो।
'व्यासहि' विदा करौ करुना करि समाचार लै आयौ ॥२६

श्रीवृन्दावन की महिमा—

राग-सारंङ्ग —

कहाँ हौं वृन्दावन तजि जाँउ ।
मोसे नीच पोच कों अनत न हरि बिन और न ठाँउ ॥
सुख पुञ्जनि कुञ्जनि के देखत विषय विषै क्यों पाँउ।
एक आगि डाढ्यो दूजी आग माँझ न बुझाँउ ॥

एक प्रसन्न नमो पर निसि-दिन छिन-छिन सवै कुदाउँ।
राधारमन सरन बिनु अब हों काके पेट समाउँ॥
भोजन छाजन की चिन्ता नहिं मरिबेहू न डराउँ।
सिर पर सेंदुर 'व्यास' धरयो अब ह्वै है स्याम सहाउँ॥२७॥

मेरे तन सों वृन्दावन सों हरि जिन होहु विछोह।
अरु यह साधु-सङ्ग जिन छूटौ ब्रजवासिन सों छोह॥
देउ कृपाल कृपा करि मोकों राधा पति सों मोह।
विषई विपय कनक कामिनि सों मोहि करौ निरमोह॥
चारु चरन रज पारस परस्यौ चाहत हौं मन लोह।
रागादिक बैरिन में 'व्यासहि' मोहन करहु निलोह॥२८॥

करलै करुआ कुञ्ज सहायक।

पीलू पैचू सागु सेंगरे छाँछि समाँ मन भायक॥
विहरत स्यामास्याम सनेही दीनन के सुखदायक।
वृन्दावन की रेनु धेनु तरु तीर सेइवे लायक॥
अभिमानीनि सजा दै रोकत ब्रजवासी हरि पायक।
काम केलि सुख के रखवारे हरषत वरषत सायक॥
मगन सवै आनँद सिंधु महँ नन्दादिक ब्रज नायक।
'व्यास' रास भूमिहि नहिं परसत नीरस माया मायक॥२९॥

ऐसे हि बसिये ब्रज-बीथिनि।
साधुन के पनवारे चुन-चुन उदर पोषियत सीथिनि॥
घूरनि में के बीन चिनगटा रच्छा कीजै सीतनि।
कुञ्ज-कुञ्ज प्रति लता लोटि उड़ रज लागे अङ्गीथिनि॥
निंत प्रति दरस स्यामस्यामा कौ नित जमुना जल पीतनि।
ऐसे ही 'व्यास' होत तन पावन इहिविधि मिलत अतीतिनि॥३

माला हरि मन्दिर तें पावन बृन्दावन की रैनु।
भक्ति भागवत हूं ते प्यारी रसिकन मोहन बैनु॥
महाप्रसाद स्वाद तैं मीठौ गाइन कौ पय फैनु।
साधु सङ्ग ते अधिक जानि कै ग्वाल मण्डली धेनु॥
वर मथुरा वैकुण्ठ लोक तें सुखद निकुञ्जनि ऐनु।
सुक नारद सनकादिकहू तैं दुर्लभ मोहन सैनु॥
सुनौ न देखौ भयौ न ह्वै है राधा सन रस चैनु।
'व्यास' वल्लभ वपु वेदनि हूं (तें) माँग्यौ मोहन मैंनु॥३

राग-देवगन्धार—

श्रीवृन्दावन देखत नैन सिरात।
इनि मेरे लोभी नैननि में सोभा सिंधु न मात।
सन्तत सरद वसन्त बेलि द्रुम भूलत फूलत घात
नन्दनँदन बृषभानुनन्दिनी मानहुँ मिलि मुसिकात।

ताल तमाल रसाल साल पल पल चमकत फल पात।
मनहुँ गौरमुख विधुकर रञ्जित सोभित साँवल गात॥
किंसुक नवल नवीन माधुरी विगसित हित उरझात।
मानहुँ अबीर गुलाल भरे तन दम्पति रति अकुलात॥
बैठे अलि अरविंद बिम्ब पर मुख मकरन्द चुचात।
मानहुँ स्याम कंच कुच कर गहि अधर सुधा पीवत वलिजात॥
नाचत मोर कोकिला गावत कीर चकोर सुहात।
मनहुँ रास रस नाचैं दोऊ विछुर न जानत प्रात॥
त्रिभुवन के कवि कहि न सकत कछु अद्भुत गति की बात।
'व्यास' बात नहिं मुख कहि आवै ज्यों गूंगहि गुर खात॥३२

मन रति बृन्दावन सौं कीजै।
खायौ पीयौ भरचौ भूंज्यौ अब जीवन कौ फल लीजै॥
काज अकाज जानि सब आपुनौ दाउ सवाँरौ दीजै।
देखि धेनु सुनि बैनु रैनु तजि धृक-धृक जग जौ जीजै॥
जमुना तट वंशीवट निकट रहत जु यह तन छीजै।
वरषत स्यामास्याम रास रस 'व्यास' नैन भरि पीजै॥३३॥

राग धनाश्री—

माया काल न रहत वृन्दावन रसिकन की रजधानी।
सदा राज व्रजराज लाड़िलो राधा सन्तत रानी।

मथुरामंडल देस सुवस गढ़ गोवर्द्धन सुखदानी।
रास भँडार सुभोग रहत अति पावन जमुना पानी।
वंसीवट छत्र, पुलिन सिंघासन मृदंग अलि पिक बानी।
कटि काछिनी टिपारौ बाँधे मोर सुअङ्ग गठानी।
निर्भय राज पन्थ चिरवीथिनि महल निकुञ्ज रवानी।
प्रतीहार ब्रजवासी रोकत सपनैं हूं न जात अभिमानी।
हरिवंसी हरिदासी महलिनि साधु सनातन जानी।
वेगि खबर करि 'व्यास' गुदरवी पिछिली हू पहिचानी॥३॥

सदा बन कौ राजा भगवान।
जाकौ अन्त अनंत न जानत करि मुख चतुर बखान।
जो परभाव भक्ति रजधानी राधारानी प्रान।
कुञ्ज महल (श्री) वृन्दावन धन गोपी रूप निधान।
प्रेम प्रजा ब्रजवासी अनुचर ग्वाल ग्वालि संतान।
माइ जसोदा नंद पिता सुखदाता श्रीवृषभान।
विटप छत्र छाया मृदु राजत आसन सभा सुजान।
मंत्री मदन सहायक संतत लायक विषय प्रधान।
नटवा मोर और कल कोकिल मधुप सुरन बंधान।
भेरि भार ही झरना कलरव मधुर मृदंग निसान।
राज भोग संजोग सदा गति रास विलास सु-गान।
यह सुख 'व्यास' दास को निसिदिन दीनो कृपानिधान॥३

यह वृन्दावन मेरी सम्पत्ति ।
इह लोक परलोक वृन्दावन मेरौ,
पुरुषारथ परमारथ गथु गति ॥
साधन साधु सन्तत वृन्दावन,
राग रङ्ग गुन गुनौ जहाँ अति ।
भक्ति भागवत वृन्दावन मेरो,
मात पिता भैया गुरु सम्मति ॥
मन्दिर जगमोहन मन कोठो,
वृन्दावन सेवा-मेवा निति ।
दाता दान मान वृन्दावन,
छिनछूटै न रहै प्रान पति ॥
जहाँ निकुञ्ज पुञ्ज सुख विहरत,
राधामोहन मोहे काम रति ।
तहाँ 'व्यास'वनिता भयो चाहत,
चारयौ वेद करत मत आरति ॥३६॥

वन परमारथ पथ हरि मेरौ ।
अर्थ करत अनरथ मो कहँ मारतु है घर ही में घेरौ ॥
कियौ अनन्य वीच नीच ह्वै आइ फब्यौ रसिकनि को टेरौ ।
'व्यास'आस के श्याम भरोसे दुखके बीज वये रसखेरौ॥३७॥

श्रीवृन्दावन की सोभा देखत विरले साधु सिरा[illegible]
विटप वेलि मिलि केलि करत रस रङ्ग अङ्ग लपटात
भुज-साखनि परिरम्भन चुंबन देत परसि मुखपात
कुच-फल सदय हृदय पर राजत फूल दशन मुसकात
कोटर श्रवन सुनत मृदु कुञ्जनि किसलय नैन चुचात
निर्त्ति विहारहि खग सुर गाइनि गावत सुरभि सुवात
इहि रस जिनके तन मन राचे तिनहि न और सुहात
'व्यास' विलास सिन्धु लोभिन के उर सरवर न समात ॥३[illegible]

देखौ श्रीवृन्दाविपिन प्रभाइ ।
सब तीरथ धामनि फिर आवत देखत उपजत भाइ
श्रीजमुना तट लता भवन रज छिन-छिन बाढ़त चाइ
मगन होत जब सुधि बुधि विसरत कहूं चलत नहिं पाइ
यह रस चाखि और सुख भूले फूलत लखि मन अति गहराइ
अचरज कहा 'व्यास' सुख वरनत थके रसिक ताहि गाइ॥[illegible]

राग-कमोद—

धनि-धनि वृन्दावन की धरनि ।
अधिक कोटि वैकुण्ठ लोक तें शुक नारद मुनि वरनि
जहाँ स्याम की वाम केलि कुल धाम काम मन हरनि
ब्रह्मा मोह्यौ ग्वाल मण्डली भेद रहित आचरनि

राधा की छवि निरखत मोही नारायण की घरनि ।
और बार कीनी वनि वनिता प्रेम पतिहि अनुसरनि ॥
जहाँ महीरुह राज विराजित सदा फूल फल फलनि ।
तहाँ व्यास बसि ताप बुझायौ अन्तर हित की जरनि ॥४०॥

राग-केदारो—

सुखद सुहावनौ वृन्दावन लागत है अति नीकौ ।
त्रिविधि समीर वहै रुचि-दाइक, भाँवते भाँवती कौ ॥
मोर, चकोर, हंस-हंसिनि युत, पीवत, पान अधर-रसपीकौ ।
पलक न लगत अङ्ग छबि निरखत, जानत जीवनि जीकौ ॥
मुरली बजाइ, सुनाइ श्रवण ध्वनि,
सन्तन सौं मण्डल रचि लीकौ ।
तत् तत् थेइ थेइ बोलि परस्पर,
तन में तनक न सीकौ ॥
नित्य विहार अहार करत हैं,
ब्रजवासिनि सुख पुन्य रतीकौ ।
'व्यास' दास या सुख के ऊपर,
और ज्यौं दीपक द्यौस (ही) फीकौ ॥४१॥

राग-सारङ्ग—

सदा वृन्दावन सब की आदि ।
रसनिधि सुखनिधि जहाँ बिराजत नित्य अनन्त अनादि ॥

गौर स्याम को सरन हरन दुख कन्द मूल मुंजादि
सुक, पिक, केकी, कोक, कुरंग,
सिंह, कपि तहाँ सोहत जनकादि ।
तरु, तृण, गुल्म, कल्पतरु,
कामधेनु गो बृष धर्मादि ॥
मोहन की मनसा तें, प्रगटित,
अंस कला कपिलादि ।
गोपिन को नित नेम प्रेम पद,
पंकज जल कमलादि ॥
राधा दृष्टि सृष्टि सुन्दरि की,
वरनत जयदेवादि ।
मथुरा मण्डल के जादव कुल,
अति अखण्ड देवादि ॥
द्वादश-बन में तिलु–तिलु धरनी,
मुक्ति तीर्थ गंगादि ।
कृष्ण जन्म अचला न चलै,
जो होहि प्रलय मन्वादि ॥
गिरि गहवर वीथी रत रन में,
कालिन्दी सलिलादि ।

सहज माधुरी मोद विनोद,
सुधा सागर ललितादि ॥
सबै सन्त सेवत निरवैरिन,
लखि माया नासादि ।
सेष असेष पार नहिं पावत,
गावत सुक 'व्यासादि' ॥ ४२ ॥

कहत हूं बनै न ब्रज की रीति ।
यह सुख सुक सनकादिक माँगत माया मोहहि जीत ॥
सब गोपाल उपासिक तन मन वृन्दावन सों प्रीति ।
एक गोविन्द चन्द लगि छाँड़ी लोक वेद की भीति ॥
सहज सनेह देह गति विसरी वाढ़ी सहज समीत ।
सम्पति सदा रहत विपदा महिमोहन की परितीति ॥
अगनित प्रलय पयोधि बढ़त हू मिटी न घोष वसीति ।
'व्यास' बिहारिहि विहरत वन (में),
अवतार गये सब बीति ॥ ४३ ॥

(श्री) वृन्दावन की सोभा देखत मेरे नैन सिरात ।
कुञ्जनि कुञ्ज पुञ्ज सुख बरषत हरषत सबके गात ॥
राधामोहन के निज मन्दिर महा प्रलय नहिं जात ।
ब्रह्माते उपज्यो न, अखण्डित कबहूं नहीं नसात ॥

फनि पर रवि तरि नहीं विराट महँ नहिं संध्या नहिं प्रात।
माया काल रहित नित नूतन सदा फूल फल पात।
निर्गुन सगुन ब्रह्म ते न्यारौ विहरत सदा सुहात।
'व्यास' विलास रास अद्भुत गति निगम अगोचर बात॥४४॥

बृन्दावन की वलाइ लैउ हों।
देखत जाहि राधिका मोहन सुख पावत रों रों।
सीतल छाँह सुवास कुसुम फल जमुना जल रस सों।
विटप वेलि प्रति केलि प्रगट विट वधू प्रताप न दों।
सुक, पिक, आलि, केकी मराल खग मृग मन माँहि वच्यौ।
व्रजवासिन की पदरज तन मन सुखसागरहि सचों।
छबि निधि 'व्यास' हि फब गई,
भक्ति क्यों छिन छाँडि सकों॥ ४५॥

छबीली वृन्दाबन की धरनि!
सदा हरित सुख भरति मोहनी,
मोहन यह सत करनि॥
धवल धेनु छवि नवल ग्वाल,
फबि सोभित द्रुम की जरनि।
रङ्ग भरी अङ्ग अङ्ग विराजत,
पल्लव लव-लव धरनि॥

चन्द्रक चारु सिंगार केकि नट,
नाचत मिल नागरनि।
गुन अगाध राधा हरि गाइ,
बजावत सुख सागरनि॥
कुञ्ज-कुञ्ज कमनीय कुसुम,
सैनिय केलि आचरनि।
कुच गहि चुम्बन करि दुख,
मेटि-भेटि भुज आँकौ भरनि॥
पावक पवन चन्द तारा जहँ,
आभासत नहीं तरनि।
'व्यास' स्वामिनी को बल वैभव,
कहि न सकत कवि डरनि॥४६॥

प्यारी श्रीवृन्दावन की रैन।
जाहि निरख मोहन सुख पावत हरषि बजावत बैन॥
जहाँ तहाँ राधा चरननि के अङ्क विराजत ऐन।
राजभोग संजोग जहाँ तहाँ दम्पति के रति-सैन॥
रसिक अनन्यन कौ मुख-मण्डन दुख-खण्डन सुख चैन।
मधु मकरंद चन्द रस बरषत गोधन कौ निज फैन॥
कुञ्जनि पुञ्जनि की छबि निरखत रति भूनी पति मैन।
'व्यासदास' कौ कुंवरिकिसोरी बाँयो दाँयो नैन॥४७॥

प्यारे श्रीवृन्दावन के रूख।
जिन तर राधा मोहन विहरत देखत भागत भूख।
माया काल न व्यापै जिन तर सींचै प्रेम पयूष।
कोटि गाय बांभन हत साखा तोरत हरिहि विदूष।
रसिकनि पार जात सूझत है विमुखन ढाँक पिलूख।
जो भजिये तो तजिये पान, मिठाई, मेवा, ऊख।
जिनके रस वस ह्वै गोपिन तज सुख सम्पति ग्रह तूष।
मनि कञ्चन मय कुञ्ज विराजत, रंध्रनि चन्द्र मयूष।
जिहिं रस भोजन तज्यौ परीछित उपजौ सुकहि अतूष।
'व्यास'पपीहा वन घन सेयौ दुख सलिता जर सूख ॥४८

छबीली वृन्दावन की वेलि।
आनँद कन्द मूल सुख-मय फल फूल सुधा मधु झेलि॥
राधारमन भवन मन मोहन निरिख बढ़ावति केलि।
मलयज मृगज, कपूर, धूरि, कुंकुम, सौरभ रस झेलि॥
तहाँ विराजत हंस हंसिनी अंसबाहु पर मेलि॥
अलि कुल नैंन चषक रस पीवत कोटि मुक्ति पग पेलि।
'व्यास'स्वामिनी पियहि सुवसि करि विरमीते नाहिन खेलि॥४६

बिराजै (श्री) वृन्दावन की वेलि।

फूलन द्रुम भरिताहि भेंटि,
दुख मेटि अंस भुज मेलि॥
अरझि नाह की बाँहनि कुञ्जित,
केस सु देसनि वेलि।
कल फल पीन पयोधर पिय के,
हिय सुख सागर झेलि॥
किसलय वदन विहंसि चुम्बन करि,
पुलकि-पुलकि करि केलि।
आँनद नीर नयन मधु वरषत,
हरषत कोटिक खेलि॥
षट् भूषन नव कुसुम पत्र छवि,
रवि पावस अवहेलि।
'व्यासि' राधिका रमन भवन कौ,
निरखत है पग पेलि॥५०॥

श्रीवृन्दावन प्रगट सदा सुख चैन।
कुञ्ज निकुञ्ज पुञ्ज छवि वरषत आनंद कहत बनै न॥

कुसुमित नमित विटप नव साखा,
सौरभ अति रस ऐन ।
मधुप, मराल, केकि, सुक, पिक,
धुनि सुनि व्याकुल मन मैन ॥
स्यामा-स्याम फिरत वन वीथिन,
होत अचानक ठैन ।
पुलकित गात सम्हारन भुज में,
भैटत वात कहै न ॥
अति उदार सुकुमारि नागरी,
रोम-रोम सुख दैन ।
हाव भाव अँग-अँग विलोकत,
धन्य 'व्यासि' के नैन ॥५१॥

मैदा मिश्री मुहरें मेरैं श्रीवृन्दाबन की धूरि ।
राधा रानी मोहन राजा,
राज रह्यौ भरि पूरि ॥
कनक कलस, करुवा महमूदी,
खासा ब्रज कमरनि की धूरि ।
'व्यास' हि श्रीहरिवंस बताई,
अपनी जीवनि मूरि ॥५२॥

रुचित मोहि वृन्दावन कौ सांग।

कन्द, मूल, फल फूल, जीविका में पाई बढ़ भाग ॥
घृत, मधु, मिश्री, मेवा, मैदा, मेरे भावै छाग।
एक गाय पै वारौं कोटिक एरावति से नाग ॥
जल जमुना पर वारौं सोमपान से कोटिक जाग।
श्रीराधापति पर वारौं कोटि रमा के सुभग सुहाग ॥
साँची माँग किसोरी के सिर मोहन के सिर पाग।
वंसीवट पर वारौं कोटिक देव कल्प तरु वाग ॥
गोपिन की प्रीतिहि पूजत सुक नारद अनुराग।
कुञ्ज केलि मीठी है विरह भक्ति सीठी ज्यों आग ॥
'व्यास' विलास रास रस पीवत मिटैं हृदय के पाग ॥५३॥

मीठी वृन्दावन की सेवा।

स्यामा स्यामहि नीकी लागत ज्यों बालकहि कलेवा।
वेलि हमारी कुल देवी सब विटप गुल्म सब देवा।
और धरम अकरम से लागत विन माला लगत ज्यौ जनेवा॥
कुञ्जनि कुञ्जनि कुसुम पुंज रचि सैन ऐन मधु मेवा।
मनि कञ्चन भाजन भरि सौंधे अंग धूप कौ खेवा ॥

विहरत सदा दुलहिनी दूलह अंग-अंग मधु रस पेवा
'व्यास' रास आकास फिरन दोऊ मानहु प्रेम परेवा ॥५

मोसो पतित न अनत समाइ ।
याही तें मैं श्रीवृन्दावन कौ,
सरन गह्यौ है आइ ।
बहुतनि सौं मैं हितकरि देख्यौ,
अनत न कहूं खटाइ ॥
कपटि छाँड़ि मैं भक्ति कराई,
दारा सुतनि न चाइ ॥
भक्ति पुजाये लीला करि,
सबही की जूँठनि खाइ ।
ता ऊपर विरचे सब मो सों,
कोटि कलङ्क लगाइ ॥
अजहूं दान्त पन्हैया गहि,
तिनहू के चाटों पाइ ।
तो न तिन्है प्रतीत 'व्यास' की,
सत छाँडै पति जाइ ॥५५॥



मधुपुरी की स्तुति—

सारङ्ग व कान्हरौ—

धनि धनि मथुरा, धनि धनि मथुरा,
धनि मथुरा के वासी हो।
जीवन मुक्ति सबै बहरत है,
केसव राय उपासी हो ॥
माला तिलक हृदै अति राजत,
मुनि मन ज्ञान प्रकासी हो।
स्थावर जङ्गम सबै चतुर्भुज,
काम, क्रोध कुल नासी हो ॥
सुगम नदो विश्रान्त जमुन जल,
मज्जन काल विनासी हो।
'व्यास दास' षट् पुरी दुरीं सब,
हरिपुर भयौ उदासी हो ॥५६॥

सखी हौ वृन्दावन बसिये।
तीन लोक तें न्यारी मथुरा और न दूजी दिसिये ॥
केसवराय, गोवर्द्धन, गोकुल पल-पल माँहि परसिये।
जमुना जल विश्रान्त, मधुपुरी कोटि कर्म जहँ नसिये ॥

नन्दकुमार सदा वन विहरत कोटि रसायन रसिये
व्यासदास प्रभु जुगल किशोरी कोटि कसौटी कसिये



नाम की स्तुति—

राग-कान्हरौ—

परम धन राधा नाम अधार ।
जाकों स्याम मुरली में टेरत सुमिरत बारम्बार
जंत्र मंत्र अरु वेद तंत्र में सभी तार कौ तार
श्री सुक प्रकट कियौ नहिं याते ञान सार कौ सार
कोटन रूप धरे नँद नन्दन तौऊ न पायौ पार
"व्यासदास" अब प्रगट बखानत डारि भार में भार

लगी रट, राधा श्रीराधा नाम ।
ढूढ़ि फिरी विन्दावन सगरौ, नन्द ढिठौना स्याम
कै मोहन कै खोर साँकरी कै मोहन नँदगाँव
श्री "व्यासदास" की जीवन राधे धनि बरसानों गाँव

राग–भैरव—

हरि हरि बोल हरि बोलि प्यारी रसना ।
हरि, बोले बिनु नरकहि बसना ॥
हरि बोलि नाचि न मेरे मना ।

हरि बोलि होइ निरमल तना ॥
हरि बोलि पर निन्दा नहीं करना ।
हरि बोल राधा चरन सरना ॥
हरि बोलि वृन्दा विपिन गहना ।
हरि बोलि हरि बोल सबै सहना ॥
हरि नाम हरि नाम सदा जपना ।
हरि बिनु 'व्यास' न कोऊ अपना ॥६०॥

राग-सारङ्ग—

गोपाल कहिए गोपाल कहिए ।
गोपाल कहिए कछु और न कहिए ॥
गोपाल कहिए दुख सुख (सब) सहिए ।
गोपाल ज्यों राखैं त्यों ही रहिए ॥
गोपाल गाइए परम पद लहिए ।
'व्यास' बेगि वृन्दावन गहिए ॥६१॥

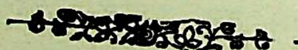
राग-नट—

'नर हरि गोविन्द गोपाला ।
दीनानाथ दया निधि सुन्दर दामोदर नँदलाला ॥
सरन कल्प तरु, चरन कामधेनु आरत हरन कृपाला ।
महा पतित पावन मन भावन राधारमन रसाला ॥

अघ, वक, वकी, वत्स, धेनुक कंस केलि कुल काला
साधु सभा हरि पुष्ट करहिं दिन दुष्टन के घर घाला
मान सरोवर रसिक अनन्य हृदय कल कमल मराला
घन तन स्याम नाम राधा धव नागर नैन विसाला
इन्द्र नील मनि मोहन तन छवि कंचन तन ब्रजवाला
'व्यास'स्वामिनी हरि उर राजति मानहु चम्पक माला ॥६

राग धनाश्री–

जय श्रीकृष्णा जय श्रीकृष्णा जय श्रीकृष्णा जय जगदीसा
असुर सँहारन विपति विदारन ईसनहू के ईसा
कृष्ण मुरारी कुंज विहारी वाल मुकुन्दे लाला
दीन उधारी सन्त सुधारी गिरिधारी गोपाला
जदुकुल नायक दीन सहायक सुख दायक जन बन्धु
सुखमा सुन्दर महिमा मन्दिर करुना पूरन सिन्धु
गोधन गौहन वन घन सोहन मन मोहन ब्रज चन्दा
नटवर नागर परम उजागर गुन सागर गोविन्दा
जदुकुल नन्दन दनुज निकन्दन करत सनन्दन सेवा
जय गरुड़ासन प्रेम प्रकासन 'व्यास'दास कुल देवा ॥६



श्रीकिशोरी किशोर जू की ऐश्वर्य महिमा—

राग सारङ्ग व धनाश्री—

श्रीवृन्दावन के राजा दोऊ, स्याम राधिका रानी।
तीन पदारथ करत मँजूरी मुक्ति भरति जँह पानी ॥
करनी धरनी करत जेवरी घरु छावत हैं ज्ञानी।
जोगी जती तपी सन्यासी इन चोरी कै जानी ॥
पनिहाँ वेद पुरान मिलनियाँ कहत सुनत यह बानी।
घर-घर प्रेम भक्ति की महिमा 'व्यास' सवनि पहिचानी ॥६४

राग-सारङ्ग (चर्चरी ताल)—

नव नृपति चक्र चूड़ामनि साँवरौ,
राधिका तरुनि मनि पट्टिरानी।
सेसगृह आदि वैकुण्ठ पर्यन्त,
सब लोक थानै वन राजधानी ॥
मेघ छ्यानवे कोटि बाग सींचत जहाँ,
मुक्ति चारौ जहाँ भरत पानी।
सूर्य ससि पाहरू पवन जन इन्दरा,
चरन दासी भाट निगम वानी ॥

धर्म कुतवाल सुक सूत नारद चारु,
फिरत चरचार सनकादि ज्ञानी।
सत् गुन पौरिया काल वन्दुआ कर्म,
डाँडिये काम रति सुख निसानी॥
कनक मरकत धरनि कुंज कुसुमित,
महल मधि कमनीय सयनीय ठानी।
पल न बिछुरत दोऊ जात नहिं तहाँ कोऊ,
'व्यास' महलन लिये पीकदानी॥६५॥

राग—केदारौ व कमोद—

जयति नव नागरी कृष्न सुख सागरी,
सकल गुन आगरी दिनन भोरी।
जयति हरि भामिनी कृष्न घन दामिनी,
मत्त गज गामिनी नव किसोरी॥
जयति जयति प्रिय केलि हित कनक नव वेलि सम,
कृष्न कल कलय निसि मिलि विलासी।
जयति वृषभान कुल कुमुद वन कुमुदिनी,
कृष्न सुख हिमकर निरख प्रकासी॥
जयति गोपाल मन मधुप नव मालती,
जयति गोविन्द मुख कमल भृङ्गी।

जयति नँद नन्दन उर परम आनन्द निधि,
लाल गिरि धरन प्रिय प्रेम रङ्गी ॥
जयति सौभाग्य मनि कृष्न अनुराग मनि,
सकल तिय मुकट मनि सुजस लीजै ।
दीजिये दान यह 'व्यास' निज दास को,
कृष्ण सों वहुरि नहिं मान कीजे ॥६६॥

राग—सारङ्ग व धनाश्री—

धनि तेरी माता जिनि तू जाई ।
बृज नरेश वृषभान धन्य जिहिं नागरि कुँवरि खिलाई ॥
धन्य श्रीदामा भैय्या तेरौ कहत छबीली वाई ।
धन्य वरसानो हरि पुर हूतें जाकी बहुत बड़ाई ॥
धन्य स्याम बड़भागी तेरौ नागर कुँवर सदाई ।
धन्य नन्द की रानि जसोदा जाकी बहू कहाई ॥
धन्य कुञ्ज सुख पुजनि बरसत तामें तू सुखदाई ।
धन्य पुहुप साखा द्रुम पल्लव जाकी सेज बनाई ॥
धन्य कल्प तरु वंसीवट धनि वर विहार रह्यौ छाई ।
धन्य जमुना जाको जल निर्मल अचवत सदा अघाई ॥
धन्य रास की धरनि जिहि तू रुचि के सदा नचाई ।
धन्य वंसीवट जगत प्रसंसी राधा नाम रटाई ॥

धन्य सखि ललतादिक निसिदिन निरखत केलि सुहाई।
धन्य अनन्य'व्यास' की रसना जेहि रस कीच मचाई ॥६

राग-विलावल—

सबको भाँमतौ राधा वर ।

पूत जसोदा कौ नँदनन्द व्रज लाड़िलौ स्याम सुन्दर।
कुञ्ज विहारी सदा सिंगारी गावत नाचत सदा सुघर।
कोक कला कुल रसिक मुकट मनि वारिज मुख सुख सागर।
महा पतित पावन चरननि के सरन रहत काको डर।
'व्यास'अनन्य रसिक मण्डल को पोसक मान सरोवर॥६

राग-सारङ्ग व विहागरौ—

जय जय राधिका—घनस्याम ।

केलि पुंज निकुञ्ज नायक कंज मुख सुख धाम ॥
नैननि सैननि मन मोहन बैन विहसनि वाम।
भृकुटि भंग तरङ्ग उपजत अंग अंग ललाम ॥
पीत चीर अधीर भूषन किकँनि मनि दाम ।
मुकुट कुण्डल गण्ड झलकत अलक छवि अभिराम ॥
धन्य वृन्दा विपिन वासी सत्य पूरन काम ।
'व्यास' से अति पतित सुधरे लेत पावन नाम ॥६६

राग-सारंग व धनाश्री—

सोहति पराधीनता स्यामहिं ।
जाके बल रस सिन्धु बढ़ायौ गावत को गुन ग्रामहिं ॥
मारत बाँधत सुख पावत हरि छोरि न डारति दामहिं ।
रोवत नहीं दुखित ह्वै जानत प्रेम नेम जसुधा महिं ॥
आपु बँधाइ छुड़ाइव दीननि देत विषय निह कामहिं ।
अद्भुत् वैभव कही न जाय शुक श्रीभागवत कथा महँ ॥
मोद विनोद विचित्र विराजत निस दिन चंद ललामहिं ।
'व्यास' रूप गुन सुख रस आनन्दकन्द वृन्द राधामहिं ७०

राग सारङ्ग व जयतिश्री—

हरि दासनि के वस ह्वै जानत ।
निगम अगोचर आपुन हित करि,
जनके हितहिं वखानत ॥
राई सो गुन देखत गिरि सम,
दोष न मन महँ आनत ।
थोरें ही रति करत बहुत बहु,
दीने तनक न मानत ॥
ज्ञानराइ, अभिमान, दीननि,
तबहीं हँसि पहिचानत ।

सर्वसु देत सुराये ही,
कपटिनि सों चतुराई ठानत ॥
संतन के अपराध छमत,
आपुंन करतव्य हिरानत ।
'व्यास' भक्ति की यही रीति,
अपने संतनि सों मन मानत ॥७१॥

राग-सारङ्ग—

असरन सरन स्याम जू को बानो ।
बड़ो विरद पतितनि कौ पावन, भक्तन हाथ विकानो।
सुक नारद जाको यस गावत सिव विरञ्चि उर गानो।
हित ही की हित मानत नागर, गनत न रङ्क न रानो।
दया सिन्धु दीननि को बान्धव प्रगट भागवत कहानो।
रजधानी वृन्दावन जाको लोक चतुर्दस थानो।
ऐसे ठाकुर को हों सेवक कैसे औरहि मानो।
'व्यास'कलङ्क लगे तो जननी जो न पितहि पहिचानो ॥७

राग–धनाश्री—

महिमा स्याम की हम जानी ।
जेहि प्रताप वृन्दावन सेवत मोहू से अभिमानी ॥
हमहूं से न कृपा करि दैहें दर्सन राधा रानी ।
'व्यास'दास नव केलि विलोकत विन ही मोल विकानी ॥७

राग-सारङ्ग व धनाश्रीः—

स्याम सुधन को नाहीं अन्त।
जाके कोटि रमा सी दासी, पद सेवत रति कन्त॥
कोटि-कोटि लङ्का सुमेरु से रंकनि हँसि वकसन्त।
सिव, विरंचि, मघवा कुवेर जाके रोमनि के तन्त॥
रजधानी वन कुञ्ज महल महली सरद् वसन्त।
श्रीराधारानी सहचरि गोपी सुख पुंजनि वरषन्त॥
नागर मन मोहन रस सागर अर्थ अपार अनन्त।
'व्यास'स्वामिनी भोग भोगवत नव योवन मय मन्त॥७४

हरि कै सो हितु न कियो अब काहू।
और सवै सुख दाता लातनि मारत लागत पाहू॥
ऐसो सुखु सपनै नहिं दीनों गर्भ वसत माता हू।
अपनो विषै भोग पोषन लगि कीनो कपट पिता हू॥
बोल तोतरे बोलि चोरि चित, वित लीनो बेटा हू।
अपने काज पति व्रत लीनो, बस कीनो अवला हू॥
भायप प्रीति समीत मिलै चित, घर लीनों भैया हू।
कपट प्रीति परतीति बढ़ाई, अपने काज सखा हू॥
व्याह वरैती मिस रूठ्यो करि घर लूट्यो सजना हू।
धन कारन मन हन्यो कर्‌यो सब स्वारथ लगि राजा हू॥

हरि गुन विमल अगाध सिन्धु की को जानै सीवा हू
क्रूर, कुटिल, कामी, अपराधी 'व्यास' विमुख सेवा हू ॥७

श्रीमाधुर्य-स्वरूप-स्तुति—

राग—विलावल व सारङ्ग—

श्रीराधाप्यारी के चरनारविन्द सीतल सुखदाई।
कोटि चन्द मन्द करत नख विधु जुन्हाई॥
ताप, साप, रोग, सोग, दारुन, दुखहारी।
कालि कूट, दुष्ट दवन कुञ्ज भवन चारी॥
स्याम हृदय भूषन युत दूषन जित सङ्गी।
श्रीवृन्दावन धूलि धूसरि रास रसिक रङ्गी॥
सरनागत अभय विरद, पतित पावन वानै।
'व्यास' से अति अधम आतुर को कोन समानै॥८

राग—सारङ्ग—

सो छवि को कवि वरन सकै।
जब राधा मोहन सन्मुख ह्वै भृकुटि विलास तकै
सेप असेप कोट चतुरानन वरनति वदन थकै
उपमा जितीं तितीं सब झूठी कत मन बुद्धि भटकै

जिते तिते वक्ता अरु श्रोता कलपि–कलपि सुवकैं ।
आगम निगम सबै पचहारे 'व्यासहि' मत तनकैं ॥
श्रीराधावल्लभ की नव कीरति वरनत हू न निघात ।
भरत खण्ड की सुकवि मण्डली वरनत हू न अघात ॥
बड़े रसिक जयदेव बखानी लीला अमृत चुचात ।
श्रीवृन्दावन हरिवंस प्रसंसित, सुनि गोरी मुसिकात ।
राग सहित हरिदास कही रस नदी वही न थहात ।
रसिक अनन्यनि की जूठनि 'व्यास' सखी रुचि-सुचिकै खात ७७

राधिका रमन जय ।
नवल कुँवरि, वृन्दावन वासी,
निज दासिन दिखरावत सुखचय ॥
जाके चरण कमल सेवत,
रसिक अनन्य भये सब निरभय ।
ताके नाम रूप गुन गावत,
पावत महा प्रसाद रसालय ॥
नव निकुञ्ज रति पुंजनि वरपत,
परसत अंग ललित लोलामय ।
ताकी आस 'व्यास नहि छाँड़इ,
जद्दपि लोक भये सब निर्दय ॥७८॥

राग कान्हरो--

राधा वल्लभ मेरो प्यारौ ।

सर्वोपरि सबही को ठाकुर सर्व सुख दानि हमारौ
ब्रज वृन्दावन नाइक सेवा लायक स्याम उज्यारो
प्रीति रीति पहिचाने जाने रसिकन को रखवारो
स्याम कमल दल लोचन मोचन दुख नैंननि को तारो
अवतारी सब अवतारनि को महतारी महतारो
मूर्तिवन्त-काम गोपिनि को गउ गोपिनि को गारो
'व्यास' दास को प्रान जीवन धन छिन न हृदै ते टारो

राग-कमोद व धनाश्री---

देखो माई सोभा नागर नट की ।

जाके दरस परस रच राचै विथ किम मन्दसा मन की
जाको गुन लागत ही भागै साँपिनि तृष्णा धन की
जिहिं रस गोपी गोपहिं मोहे तजि माया गृह तनकी
जहाँ चद्रिका मन्द होत नहिं राधा विधु आनन की
पीवत नन्द किसोर चकोरहि वाढ़ी चोपं मदन की
जाकी कथा परीछत सुनि तजि त्रास विषी भय भव की
जिहिं आनंद 'व्यास'सुख परिहरि आसा जननी थन की

श्रीगुरू महिमाः—

राग विलावल—

जैसे गुरू तैसे गोपाल।
हरि तो तब ही मिलि हैं, जबहीं श्री गुरू होहिं कृपाल॥
गुरू रूठें गोपाल रूठिहैं, वृथा जातु है काल।
एक पिता विनु गनिका सुत कौ कौन करे प्रति पाल॥
ज्यों रज बिन रजपूत कपूत जिय देखत रन कौ चाल।
ऐसे ही गुरू के विमुख सिष्य को जम करिहै वेहाल॥
सत संगति गुरू सेवा करि सुपचहिं करत निहाल।
'व्यास'दास खिजिये गुरु जुग जुग मिटत नहीं उर साल ८१

गुरु की सेवा हरि करि जानी।
गये उज्जैन रैन दिन दुख सहि तजि मथुरा रजधानी॥
छाड़ी प्रभुता पाँय लगत हैं दास कहत सुख दानी।
गद्-गद् स्वर पुलकित वे पथ सोहत गोरज लपटानी॥
यहि विध रहत बहुत दिन बीते गुरु धरनी अनखानी।
पीसत पोअत करत रसोई होउ भई न कसानीं॥
यह सुनि सकुचि गये बनमोहन सिर धर मौरी आनी।
भूके प्यासे मेहु सह्यौ निसि भोर भरयौ हरि पानी॥
दिये जिवाइ मृतक सुत तब ही गुरु महिमा पहिचानी।
हरि के गुन गन कहों कहाँ लगि 'व्यास' विमुख अभिमानी ८२

राग—केदारो—

गुरु गोविंद एक समान ।
वेद पुरान कहत भागवत,
तेजु वचन परमान ॥
एकै सिष्य लीक देत हैं,
गुरु सो दूर भये परसावत ।
छियें छोति मानत हैं छुतिहा,
सींचौ लै पुनि धावत ॥
जैसी रीति सेष सोफिन की,
ऐसी रीति चलावत ।
सन्यासी पै मंत्र सुनत हैं,
ते कब भक्त कहावत ॥
गुरु गाड़ै चेला ले वारे,
दोऊ पंथ तुरन्त भये ।
उत सन्यास न इतहिं भक्ति फल,
खल नर बीचहि बीच गये ॥
दीक्षा वस्तु पलटु है ऐसौ,
दिया दिया है जैसौ ।
'व्यास' बीज बोवत हैं जैसौ,
फल लागत है तैसौ ॥८९

श्रीयमुनाजी की स्तुतिः—

राग-कान्हरौ—

जमुना जोरी जू की प्यारी ।
जाको वैभव कह्यौ भागवत सुक जयदेव विचारी ।।
मनि मय तटी उभय पट भूषन पूषन प्रियहिं सिंगारी ।
सौरभ सुधा सलिल जनु राधा-मोहन की रस झारी ।।
सुर तरु राज विराजत तीर कुटीर समीर सवारी ।
कुसुमित नमित विविधि साखा सों, प्रान समान सुखारी ।।
महलन के मारग जल छलबल विहरत विपिन विहारी ।
अयननि लै नैननि सैननि में व्याकुल वसत विकारी ।।
हंस हंसिनी सभा प्रसंसित जय वृषभानु दुलारी ।
व्यास स्वामिनी स्याम भामिनि वृन्दावन चन्द उजारी ।। ८४

श्रीमहाप्रसाद की स्तुतिः—

राग-सारङ्ग—

हमारी जीवन मूरि प्रसाद ।
अतुलित महिमा कहत भागवत मेटत सब प्रतिवाद ।।
जो षट् मास व्रतनि कीनो फल एक सीथ के स्वाद ।
दरसन पाप नसात खात सुख परसत मिटत विषाद ।।

देत लेत जो करै अनादर सो नर अधम गवाद।
श्रीगुरु सकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहाद ॥८५॥

हरि प्रसाद क्यों लेत नारकी।
व्याह सराध अधम जहँ जूठनि खात फिरत संसार की॥
जो मुख सरिता वहै निरन्तर विष लौहू कफ लार की।
तिहिं मुख सुखद जाय क्यों जूठनि व्रज जुवतिन के जारकी॥
ताहि न वृन्दावन रुचि रज है राधापद सुकुमारि की।
जाकी देहै टेव परी है कदरज ढोली खाल की॥
ज्यों असती आराधत जारहिं तजि सेवा भरतार की।
ऐसे व्यास कहावति निगमनि विषय नदी विष धारकी ॥८६

मनोपदेशः—

सारङ्ग (जयति ताल)

कहा मन जातन पै तू लै है।
करले हित राधा धव सों तू पुनि केस काल कर गैहै॥
करत कृपनता दूरि धरत धन तन छूटें धन कहाँ समै है।
वाढ़ी तृस्ना कृष्न कृपा बिनु पावत हू न अघै है॥
सूकर स्वान स्यार की खाजी तापर का गरवै है।
व्यास वचन मानें बिन जुग-जुग जम के हाथ विकै है॥८७

करि मन वृन्दावन सौं हेत ।
निसि दिन छिन छाया जिनि छाँड़हि रसिकन कौ रख खेत ॥
जहँ श्रीराधा मोहन विहरत करि कुंजनिं संकेत ।
पुलिन रास रस रंजित देखत मन मथ होत अचेत ॥
वृन्दावन तजि जे सुख चाहत तेई राच्छस प्रेत ।
व्यास दास के उर में बैठ्यौ, मोहन कहि-कहि देत ॥८८॥

मन तू वृन्दावन के मारग लागि ।
तेरौ न कोऊ न तू काहु कौ, माया मोह तजि भागि ॥
यह कलि काल व्याल विष भोग्यौ, जग सोयौ तू जागि ।
भवसागर हरि बोहित कौ तू होहि कृपा करि कागि ॥
गो गिरि सर सरिता द्रुम कुंजनिसों जौ रहि अनुरागि ।
व्यास आस करि राधा धव की व्रज वासिन के कौरा माँगि८९

रहि मन वृन्दावन की शरण ॥
और न ठौर कहूं तो, मो, कों सम्पति चारयौ चरन ॥
कुंज केलि कमनीय कुसुम सयनीय देखि सुख करन ।
राज भोग संजोग होत जहँ रजनी रति की तरन ॥
तरुनी तरुन प्रताप चाँप बल काल व्याल कौ डरन ।
तरनि तेज कर भूमि न परसत, पावक माया वरन ॥

बहत मारुत मकरन्द उड़ावत मृदु छबि सीतल परन।
सुक सनकादिक नारद गावत सुख पावत अधरन।
यह रस, पसु निरस, तू छाँड़त भाजत पेटहि भरन।
'व्यास' अनन्य भक्त की जीवनि वन में मंगल मरन॥६०

होहु मन वृन्दावन कौ स्वान।
जो गति तोकों देहैं ऐसें, सो गति लहै न आन।
वेगि बिसरि है कामिनि कूकरि सुनत स्याम गुन गान।
ब्रज बासिन की जूठन जेंवत वेगि मिलन भगवान।
जहाँ कलप तरु कामधेनु के वृन्द विराजत जान।
बाजत जहाँ स्याम स्यामा के सुरत समर निसान।
सदा सनातन राधा वन कौ प्रलय खिसत नहिं पान।
तीरथ और सकल जबहीं लगि, जौ लगि, ससि अरु भान।
है वैकुण्ठ एक सुनियत ताको साधन गुरु कौ ज्ञान।
ब्रज में भये चतुर्भुज छौरा कामरि वेनु विषानु।
नंद यसोदा गो-गोपिन के मोहन तन धन प्रान।
व्यास वेद ब्रज वैभव जानत नाहिन करत बखान॥६१

राग-केदारो—

करि मन वृन्दावन में वास।
कपट प्रीति के लोगनि तजि भजि जौ लगि कण्ठ उसास।

खेलत राधा मोहन जामहँ होत सदा निसिरास ।
कुंज कुटीर तीर जमुना के धीर समीर विलास ॥
नख सिख विटस वेलि लपटाने जहँ तहँ कुसुम विकास ।
वीथिन बीच कीच रँग जाकौ नाहिन कहूं निकास ॥
सुख की खान जान वंसीवट कीनों सुरत अवास ।
पावक रवि कौ तेज न, सन्तत सरद वसन्त निवास ॥
हरित भूमि जल सीतल छाहीं, गाय ग्वाल कौ पास ।
वहे फिरत दधि दूध चहूं दिसि सकल दुखन कौ नास ॥
स्यामहिं गावति गोपी, रसिक अनन्यन होत उदास ।
पुजवहु आस व्यास की मोहन अब जिनि करहु विसास ॥

राग-सारङ्ग—

करि मन साकत कौ मुँह कारो ।
साकत मोहि न देख्यौ भावै, कहा बूढ़ौ कहा वारौ ॥
साकत देखें डर लागत है नाहर हू तें भारो ।
भक्त हेत मम प्रान हतत है नेकु न डरै मट्यारौ ॥
आठें, चौदसि कूंड़ौ पूजै अभागे को ज्ञान अँध्यारौ ।
व्यास दास यह संगति तजिये भजिये स्याम सवारौ ॥६३॥

ऐसो जो मन हरि सों लागै।
जैसे चकई पिया वियोग निसा सबै वह जागै ॥
जल ही तें उत्पत्ति कमल की सदा रहै बैरागै।
जैसै दिनकर उदै होत ही महामुदित रस पागै ॥
तैसी प्रीत चकोर चन्द की,अनत नहीं चित्त तागै।
ऐसैं 'व्यास'मिलौ जो हरि कों जरा मरन भौ भागै॥६४॥

राग-कान्हरौ—

मन मेरे तजिये राजा सङ्गति।
स्यामहि भुलवत दाम काम बस,इनि बातनि जै है पति
विषयनि के उर क्यों आवत, हरि पोच भई तेरी मति
सुख कहँ साधन करत अभागे,निसि दिन दुख पावत अति
'व्यास' निरास भय बिनु भक्ति बिना न कहूं मति ॥६५

राग-धनाश्री—

गाइ मन, मोहन नागर नटहि।
कुञ्जन अन्तर देखि निरन्तर,
राधा छबि की छटहि ॥
केलि नवेलि बेलि-कुल छिन,
जिन छाँड़हूं बंसी बटहि।
कमल विमल जल मृदुल पुलिन,
सुख सेवहु जमुना तटहि ॥

कुसुमित नमित अमित किसलय,
दल फल विथिनि में अटहि।
गुञ्जत मधुप पुञ्ज पिक बोलत,
गौर स्याम लम्पटहि ॥
वृन्दावन की सहज सम्पदा,
पावत हूं जिनि लटहि।
'व्यास' आस तजि भजि यह,
रसिक अनन्यनि के संघटहि ॥६६॥



रसनादिकन आदेस--

राग-देव गन्धार—

रसना स्यामहि नैंक लड़ाउरी।
चढ़ि वैकुण्ठ नसैनी हरिपद प्रेम प्रसादहि पाउरी ॥
छाड़ि पराई निन्दा विन्दा गोविन्दा गुन गाउरी।
भव सागर तरिवे के काजै नाहित आन उपाउरी ॥
वे ही काज याद ही की छिन छिन-घटत जु आउरी।
इहिं कलि काल गुपाल भजन बिनु सुख सपने नही पाउरी ॥
हरि विमुखन कौ आजु नाजु जल कारी धारि बहाउरी।
रसिक अनन्यनि की जूठनि पर'व्यासहि'रुचि उपजाउरी॥६७

राग-सारङ्ग—

सुनि विनती मेरी तू रसना राधावल्लभ गाइ ।
वृथा काल खोवहि जिन सोवहि छिन भँगुर तन आइ।
सुनि सुख सदन बदन मेरे तूँ प्रीति प्रसादहि पाइ।
सुनि दुख मोचन मेरे लोचन जुगल किशोर दिखाइ।
सुनहि श्रवन रति-भवन किशोरहि गावत नैकु सुनाइ।
सुनि नासा तूँ चारु चरण पङ्कज की वास सुघाइ।
सुनि तू सिर पावन चरनोदक रुचि अभिषेक कराइ।
सुनि कर तू मन्दिर की सेवा सुख पर प्रीति बढ़ाइ।
सुनहि चरन तू वृन्दावन तें अनत न पैड़ चलाइ।
सुनि मन हरषि रासलीला पर सन्तत रुचि उपजाइ।
सुनि चित्त विनती आस तजहि नित दासनि हाथ विकाइ।
सुनि बुध सुकरि जु कुञ्ज महिल में सुख पुञ्जहि वरपाइ।
सुनहि लोक करता की इन्द्री विषई विकार विहाइ।
सुनि वनिता हरि की दासी हुइ मेरौ करहि सहाइ।
सुनि सुत नवल किसोर दास हुइ हरि गुन गाइ गवाइ।
सुनि सिष्य भव जल बूड़त हो हरि पद सेवहु सिर नाइ।
इहिं कलि काल गुपाल भजन कौ आनि परयो है दाइ।
विनती सुनहु 'व्यास' की सबही हरि बिनु अनत न ठाइ॥६

उत्कण्ठा—

राग-देव गन्धार—

ऐसो मन कब करिहौ हरि मेरौ ।
कर करवा कामरि काँधे परि कुंजनि माँझ वसेरौ ॥
ब्रज वासिन के टूँक भूँख में घर घर छाछि महेरौ ।
भूख लगे जब माँगि खाँउगो, गनों न साँझ सबेरौ ॥
रास विलास वृत्ति कर पाऊँ मेरे खूँटन खेरौ ।
'व्यास' विदेही वृन्दावन में हरि भक्तन को चेरौ ॥९९॥

राग विलावल—

यह तनु वृन्दावन जो पावै ।
तो स्वारथ परमारथ मेरौ रसिक अनन्यन भावै ॥
दासिनि की दासी करि हरि मोहि राधा-रमन दिखावै ।
यहै वासना मेरे मन में और कछू जिनि आवै ॥
पुंज पुन्य ते प्रेम भक्ति रति, कुंज विहार बतावै ।
सर्वोपरि रस रीति प्रीति कौ वारिध व्यास वढ़ावै ॥१००॥

राग-सारङ्ग—

हम कब होंहिगे ब्रजवासी ।
ठाकुर नन्दकिसोर हमारे ठकुराइन राधा सी ॥

कब मिलि हैं वे सखी सहेली हरिवंसी हरिदासी।
बंसीबट की सीतल छैंयाँ सुभग नदी जमुना सी॥
जाकी वैभव करत लालसा कर मीड़ति कमला सी।
इतनी आस 'व्यास'की पुजवहु वृन्दा विपिन विलासी॥१०१॥

'वृन्दावन कबहिं वसाइ हौ।
कर करवा हरवा गुंजनि के
कटि गोपीन कसाइ हौ॥
घर घरनी करनी कुल की तें
मो मन कबहि नसाइ हौ।
नाँक सकोरि विदोरि वदन इनि
विमुखनि कबहि हँसाइ हौ॥
सुभग भूमि में चरण चपल गति
वन वन घिसत फिराइ हौ।
राधाकृष्न नाँम द्वै अच्छर
रसना रसहि रसाइ हौ॥
वंसीवट जमुना तट के सुख
मो मन कब विलसाइ हौ।
'व्यास'दास को नील पीत पट
कुंजनि दुरि दरसाइ हौ॥१०२॥

अब न और कछु करनै रहनै है वृन्दावन ।
होनो होइ सो होइ किनि
दिनदिन आयु घटति छूटे तन ॥
मिलि हैं हित ललितादिक दासी
रास में गावत सुनि मन ।
जमुना-पुलिन-कुंज-घन-बीथिनि
विहरत गौर श्याम घन ॥
कह सुत संपति गृह दारा
काटहु हरि माया के फन्दन ।
'व्यास' आस छाँड़हु सब ही की
कृपा करी राधा नँदनन्दन ॥१०३

हरि मिलि हैं वृन्दावन में ।
साधु वचन मैं साँचे जाने फूल भई मेरे मन में ॥
विहरत संग देखि अलिगन जुत निबिड़ि निकुंज भवन में ।
नैन सिराइ पाइ गहिवी तब धीरज रहि है कवन में ॥
कबहुँ कि रास विलास प्रगटि हैं सुन्दर सुभग पुलिन में ।
विविधि विहार अहार सचौ है 'व्यास'दास लोचन में ॥१०४



निज-दृढ़ता कथन--

राग-सारङ्ग—

जैये कौन के अब द्वार।
जो जिय होइ प्रीति काहू कें, दुख सहिए सौ बार॥
घर-घर राजस तामस बाढ़्यौ, धन जोवन कौ गार।
काम विवस ह्वै दान देत, नीचन कों होत उदार॥
साधु न सूझत बात न बूझत, ये कलि के व्यौहार।
'व्यास'दास कत भाजि उबरियै परियै माँझी धार॥१

मोहि न काहू की परतीति।
कोऊ अपने धर्म न साँचौ, कासों कीजै प्रीति।
कबहुँ कि ग्यासि उपासि दिखावत,लै प्रसाद तजि छीति॥
ह्वै अनन्य सोभा लगि द्वै, सबसों करत समीति॥
बातनि खेंचत खाल बार की, लीपत भुस पर भीति।
कुवा परें बादर चाटत हैं धूम धौरहर ईति॥
स्वारथ परमारथ पथ बिगर्यौ उत मग चलत अनीति।
'व्यास' दिनै चारिक या बन में जानि गही रस रीति॥१

स्याम निवेर्यौ सबरौ झगरौ।
निज दासनि के दास को हम, पायौ नाम अचगरौ

देवी देवा भूत पितर सबही कौ झारयौ झगरौ ।
पावन गुन गावत तन सुधरयो, तब रसिकन पथ डगरौ ।।
मिटि गई चिन्ता मेरे मन की छूटि गयौ भ्रम सगरौ ।
चारि पदारथ हू तें न्यारौ,'व्यास' भक्ति सुख अगरौ ।।१०७

सुधरयौ हरि मेरौ परलोक ।
श्रीवृन्दावन में कीन्हों दीन्हों हरि अपनों निज ओक ।।
माता कौ सौ हेत कियौ हरि जानि आपनों तोक ।
चरन धूरि मेरे सिर मेली और सबन दै रोक ।।
ते नर, राक्षस, कूकर, गदहा, ऊँट, वृषभ गज बोक ।
'व्यास' जु वृन्दावन तजि भटकत ता सिर पनहीं ठोक ।।१०८

मेरौ मन मानत नाचैं गायैं ।
एक प्रेम भक्ति कौ फल है, मोहन लाल रिझायैं ।।
गदगद स्वर पुलकित जस गावत नैननि नीर बहायैं ।
नट गोपाल कपट नहिं मानत कोटिन स्वाँग बनायैं ।।
तजि अभिमान दीनता जन की स्याम रहत सचुपायैं ।
'व्यास' स्वपच तारें, कुल बोरे विप्रनि हरि विसरायैं ।।१०९

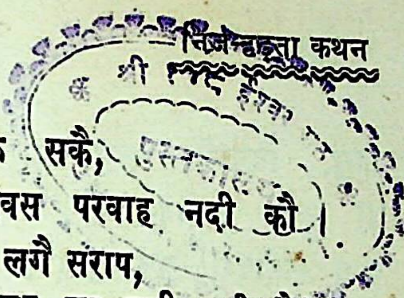
गरजत हों नाहिंन नैकौ डर ।
और सहाउ करत हैं मेरौ श्रीगोपाल धुरन्धर ।।
धन गौ-धन मेरे, रस गोरस छाया करत कलप तर ।
जाति पाँति वल्लभ कुल मेरें वृन्दावन साँचौ घर ।।

वंसीवट जमुना तट खरिक खोरि वीथी जीवन वर।
विहरत 'व्यास' रास में हंस हंसिनि मान सरोवर॥११०॥

हरि विनु औरु न सुनों कहौं।
श्रीगुरु की मैं सपथ करी है, यों घर माँझ रहौं॥
काहू के दोष न मन में आनों, सबके मनहिं गहौं।
अन्तरयामी हरि सबही के, हों उपहास सहौं॥
जीवनि के चित थिर न रहत हैं, सुख दुख धर तन हौं।
'व्यासहि'आस स्याम स्यामा सों प्रीति किये निवहौं॥१११॥

मोहि भरोसौ है हरि ही कौ।

मोकों सरन न औरु स्याम विनु,
लागत सव जग फीकौ॥
दीननि की मनसा कौ दाता,
परम भाव तौ जी कौ।
जाके वल कमला सों तोरी,
काज भयौ अति नीकौ॥
चारि पदारथ सब सब सिद्धि नव
निधि पर डारत नहिं पीकौ।
आन देव सपनें नहिं जाँचो,
ज्यों धन जानों धी कौ॥



तिनुका कैसे रोकि सकै,
पावस परवाह नदी कौ।
हरि अनुरागि निहिं लगै सराप,
न, सुर, नर, जती, सती कौ॥
जैसे मीनहिं है बल जल कौ,
अलि हंसहि कमल कली कौ।
'व्यासहिं' आस स्याम स्यामा की
ज्यों बालक आधार चुची कौ ॥११२॥

मोहि वृन्दावन रज सों काज।
माला, मुद्रा, स्याम विन्दुनी तिलक हमारौ साज॥
जमुना जल पावन सु हमारें भौजन व्रज कौ नाज।
कुंज केलि कौतुक नैननि सुख राधा धव कौ राज॥
निसि दिन दुहुँ दिसि सेवा मेवा, ताल पखावज बाज।
नृतत नट नागर भाव्रत अति, 'व्यासहिं' साधु समाज ॥११३

हमारें वृन्दावन व्यौहार।
सम्पति गति वृन्दावन मेरे करम धरम करतार॥
स्वारथ परमारथ वृन्दावन, गथ पथ विधि व्यौपार।
वृन्दाविपिन गोत कुल मेरें कुल विद्या आचार॥
रूप सील वृन्दावन मेरें, गुन गारौ सिंगार।
वर्ष, मास, रितु, पच्छ, ऐन जुग कल्प सबै तिथि वार॥

फागु, दिवारी, परबु, पारवन वृन्दावन त्यौहार।
सूर सुघर वृन्दावन मेरें, रसिक अनन्य उदार।
बन्धु सहोदर, सुत वृन्दावन, राजा राज भण्डार।
श्रीराधा ललितादिक मेरे जीवन प्राण अधार।
सर्वसु 'व्यास' दास कौ वन है वृन्दावनहिं अभार ॥११

श्री वृन्दावन रस मोहि भावै हो।
ताकी हों बलि जाऊँ सखीरी,
जो मोहि आनि सुनावै हो॥
वेद पुराण औ भारत भाषैं,
सो मोहि कछु न सुहावै हो।
मन वच स्मृत हूँ कहत हैं,
मेरे मन नहिं आवै हो॥
कृष्ण कृपा तब ही भलें जानों,
रसिक अनन्य मिलावै हो।
'व्यास' दास तेई बड़ भागी,
जिनके जिये यह आवै हो॥११

श्रीवृन्दावन के रूख हमारे मात पिता सुत बन्धु।
गुरु गोविन्द साधु गति मति सुख फल फूलन को गन्ध
इनहिं पीठि दै अनत डीठि करें सो अन्धनि में अन्ध
'व्यास' इन्हें छोड़ैरु छुड़ावै ताकौ परै निकंध ॥११

श्रीवृन्दावन मेरी घर की बात।
जाहि पीठि दै दीठि करों कित,
जित तित दुखित जीव बिललात॥
स्याम सचे सुख सागर कुंजनि,
नागर रसिक अनन्य खटात।
सहज माधुरी कौ रस बरषत,
हरषत गोरे सांवल गात॥
सुख मुख चन्द सुधा रस सुनि-सुनि,
श्रवननि आनँद सृष्टि अघात।
नाद विनोद रास रस माते,
कोउ न रङ्ग न अङ्ग समात॥
विवि अरविन्द द्रवत मकरन्दहिं,
पियत जिवावहु दल पत्र चुचात।
या रस बिनु फीको सब साधन,
ज्यों दूलह विनु 'व्यास' बरात॥११७॥

रसिक अनन्य हमारी जाति।
कुल देवी राधा, बरसानो खेरो, ब्रजवासिन सों पाँति॥
गोत गोपाल, जनेऊ माला सिखा सिखँडि, हरि मंदिर भाल।
हरि गुन नाम वेद धुनि सुनियत, मूँज पखावज कुस करताल॥

साखा जमुना, हरि लीला षट् कर्म, प्रसाद प्रान धन रास।
सेवा विधि निषेध जड़ संगति, वृत्ति सदा वृन्दावन वास।।
स्मृति भागवत कृष्न नाम सन्ध्या, तर्पन गायत्री जाप
वंसी रिषि जजमान कल्पतरु, 'व्यास' न देत असीस सराप।।१

जासों लोक अधर्म कहत है सोई धर्म है मेरो ।
लोग दाहिने मारग लाग्यौ हौंव चलत हों डेरौ ।।
द्वै-द्वै लोचन सब ही के हों एक आँखि को ढेरौ ।
और आव हों कौन काम कौ ज्यों वन बुरौ वहेरौ ।।
लोगन कों पुर पट्ठन खेरौ नाहिन मेरौ बसेरौ ।
मृगया करि जो काम न आवै मर्कट माँस अहेरौ ।।
जिनकी ये सब छोति करत हैं, तिनही कौ हौं चेरौ ।
खजी नरी छुरहड़ी 'व्यास' के मन में वस्यौ वदेरौ ।।११८।।

हरि पाये में लोलक चैया ।
जोग, जग्य तीरथ व्रत संजम,
करम धर्म मेरी करत बलैया ।।
वेद पुरान स्मृति तक कौ,
फल प्यारौ कुँवर कन्हैया ।
वृन्दावन घर नन्द पिता,
जसुदा ताकी है मैया ।।

राधा जाकी घरनि तरुनि,
मनि श्रीदामा ताकौ भैया ।
सन्तत राग भोग जूठनि को,
'व्यासहि' करौ बिलैया ॥१२०॥

परम पद कहत कौन सों लोग ।
कोऊ तहाँ ते गयौ न आयौ ऐसो सुख संजोग ॥
मेरे मते साधु है सोई, जहाँ भक्ति रस भोग ।
'व्यास' करत है आस तहाँ की, जहाँ न भय भव रोग॥१२१॥

राग–सारङ्ग व भूपाली:—

तन अब ही को कामै आयौ ।
साधु चरन कौ संग कियौ जिन हरि जू कौ नाम लिवायौ ।
धन्य वदन मेरौ जिनि रसिकनि कौ जूठौ खायौ ॥
रसना मेरी धन्य अनन्यनि कौ चरणोदक प्यायौ ॥
धन्य सीस मेरौ श्रीराधा रमन रेनु रस लायौ ।
धन्य नैन मेरे जिन वृन्दावन कौ सुख दिखरायौ ॥
धन्य श्रवन मेरे श्रीराधा रमन विहार सुनायौ ।
धन्य चरन मेरे श्रीवृन्दावन गहि अनत न धायौ ॥
धन्य हाथ मेरे जिन कुंजन में हरि मन्दिर छायौ ।
धन्य 'व्यास' के श्रीगुरु जिन सरवोपरि रंग बतायौ॥१२२

राग-गौरी व नट—

मेरौ हरि नागर सौं मन मान्यों ।
अगम निगम पथ छाँड़ि दियौ है,
भली भई सबरे .जग जान्यों ॥
मात पिता की सीख न मानी,
और तजी कुल कान्यौं ।
'व्यास' आस प्रभु के मिलिबे बिनु,
काहि रुचै भोजन पान्यों ॥१२३॥

लोग बेकाज करत उपहास ।
स्याम संग खेलत सचु पायौ काम कियो कुल नास
कठिन हिलग को फंद परयौ अब कैसैं होत निकास
पियसौं हित हठि और निवाह्यौ जोलगि कण्ठ उसास
मोहन मुख सुख की चाहन (में) कैसें मानौं त्रास
'व्यास'उदास भये,रस चाहैं तजि नागर को पास ॥१२

राग-बिलावल—

साँचौ धन मेरैं दीनदयाल ।
जुग-जुग लेत देत नहिं निघटै,
मैं पायो अजगैवी माल ॥
ता बिनु सकल लोक की सम्पति,
पायेंहूँ जु होइ बिहाल ।

ताकौ नाम रूप गुण गावत,
निकट न आवै माया जाल ॥
नवल किसोर भव बन्ध छोरि है,
रङ्क सुदामा कियौ निहाल ।
निज दासनि दिन पुष्ट करत हरि,
दुष्टनि कौ कीनौं मत चाल ॥
रसिक अनन्य किये जिहिं बडवा,
नटवा ह्वै रीझे गोपाल ।
सुख, संतोष, मोच्छ, भक्तनि दै,
विमुखनि दारुण दुख जंजाल ॥
श्रीराधा मानसरोवर अङ्ग-अङ्ग,
मुक्ता चुनि-चुनि जियत मराल ।
कामधेनु तजि 'व्यास' किनैं भजि,
निस दिन बाढ्यो छाती साल ॥१२५॥

जैसैं सुख मोहन हमहिं दिखावत ।
ऐसैं सुख भुक्ति मुक्ति के भोगी स्वपनैं हूँ नहि पावत ।
दरसन दै सब पाप दूरि करि परसत ताप नसावत ।
महाप्रसाद विषाद हरत मन मोद बढ़त गुन गावत ॥

उपजत प्रीति प्रतीति साधुनि मुख श्रीभागवत सुनावत
हरि की कृपा जानियैं तब ही सन्त घरहि तब आवत
इहि विधि 'व्यास' अनन्य कहाइ,
पाइ सुख अनत न कितहूँ धावत ॥१२

गोरी-अठताल—

ऐसो वृन्दावन मोहि सरनैं।
जा महँ स्यामा स्याम विराजत तीनि काल दो-उतरैं
सदा किशोर विटप मण्डल दल किशलय कुसुमित फिरैं
अद्भुत जोटिहि ओट राखि सेवत नित चार्यौ चरैं
निविड़ निकुञ्ज मंजु कुञ्जावलि चलत पत्र मन-हरैं
विहरत विपिन खण्ड रति-मण्डन राधा हरि कै सुरैं
रसिक अनन्यनि मोहन वनतैं अनत कहूं नहि टरैं
'व्यास' धर्म तजि भक्ति गही ताहू तजि नर्कहि परनैं॥१

राग-भूपाली—

विसद कदम्बनि की कल वाटी।
वृन्दावन रस वीथिनि रसमय रसिकनि की परिपाटी
नवदल-माल तमाल गुच्छ छवि तोर न रचना ठाटी
अमित नमित फूलनि की भूलनि रमित महल की ठाटी

अति आवेश सुदेस निलज ह्वै लाज-लाज की काटी।
स्यामा-स्याम केलि बल रोकी मदन मान की घाटी ॥
सरस सुघङ्ग राग रागिनि मिलि गावत हैं कर नाटी।
तान तरङ्ग सुनतहिं सकल गुनन की परदा फाटी ॥
और सकल साधन निरस या रस बिनु सब गुर–माटी।
छाड़ि प्रपञ्च नाचि नट कौ सौ 'व्यास' संधि यह डाटी॥१२८॥

राग-कान्हरो—

मन बावरे तूं हरि पद अटक्यौ।
अब, तैं साँचौ सुख पायौ तब दुख लगि घर-घर भटक्यौ।
भली करी तैं मोह तोरि कैं वृन्दावन कौं सटक्यौ।
तें देख्यौ कुञ्जनि में मोहन राधा के उर लटक्यौ ॥
तेरे वश को, को न विगूच्यौ जन्मत मरत न मटक्यौ।
'व्यास' दास ह्वै कैं किनि उबरहु,
आसा डाइन सब जग गटक्यौ ॥१२९॥

श्रीराधावल्लभ कौ हौं भवतौ चेरौ।
राधावल्लभ कहत सुनत ही मन न नैम जम केरौ ॥
राधावल्लभ वस्तु भूलि हूं कियौ अनत नहिं फेरौ।
राधावल्लभ 'व्यास' दास कैं सुनहुँ श्रवण दै टेरौ ॥१३०॥

राग-धनाश्री—

अरौसी परौसी न हमारे भैय्या बन्धु,
भँवर पिक चातिक वक तमचोर।
प्यारे कारे पीरे खग मृग हितुवा चन्द चकोर।
मोहन ध्वनहिं सुनावत गावत मन भावत चितचोर।
विटप वेलि फल फूल हमारे मूल निकुञ्ज किसोर।
सुन्दर सुघर सुदिन हैं हमारे सन्त केलि निसि भोर।
सुखनि करत दुख हरत हमारे त्रिविध समीर झकोर।
तन मन ताप बुझावत जमुना वारि विहारि हिलोर।
रेणु धेनु आनन्दकन्द रस बैन सप्त स्वर घोर।
रास विलास 'व्यास' की जोवनि जोरी जोवन जोर ॥१३॥

राग केदारो—

मेरे भाँवते स्यामा-स्याम।
रास विलास करत वृन्दावन त्रिविध विनोद ललाम।
नख सिख अङ्ग लुभारे प्यारे ज्यौं लोभिनि कौं दाम।
रूप अवधि, गुन जलधि, रङ्गनिधि सब विधि पूरन काम।
मन्दहसनि छवि छली अलिहि वंक विलोकनि वाम।
'व्यास' विहार निहारति रसिकनि भूले तन धन धाम॥१४॥

राग-सारङ्ग—

अब मैं (श्री)वृन्दावन रस पायौ ।
(श्री)राधाचरन सरन मन दीनौं मोहनलाल रिझायौ ॥
सोतो हतौ विषै मन्दिर में (श्री)गुरु टेरि जगायौ ।
अब तो 'व्यास' विहार विलोकत सुक,नारद मुनि गायौ॥१३३



कुटुम्ब-उपदेश—

राग-सारङ्ग—

जो तिय होय न हरि की दासी ।
कीजै कहा रूप गुन सुन्दर, नाहि न स्याम उपासी ॥
तौ दासी गनिका सम जानौ दुष्ट राँड मसवासी ।
निसि दिन अपनौ अंजन मंजन करत विषय की रासी ॥
परमारथ स्वपनें नहिं जानत अन्ध बँधी जम फाँसी ।
ताके संग रङ्क पति जैहै ताते भली उदासी ॥
साकत नारि जु घर में राखै, निश्चै नरक निवासी ।
जिहिं घर साधु न आवत कबहूं गुरु गोविन्द मिलासी ॥
हरि कौ नाम लेत नहिं कबहूँ याहीं ते सब नासी ।
'व्यास' दास सोई पै कीजै मिटै जगत की हासी ॥१३४॥

भजहु सुत साँचे स्याम पिताहि ।
जाके शरन जात ही मिटि है दारुन दुख की डाहि।
कृपावन्त भगवन्त सुने मैं छिन छाँड़ो जिनि ताहि।
तेरे सकल मनोरथ पूजें जो मथुरा लों जाहि।
वे गोपाल दयाल दीन तू करिहैं कृपा निवाहि।
और न ठौर अनाथ दुखित कों मैं देख्यौ जग चाहि।
करुना अरुनालय की महिमा मो पै कही न जाहि।
श्री'व्यास'दास के प्रभु को सेवत हारि भई कहु काहि।।१३

ये दिन अब ही लगत सुहाये ।
जब लगि तरुनी तिरछी चितवनि फिरति विषय को धाये।
उठि-उठि चलत गोष्ठि में बैठत जंगी भंगी भाये।
मोतिन माल कनक आभूषन रुचि-रचि बहुत बनाये।
तजि कुल वधू औगुनन गहिं रहि लै बिस्वन पहिराये।
मन मन खुसी मसकरिनि ऊपर माखन दूध खवाये।
खाटौ मठा कठिन भक्तन कों भांडन खोवा खाये।
लोक लाज को तन मन अर्प्यौं,हरि हित दाम न लाये।
परमारथ को नहीं थेगरी, बिमुखन जरकसी पाये।
अदल बदल ह्वै है दस दिन में जरा जोगरिन छाये।
अब तौ चपर बुढ़ापौ आयौ, रोग दोष तन ताये।

अब हूं सुमिरि चत्रभुज प्रभु को ह्वैहैं काम कहाये।
'व्यास'दास आसा चरननि की विमल विमल जस गाये॥१३६

जिहिं कुल उपज्यौ पूत कपूत।
ताकौ वंस नास ह्वै जैहै जिहिं गिधयौ जमदूत॥
जो सुत पितहिं विरोधै सोइ है सबहिन कौ मूत।
याकी साखि कंस आहुक कों जिनि हठि कियो कुसूत॥
जोई भक्त भागवत मानें नहिं मानें सो भूत।
इहिं संगति तें पति गति विगरे हू जौं पिता अऊत॥
यह पाखण्ड प्रपंच छाड़िये चोर चिकनियाँ धूत।
'व्यासादिकन' बतायौ सुक सौनक मान्यौ सूत॥१३७॥

हरि भक्तन ते समधी प्यारे।
आये सन्त दूर बैठारे फोरत कान हमारे॥
दूर देस ते सारे आये ते घर में बैठारे।
उत्तम पलिका सौर सुपेती भोजन विविधि समारे॥
भक्तनि दीजै चून चनन कौ इनकों सिलवट न्यारे।
'व्यास'दास ऐसे विमुखनि जमगन सदा कढ़ेरत हारे॥१३८॥

विनु भक्तिहि जे भक्त कहावत।
भीतर कपट निपट सब ही सों,
ऊपर उज्वल ह्वै जु दिखावत॥

धन सब ही कौ धूँसि ठूँसि कें,
घर भरि सठ सो सुतनि खवावत।
दिन-दिन क्रोध विरोध जगत सों,
सो धन वोध हियौ भरि आवत॥
झूठी बात न अटकत भटकत,
पटकत पाग फिरादनि धावत।
परयौ रहै पाटी तन निसि विष
इनि घर आयौ जन नहिं भावत॥
कोऊ न लेतु जु नाउँ गाउँ में,
ठाँव-ठाँव पनहीं जु ठुकावत।
ऐसे कुल में उपजे पाँवर,
'व्यास' घर-घर फिरत लजावत॥१३

हमारे घर की भक्ति घटी।
उपजे नाती पूत वहिर्मुख विगरी सबै गटी॥
सुत जो भक्तंन न भयौ, तौ पिता की गरी कटी।
भक्त विमुख भये मम गुरु सत्य सकलहूँ मीचुँ ठटी॥
ता सतयुग ते हों कलियुग उपज्यौ काम क्रोध कपटी।
माला तिलक दम्भ कौ मेरे हरि नाम सीस पटी॥
कृष्न नचाये तृष्ना के मैं कीनी आर भटी।
किहिं कारन हरि 'व्यासहिं' दीन्हीं वृन्दावनहिं तटी॥१४

सेइये स्यामा स्याम वृन्दावन वासी ।
रसिक अनन्य कहाय अनत रहि,
विषै व्याल, वपु लहि सहि हासी ॥
साधु न वसत असाधु संग मँह,
जब तब प्रीति भङ्ग दुख रासी ।
देह गेह सम्पति सुत दारा,
अधर, गण्ड, भग उरज उपासी ॥
पूतन के हित भूत पियत हैं,
भूत विप्र करि कासी ।
तिनसों ममता करि हरि विसरे,
जानत मन्द न, तिनहिं विसासी ॥
स्वारथ परमारथ पथ छूटयौ,
उपजी खाज कोढ़ में खाँसी ।
देह बूड़ बूढ्यौ वंस 'व्यास' कौ,
विसर्‌यौ कुंजनि कुंज निवासी ॥१४१॥
विनती सुनिये वैष्नव दासी ।
या सरीर में बसत निरन्तर,
नरक व्याधि पित खाँसी ॥
ताहि भुलाइ हरिहिं दृढ़ गहियौ,
हसत संग सुख वासी ।

वढ़ै सुहाग ताहि मन दीनैं,
और वराक विसासी ।
ताहि छाँड़ि हित करौ और सों,
गरे परैं जम फाँसी ॥
दीपक हाथ पैर कुवा में,
जगत करै सब हांसी ॥
सर्वोपरि राधापति सों रति,
करत अनन्य विलासी ।
तिनकी पद रज सरन 'व्यास' कों,
गति वृन्दावन वासी । १४२॥

भक्त न भयौ भक्त को पूत ।
भक्त होइ साकत के ज्यों श्रुतदेव सुदामा सूत ॥
उग्रसेन के कंस, बलि के बानासुर जम ऊत ।
भीषम के रुक्म, विभीषन के घर भयौ कपूत ॥
सेन, धना, रैदास भयौ जयदेव, कबीर अभूत ।
बूड्यौ वंस कबीर को जब भयौ कमाला पूत ॥
होइ भक्त कें साकत जानियों अन्य काहु कौ पूत ।
ब्रह्मा के नारद 'व्यास' के विदुर और शुक अवधूत॥१४

हरि विमुखनि जननी जनि जावै ।
हरि की भक्ति बिन कलह लजावै ।।
हरि बिनु विद्या नरक बतावै ।
हरिनाम पढ़ै साधुन अति भावै ।।
हरि बोलि हरि बोलि कहूं न धावै ।
हरि बोले बिनु 'व्यास' मुँह न दिखरावैं ।।१४४।।

राग-केदारो—

कबहूँ नीके करि हरि न बखानै ।
चरन कमल सुखरासि स्याम के,
ते तजि विषयनि हाथ बिकानै ।।
दिवस गयौ छल करत मनोरथ,
निसि सोवत झूँठौ बररानै ।
इहि विधि मनुषा जनम गँवायौ,
श्रीपति कहि धौं कब पहिचानै ।।
जेहि सुमिरत त्रैताप नसत हैं,
ते आराधि भवन नहिं आनै ।
समै गयो गोपाल विमुख भयैं,
तातें 'व्यास' बहुत पछितानै ।।१४५।।

राग गौरी—

मरें वे जिन मेरे घर गनेस पुजायौ ।
जे पदारथ सन्तन के काजें,
ते सारे सकतन ने खायौ॥
'व्यासदास' कन्या पेटहि क्यों
न मरी अनन्य धर्म में दाग लगायौ॥१४६

जो हों सत्य सुकुल कौ जायौ ।
तौ मेरो पन साँचौ करि हरि तुम दारुन दुख पायौ
मो अनन्य के मन्दिर में जिन थापि गनेस पुजायौ
तिनकौ वंस वेगि हरि तोरहु गाइ गूह जिनि खायौ
जिन जीवत हों हत्यौ लोभ लगि तिहिं वेटन कौ गरौ कटायौ
तिहि मेरौ अपमान कियौ, जिहिं काल हुँकारि बुलायौ
जिनकौ खोज न रहौ कहीं हरि जिहि हरि परस छुड़ायौ
रास विलास जहाँ होते तहँ मलियागोरिल गायौ
गुरुगोविन्दहिं मारि गारि दै सो पापी घर नायौ
यह बड़ पाप वेगि ही फलि है हथजुग वृथा गमायौ
वेगम महेरी आपुन कों रचि, भरुवनि भात खवायौ
तेहि सङ्गति उपजी यह ममता ब्राह्मन बाँधि बहायौ
जौ मैं कह्यौ सोई हरि कीनों यह परचौ जग पायौ
'व्यास'ज्ञुव वै ब्रुनैगौ दुख सुख यह मत वेद बतायौ॥१

सन्त-महिमा

राग-गौरी—

साँचे मन्दिर हरि के सन्त ।
जिहि मे मोहन सदा विराजत तिनहिं न छोड़त अन्त ॥
जिनि महँ रुचिकर भोग भोगवत पाँचौ स्वाद वदन्त ।
जिन महँ बोलत हँसत कृपा करि चितवत नैन सुपन्त ॥
अपने मत भागवत सुनावत रति दै रस वरषन्त ।
जिनमें वसि सन्देह दूरि करि देह धर्म परयन्त ॥
जहाँ न सन्त तहाँ न भागवत भक्त सुसील अनन्त ।
जहाँ न'व्यास'तहाँ न रास रस वृन्दावन कौ मन्त ॥१४८॥

भावत हरि प्यारे के प्यारे ।
जिनके दरस परस हरि पाये उघरे भाग हमारे ।
दूरि भये दुख दोष हृदै के कपट कपाट उघारे ।
भवसागर बूड़त हमसे अपराधी बहुत उवारे ॥
भूत पितर देई देवा सों झगरे सकल निवारे ।
सुख मुख वचन रचन कहि कोटिक विगरे'व्यास'सुधारे॥१४६॥

राग-सारङ्ग—

करौ भैया साधुन ही सों सङ्ग ।
पति गति जाइ असाधु सङ्ग तें काम करत चित भङ्ग ॥

हरि तें हरिदासनि की सेवा परम भक्ति कौ अङ्ग
जिनके पद तीरथ भै पावन उपजावत रस रङ्ग
तिनके बस दसरथसुत मारचौ माया कनक कुरङ्ग
तिनके कहत 'व्यास' प्रभु सुमिरचौ सत्वर धनुष निषङ्ग॥१

साधु सरसीरुह कौ सौ फूल।
निर्मल सीतल जल हितकारी, काहू कों न विकूल
तिनके वचन पान करि डारत, काम जटा निर्मूल
जिनकी सङ्गति भक्ति देत हरि, हरत सकल भ्रम मूल
तिनके 'व्यासदास' जो हू तें तौ न रहै भव सूल ॥१५

राग-घनाश्री—

निरखि हरि दासनि नैन सिरात।
स्याम हृदै में जब ही आवत मिलत गात सों गात
श्रवन होत सुख भवन दवन दुख सुनत छबीली बात
दूरि होत त्रैताप पाप सब मुख चरणोदक जात
बाढ़ति अति रस रीति प्रीत सों सन्त प्रसादै खात
गद्गद् स्वर पुलकित जस गावत नैननि नीर चुचात
जिनके मुख मसि घसि लपटाऊँ तिनहिं न सन्त सुहात
'व्यास' अनन्य भक्ति बिनु जुग-जुग बहुत गये पछितात

हरिदासिन के निकट न आवत प्रेत, पितर जमदूत।
जोगी भोगी सन्यासी अरु पण्डित मुण्डित धूत॥
ग्रह, गनेस, सुरेस, सिवा, सिव डरि कर भाजत भूत।
सिद्धि निधि विधि निषेध हरि नामहिं डरपत रहत कपूत॥
सुख दुख पाप पुन्य मायामय ईति भीति आकूत।
सब की आस त्रास तजि 'व्यासहिं' भावत भक्तसपूत॥१५३॥

भक्ति की श्रेष्ठता

राग-धनाश्री—

भव तरिबे कों भक्ति उपाउ।
साधु सङ्ग करि हरिहिं भजौ रे देहु सवारौ दाउ॥
पर-हरि परि-निन्दा पर-दारा तजि भजिये हरि राउ।
सब गुन जैहैं लोभ करत ही स्याम न करत सहाउ॥
काचे घट के जल ज्यों छिनु-छिनु घटति जात है आउ।
विषयनि की सङ्गति बूड़हुगे देह जौजरी नाउ॥
हरि कौ नाम धाम सब सुख कौ जानि कृस्न गुन गाउ।
'व्यास' वचन विसरावत ही जम द्वारौ जाइ वसाउ॥१५४॥

साँची भक्ति और सब झूँठौ।
पाई नारद स्याम कृपा तें खात साधु कौ जूठौ।
जिन-जिन कौ हरि काज सँवारयो श्रृंगी रिषि सों रू
'व्यास' सुनी कै सुनी सुकदेव परीच्छत ऊपर तूठौ॥१५

राग-सारङ्ग [जयति ताल]—

भक्ति बिनु टेसू कौ सौ राज।
कारागृह दारा हय गय रहत न गाँव समाज
सूकर कूकर वधिक सूकरी हम सु नरक कौ साज
जैसे राँकहिं सुख न होय पावत सब पसु बस नाज
ऐसे कोटि पुरुष पर मिटत न एक जुवति की खाज
झटपट है जग बकहि रात दिन काल चहूं दिस गाज
अपने सरन राखि है'व्यासहि'हरि सबके सिरताज॥१५

जीवन जन्म भक्ति बिनु खोवत।
सन्त सुहात न हरि मुख जोवत॥
नख सिख विषै विषी दुख भोवत।
द्यौस अघाय खाय निसि सोवत॥
पाये सुख अनपायें रोवत।
हरि जस जल मन मलिन न धोवत॥
पर धन पर नारी सुख टोवत।
कामधेनु तजि कूकरि लोवत॥

छीरहिं परिहरि नीर विलोवत ।
'व्यासहि' वरजत दुख गिरि ढोवत ॥१५७॥

भगति बिनु अगति जाहुगे वीर ।
वेगि चितै हरि चरन सरन रहि छाँड़ि विषै की भीर ॥
कामिनि कनक देखि जिनि भूलहु मन में धरयतु धीर ।
साधुन की सेवा करि लीजै जौ लगि जियत सरीर ॥
मानुष तन बोहित, गुरु करिया, हरि अनुकूल समीर ।
डरियहु आतम घात तें तरियहु काल नदी गम्भीर ॥
सेन, धना, नामा, पीपा, रैदास, भक्ति लै गये कबीर ।
ताकें'व्यास' स्याम उर आवत जाही कें है परपीर ॥१५८॥

भक्ति में कहा जनेऊ जाति ।
सब दूषन भूषन विन आननि पति छू घरनि घिनात ॥
कहा हरे रँग भाँग विराजत तुलसी में न समाति ।
सोहति नहीं सुहागिल के सँग सौति सुरति इतराति ॥
सन्ध्या तरपन गायत्री तजि माला मंत्र सजाति ।
'व्यास' दास कें सुख सर्वोपरि वेद विदित विख्यात ॥१५६॥

साँची प्रीति के हरि गाहक ।
जान राइ सब ही हरि जानत परम प्रेम कौ लाहक ॥
कपट निकट न रहै नट नागर दीननि के दुख दाहक ।
'व्यास'न कोऊ और सहाइक भक्ति भार को वाहक॥१६०

भक्त-प्रशंसा

राग-धनाश्री—

सदा हरि भक्तनि कैं आनन्द।
गावत महाप्रसादै पावत, सुख संतोष अमन्द।
जिनकौ मुख निरखत सुख उपजत, दूर होत दुख द्वन्द।
अहंकार ममता मद छूटै, भूतनि के से छन्द।
श्रीराधावल्लभ के पद पङ्कज, सकल सम्पदा कन्द।
सेवत रसिकनि के भ्रम छूटत, लोक वेद को फन्द।
मुक्त भये अजहूं गावत सुक नारद सनक सनन्द।
'व्यास' विराजमान सर्वोपरि जय (श्री)वृन्दावनचन्द॥१॥

सुनियत कबहुँ न भक्त दुखारौ।
पुजये स्याम काम बिनु दामनि ह्वै निष्काम सुखारौ।
कृष्न कह्यौ रुक्मनि सों निहकिञ्चन जन मोहि प्यारौ।
ताकौ मुख कबहूँ नहिं देख्यौ जाकैं धन कौ गारौ।
वनवसि पण्डुसुतनि नहिं माँग्यौ लग्यौ न राज लुभारौ।
पाँच वरष के ध्रुव घर छाड्यौ मो लगि तजि आहारौ।
कोटि जातना सहि प्रहलादहि विषाद न जानत वारौ।
पट-लूटत द्रोपदि नहिं मटकी करी न अनत पुकारौ।
जरत गर्भ वैराटसुता महँ मोहि मन दियौ सवारौ।
सरनागत आरत गजपति को मो बिनु को रखवारौ।
व्रजलगि मैं दावानल पीयौ विषधर कीनौ न्यारौ।
महाप्रलय के मेह सनेह लगि गोवर्द्धन लग्यो न भारौ।

भक्तनिकें अवतरयौ भक्ति लगि भूखौ रह्यौ उघारौ ।
असुरनिसों जूझउँ भक्तन लगि भयौ जु पशु चरि चारौ ॥
तन मन जीवनि जीव जीविका, सर्वस भक्त हमारौ ।
'व्यास'दास की विनती सुनि कोऊ भक्त न मोहि विसारौ॥ १६२

भक्ति विनु केहि अपमान सह्यौ ।
व ह्यकहा न असाधनि कीनौ हरि वल धर्म रह्यौ ॥
अधम राज-मद माते लै सिविका जड़भरत नह्यौ ।
निगड़ सहे वसुदेव देवकी सुत पटकत दुसह सह्यौ ॥
हरि ममता प्रहलादविषादन जान्यौ दुख सहदेव दह्यौ ।
पट लूटत द्रोपदि नहिं मटकी हरि को शरन चह्यौ ॥
मत्त सभा कौरवनि विदुर सों कहा कहा न कह्यौ ।
सरनागत आरत गजपति को आपुन चक्र गह्यौ ॥
हा, हरि, नाथ पुकारत आरत, और कौन निवह्यौ ।
'व्यास'वचन सुन मधुकर साह भक्ति फल सदा लह्यौ॥ १६३॥

राग-सारङ्ग—

जो सुख होत भक्त घर आयें ।
सो सुख होत नहीं वहु सम्पति बाँझहि वेटा जायें ॥
जो सुख भक्तनि को चरनोदक पीवत गात लगायें ।
सो सुख स्वपनै हूं नहि पैयत कोटिक तीरथ न्हायें ॥
जो सुख भक्तनि को मुख देखत उपजत दुख विसरायें ।
सो सुख होत न कामिहि कबहूं कामिनि उर लिपटायें ॥

जो सुख होत भक्त वचननि सुनि नैनन नीर वहावें
सो सुख कबहुँ न पैयत पितुघर पूत को पूत खिलावें।
जो सुख होत मिलत साधुनि कौ, छिन छिन रङ्ग चढ़ावें
सो सुख होत न रङ्क 'व्यास'को लंक सुमेरहि पायें ॥१६

जूठनि जेन भक्त की खात।
तिनके मुख सूकर कूकर के भच्छि अभच्छि पोषत गात।
जिनके वदन सदन नर्कनि के, जे हरि-जननि घिनात।
काम-विवस कामिनि के पीवत अधरन लार चुचात।
भोजन पर माँखी मूतति ताहू रुचि सों खात।
भक्तनि को चरनोदक अचवत अभिमानी जरि जात।
स्वपच भक्त कौ भोग ग्रहत हरि बाँभन ताहि डरात।
बाज दार की पाँति व्याह में जैंवत विप्र वरात।
भेंटति सुतनि रेंट मुख लागत सुख पावत जड़ तात।
अपरस ह्वै भक्तिनि छ्वै छुतिहा तेल सचैल न्हात।
हरि भक्तनि पाछैं आछैं डोलत हरि गङ्गा अकुलात।
साधु चरन रज माँझ'व्यास'से कोटिनि पतित समात॥१६

सुने न देखे भक्त भिखारी।
तिनकें दाम काम को लोभ न, जिनकें कुञ्जविहारी।
सुक नारद और सिव सनकादिक ये अनुरागी भारी।
तिनको मत भागवत न समुझै, सब की बुध पचहारी।

रसना इन्द्री दोऊ बैरिन जिनकी अनी अन्यारी ।
करि अहार विहार परस्पर बैर करत विभिचारी ॥
विषयनि की परतीति न हरि कौं, रीति कहत बाजारी ।
'व्यास' आस-सागर में बूड़े सो वे भक्ति बिसारी ॥१६६॥

माया भक्त न लगतै जाई ।
यद्यपि कान्हकुँवर की वहिनी, जसुदा मैया जाई ॥
जाके मोहैं तन धन भावै मन में नारि पराई ।
जस की हानि होत ताके वस, पशु ज्यों करत लराई ॥
वासों प्रीति करत हरि विसरत, सन्त जना सब भाई ।
सोई साधु जो ताहि तजै हरि-चरन भजै चितलाई ॥
नाचति जगहि नचावति मम सिर तोरति तार रिसाई ।
मोहन विनती सुनहुँ 'व्यास'की वन में होति हँसाई ॥१६७॥

राग-कान्हरो—

सोई जननी जो भक्तहि जावे ।
सोई जनक सो भक्ति सिखावै ॥
सोई गुरु जो साधु सिवावै ।
सोई साधु जो विषै छुड़ावै ॥
सोई धर्म जो भर्म नसावै ।
सोई धन जो प्रीति बढ़ावै ॥

सोई सूर जो मन न चलावै ।
सोई धीर जो चित न डुलावै ॥
सोई मुख जो हरि गुण गावै ।
सोई 'व्यास' जो रास करावै ॥१६८॥

ऐसों काकौ भाग जु दिन प्रति स्यामा-स्यामहि रुचि सौं गा
जाकी चरन सरन ह्वै रहियै तौ वृन्दावन स्याम बसावै
जूठनि तौ ताही की खैये पाप ताप, तन दूरि नसावै
'व्यास'दास ताही कें हूजौ जाहि भक्ति बिनु और न भावै१

रसिक-अनन्यव्रत

राग-सारङ्ग —

रसिक अनन्य भक्ति कल भोगि ।
जिनके केवल राधावल्लभ वृन्दावन रस भोगि ॥
जो सम्पति सुपन न देखत ज्ञान कर्म व्रत योगि
जिनके सहज सनेही स्यामा-स्याम सदा संयोगि
निरस पशु परसै नहिं जानै अभिमानी भव जोगि
'व्यास'जु हरि तजि आन जु मानत ह्वै है तुरक दुरोगि॥१

जाके मन वसै वृन्दावन ।
सोई रसिक अनन्य धन्य जाकैं हितराधामोहन ॥
ताहि नित्य विहार फुरै वन लीला को अनुकरन ।
विषय वासना नाहिन जाकें सुधरे अन्तहकरन ॥
लोकवेद को भेद न जाकैं श्रीभागवत सो धन ।
ताकैं 'व्यास' रासरस-वरषत वहिगई कामिनि कञ्चन ॥१७१॥

अनन्य व्रत खाँडे की सी धार ।
इत-उत डगत जगत हितते हरि फेरि न करत सम्हार ॥
कहा ग्यासि कुल-कर्मनि छाँड़े जौ लगि विषय विकार ।
बिनु प्रेमहिं, न प्रसाद नेम तहाँ हरि न ग्रहत ज्यौंनार ॥
कौन काम (की) कीर्तिं बिनु प्रीतिहि, गनिका कैसौ जार ।
'व्यासदास' की पति गति नासै, गयें पराये द्वार ॥१७२॥

अनन्यनि कौन की परवाहि ।
श्रीकुञ्जविहारी की आसा करि, लै कमरी करवाहि ॥
कोटि मुकुति सुख होत गोखरु जबै गड़ै तरवाहिं ।
श्रीवृन्दावन के देखत भाजै नैननि की हरवाहि ॥
जमुना कूल मूल फल फूलत गोरस की भरवाहि ।
निसिदिन स्याम कामवश सेवत राधा की घरवाहि ॥

रीझत जाहि राजसी जब तब भारत पाथर वाहि
इतनी आस 'व्यास' तजि भजिये गुदी बाँधि सरवाहि ॥१

मरै कि मारै साँच सूर ।
पीठि न देइ, दीठि कै अरि-दल सुनत समर के तू
जनम भूमि तजि पतिपद भजई फिरै न सलिता पू
विरद सँभारि गारि के डर रजपूत जु मरहि मजू
वैसांदुर डर सती न (उर) उलटै, सिर में मेलि सिन्दू
ऐसेहीं सीस सहे हथियारहि, मुख मुरै न छाँड़ि गरू
कहत आपनैं मुख हरवाई, दुरै न भख्यौ कपू
सर्वोपरि हरि भक्ति व्यासकैं, खा ःती नहिं बूर ॥१७

राग-रामकली—

तेई रसिक अनन्य जानिवै ।
जिनकौ विषय-विकार न, हरिसों रति, तेई साधु मानिवै
तिनकी सङ्गति पतित सु उद्धरै, जौ वारक घर आनिवै
तिनकें चरनोदक सों अपनें, नखसिख गातनि सानिवै
तिनकी पावन जूठनि जैंवत तब ही हरि हियआनिवै
तिनके वचन श्रवन सुनि तिहिं छिन मन-सन्देह भानिवै
तिनकी जीवनि–धन वृन्दावन, जीवत मरत वखानिवै
'व्यास' राधिका-रमन भवन विनु तेइ क्यों पहिचानिवै॥१

जाकी (है) उपासना, ताही की वासना,
ताहीकौ नाम, रूप, गुन गाइयै।
यहै अनन्य परम धर्म परिपाटी,
वृन्दावन बसि अनत न जाइयै ॥
सोई विभिचारी आन कहै, आन करै,
ताको सुख देखे, दारुन दुख पाइयै।
'व्यास' होइ उपहास त्रास कियें,
आस-अछत, कित दास कहाइयै ॥१७६॥

राग-धनाश्री—

स्यामहि उपमा दीजै काकी।
वृन्दावन सो घर है जाको, राधा-दुलहिन ताकी ॥
नारद सुक जयदेव बखानी, अद्भुत् कीर्ति जाकी।
जाकौ वैभव देखत कमला-पति में रही न बाकी ॥
इहिं रस नवधा-भक्ति उबीठी रति भागौत कथा की।
रहन कहन सबही तें न्यारी, 'व्यास' अनन्य सभा की ॥१७७॥

प्रेमभक्ति-निरधारः-

राग-सारङ्ग—

होइव सोई हरि जो करि है।

तजि चिन्ता चित चरन-सरन रहि, भावी सकल मिटरि है।

करिहै लाज नाम नाते की, यह विनती मन धरि है।

दीनदयाल विरद साँचौ करि, हरि दारुन-दुख हरि है।

सिंघिनि-सिंह बीच बैठ्यौ सुत कैसें स्यारहि डरि है।

ऐसें स्यामा स्यामै थरुदै, डरिकैं कौंन विचरि है।

सुनियत सुक्र सुनि वचन चहूँ युग, हरि देषनि संघरि है।

साधुनि कौ अपराध करत,

मधु (कर) साहिन ताहि गुदरि है ॥१७८॥

हरि सो दाता भयो न आहि।

सुख करिबेंकों दुख हरिबेंकों, सब जग देख्यौ चाहि।

भक्तन के बस हरिह्वै जानत, जस दीनौं जसुदाहि।

जाहि भक्त की लाज बड़ाई, दीनी द्रुपद-सुताहि।

जाकै दान मान की महिमा सकत न वेद सराहि।

जिहि चिरवा लै कमला दीनी मन्द न माँगत ताहि।

पतित पिङ्गलहि आलिङ्गन दै, रूप दियौ कुब्जाहि।

हरि न पाइयतु 'व्यास' भक्ति विनु,

मिटै न मन की डाहि ॥ १७९॥

भयौ न ह्वै है हरि सौ प्यारौ ।
सुन्यौ न देख्यौ हरिसो हितुवा, सुत, माता, महतारौ ॥
ज्यौं रङ्कसों प्रीति करत कोऊ, अपनौ काज विगारौ ।
गरजत भक्त भरोसैं हरिकें ज्यौं पानिप मनि गारौ ॥
कामधेनु कल्पद्रुम को सेवक अजहिन करौ कुरारौ ।
सिंह सरन रहि स्यारहि डरपत, बिनु काजर मुँह कारौ ॥
भव-सागर डर श्वान पूंछ गहि सो, को, जो न दुखारौ ।
'व्यास' आस तजि वृन्दावन में दीजै दाव सवारौ ॥१८०॥

गोपालै जब भजिये तब नीकौ ।
ज्योतिष निगम, पुरान, सबै ठग पड़ै ज्वाँनु है जीकौ ॥
भद्रा भली, भरनि भव हरनी, चलत मेघ अरु छीकौ ।
'व्यासदास' धन धर्म विचारै, सो प्रेमी कौड़ी कौ ॥१८१॥

वहिनी बेटा हरिकौं—न तजिये ।
जा सङ्गति तैं पति गति नासै ता सङ्गति से लजिये ॥
मात पिया भैया भाभिनि कुल, सखी सखा नहिं भजियै ।
साधुनिके पथ चलिये, ऊबट चलै सु वेगि वरजियै ॥
गुरुहिन आवै गारि बातन की, सो सामग्री सजियै ।
व्यास विमुख (बाँभन) परिहरियै,
सुपच भक्त कूखि उपजियै ॥१८२॥

राग-नट—

कोई रसिक स्याम रस पीवैगौ, पीवैगौ सोई जीवैगौ,
पीवैगौ सोई फूलैगौ, तन मन देख न भूलैगौ
पीवैगौ जोई माचैगौ, साधु सङ्ग मिलि राचैगौ
चाखैगौ सोई जानैगौ, कहनै कौन पत्यानैगौ
'व्यास'दास जिय भावैगौ, तबअङ्ग-खवासी पावैगौ॥१

राग-केदारो—

श्रीकृष्न कृपा तें सब वनि आवै ।
सतगुरु मिलै साधु की सङ्गति, सदा असाधु न भावै
चित इन्द्रीजित, वितु न रुचै मन, निजु जनहीं कौं धावै
लोचन दुखमोचन मुख देखत, रसना हरि गुन गावै
दरस (न) भक्ति भागवत तीस सात जगदीस बतावै
रासविलास माधुरी राधा वृन्दा विपिन बसावै
सो जु कहा उपजै गुन हरि भजि दोष दुखनि बिसरावै
दोष-रहित, गुन-रहित, 'व्यास'अन्धे की दई चरावै॥१

राग-सारङ्ग व विलावल—

स्वपनौं सो धन अपनौं स्याम ।
आदि अन्त तासौं न विछुरिबौ, परत काल सौं काम
तन, धन सुत, दारा कारागृह, तजौ भजौ लै नाम
देखि-देखि फूलहु जिनि भूलहु जग कैसो आम

जैसें वछरा के धोखे सों गैया चाटत चाम ।
ऐसें 'व्यास' आस सब झूठी साँचौ हरि अभिराम ॥१८५॥

भक्तिज्ञान-निरधार

राग-सारङ्ग—

हरि बिनु सब सोभा सोभा सी ।
अञ्जन मञ्जन पति बिनु सीठौ ज्यौं मटकै मसवासी ॥
अन्धरिहि काजर नकटिहि बेसरि टौंटिहिं पहुँची हासी ।
हीज पुरुष, त्रिया बाँझ वृथा मुंडली लटकन मति नासी ॥
कुढ़ियहि मुदरी, बूँचिहि कुण्डल, केस बिना आकासी ।
दासी लीन कु-लीन कामिनी, कञ्चन तन सन्यासी ॥
स्यारहि राज नरनि में सोहै, जैसें राज विलासी ।
'व्यास' स्याम बिनु सब असमञ्जस,
जैसें धनिक विनासी ॥ १८६ ॥

श्रीवृन्दावन में मञ्जुल मरिबौ ।
जीवनमुक्त सबै व्रजवासी पद-रजसों हित करिबौ ॥
जहाँ स्याम बछरा ह्वै गायन, चौपि तृननि कौ चरिबौ ।
हरि बालक गोपिनि पय पीवत हरि आँकौ-भरि चलिबौ ॥

सात रातदिन इन्द्र रिसानौ गोवर्द्धन कर धरिवौ ।
प्रलय मेघ मघवाहि विमद करि कहि सबसों नहि डरिवौ ।।
अघ, वक, वकी विनाशि रासरचि, सुख सागर में तरिवौ ।
कुञ्ज भवन रति पुञ्ज चयनि करि, राधा के बस परिवौ ।।
ऐसे प्रभुहि पीठि दै लोभ रति माया जीवन जरिवौ ।
श्रीगुरु सुकल प्रताप 'व्यास' रस,
प्रेमसिन्धु उर भरिवौ ।। १८७ ।।

श्रीवृन्दावन साँचौ है जाकैं ।
विषई विषै भिखारी दाता निकट न आवै ताकैं ।।
बसना वस तेही गिरत न जानैं जीव कोऊ मद छाकैं ।
ऐसेंही रससिन्धु मगन भयौ रहै अविद्या काकैं ।।
कुञ्ज-केलि अनभौ है जाके सो चलै न पथ अवला कैं ।
जैसे निर्धनहूं जु न जैहै बोलैहूं गनिका-कैं ।।
जैसैं सिंघनि के सुत भूँखे, जाचत नहि विलवा कैं ।
काम स्याम सों जिनहिं ते सुनैं न जात रमा कैं ।।
ज्यौं अनयासा सम्पति आवै व्याहैं राजसुता कैं ।
ऐसें हीं 'व्यास' भक्ति पाये सुख,
द्रवत हैं स्याम कृपा कैं ।।१८८।।

गौरी व धनाश्री—

वृन्दावन साँचौ धन भैया।
कनककूट कोटिक लगि तजिये भजिये कुँवर कन्हैया ॥
यहाँ श्रीराधा-चरन रेंनु की कमला लेत बलैया।
तिनि सङ्ग गोपी नाँचति गावति मोहन बेंनु बजैया ॥
कामधेनु को छीरसिन्धु तजि, भजहुँ नन्दकी गैया।
चारचौं मुक्ति कहा लैं करियै, जहाँ जसोदा मैया ॥
अद्भुत लीला अद्भुत वैभव साँचौ सुकदेव कहैया।
आरत 'व्यास' पुकारत वन में, थोरेई लोग सुनैया ॥१८६॥

सारङ्ग व धनाश्री—

श्रीवृन्दावन अनन्यनि की गति।
अनत रहत दुख सहत सुखनि लगि,
जाइ हठीले हूँ की पति ॥
सुक वरजे सुकरत अभिमानी,
विषयन सङ्ग गई मति।
कृष्न-कृपा-बिनु तृष्ना बाढ़ी,
कनक कामिनि सों रति ॥
सीता राम सरीखे बिछुरे,
माया वर्तमान अति।

अजहूं माया मोह न छाँड़त,
'व्यास' मीच शिर गाजति ॥१६०॥

भक्तिज्ञान-उपदेस

राग–धनाश्री—

हरि विनु छिन न कहूं सुख पायौ ।
दुख, सुख, सम्पति, विपति भोगवत,
स्वर्ग नर्क फिरि आयौ ॥
लोक चतुर्दस वहुविधि भटक्यौ,
स्वारथ (लगि मैं) हरि बिसरायौ ।
कोटि गाय बाँभन मारे कौ,
ताप–पाप–उपजायौ ॥
कबहुँक स्वपच सरीर धरचौ,
मैं चोरी वल उदर वढ़ायौ ।
कवहुँक विद्या-वाद स्वाद लगि,
बाँभन ह्वै पुजवायौ ॥
कवहुँक रङ्क निःसङ्क भयौ,
घर घर फिरि जूठौ खायौ ।
कवहुँक सिंहासन पर वैठचौ,
छत्र चौंर ढरवायौ ॥

कबहुँक कञ्चन कामिनि लगि,
रन दूलह विरद बुलायौ ।
कबहुँक विषयी विषयिनि कारन,
घर तजि मूँड़ मुड़ायौ ॥
ऐसें नाना धर्म कर्म करि,
जनम जनम डहकायौ ।
अबकैं रसिक अनन्यनि 'व्यासहि',
राधा-रमन दिखायौ ॥ १९१ ॥

राग-सारङ्ग—

दुख सागर कौ बार न पार ।
जुग जुग जीव थाह नहिं पावत, बूड़त सिर धर भार ॥
तृष्ना तरल बयारि झकोरति लाभ-लहरि न उतार ।
काम क्रोध भर मीन मगर उर नाहिन कहूं उबार ॥
श्रीगुरू चरन नाम नौका नहिं, हरि-करिया न विचार ।
'व्यास' भक्ति बिनु आस जाइ नहिं,
सत सङ्गति करि बार ॥ १९२ ॥

जरतु जग अपनैं ही अभिमान ।
लोभ लहरि तैं भागि उबरियै रहियै हरि की आन ॥
एकनि विद्या धन कुल को मद, एक गुनी गुन गान ।
एक रहत जोवन मद-माते एक जती तप दान ॥

भारत रामायन मूसल सुनि, अजहूँ न जागे कान।
'व्यास' वायसहिं वेग उड़ावहु, हरि की कृपा कमान॥१६३

घटत न अजहूं देह कौ धर्म।
झूँठ नहि होत वेद वानी हरि, फटत नामकौ भरम॥
साधन विविधि कुठार धार हूं,कठिन कटत नहिं करम।
पण्डित मूरख कौऊ-न जानत, यह संसै कौ मरम॥
कहत भागवत साधु सङ्ग तैं जाय जगत की सरम।
'व्यास तवहि असमञ्जस मिटि है,जब ह्वै है मन नरम॥१६४

सवै सुख, विमुखनिं कौ दुख रूप।
जहाँ न रसिक अनन्य सेईयतु वृन्दावन के भूप॥
जहाँ न जीव-दया न दीनता, भाव-भक्ति न अनूप।
कनक कूट कोटिक लगि तजि,भज हरि-मंदिर जु अजूप।
'व्यास' वचन सुनि राज परीछत विसराये गृह कूप॥१६५॥

तो लगि रवनी लगत रवानी।
जब लगि मोहन मुख छवि वारक, उर अन्तर नहिं आनी॥
तौ लगि श्रवननि लगत सुहाई और पुरान कहानी।
जौ लगि साधुनि पर वारक हूं सुनी न सुक मुख वानी॥

तब लगि जोग जज्ञ व्रत तीरथ, भावत पावक पानी।
जब लगि गुरू उपदेस न जान्यौं प्रेम-भक्ति हूँ वानी॥
जब लगि 'व्यास' निरास दास ह्वै भजी नही रजधानी॥१९६॥

राग-नट—

मनहि नचावै विषय वासना क्यों हिरदै हरि आवै।
हौं असमर्थ अनाथ, मारयतु, पांचनि को समुझावै॥
सखा सङ्ग के अँगु करत नहिं, सखी न मोहिं बचावै।
लहुरौ भैया करि विरोध औरनि पै मोहि हँसावै॥
विनु अग्निहिं घरु लगत जु लायौ सो कोऊ न बुझावै।
भीतर भागि दौरयौ बाहिर को भक्त न सोधौ पावै॥
तोरौ पानौं सुत, दारा, हँसि वसत परौसी गावै।
एकै आस 'व्यास' नहि समुझत, खात पिवत बहकावै॥१९७

राग-सारङ्ग व घनाश्री—

श्रीवृन्दावन न तजै अधिकारी।
जाके मन परतीति रीति नहिं, ताकै वस न विहारी॥
कैसैं जारहि भजिहै. तजिहै भर्तारहि कुल नारी।
भागी भक्ति लोभ कें आगैं, मन्त्री डोम भिखारी॥
को को भयौ न पर-घर हरुवौ, तात लजी महतारी।
मालहि पहरि गुपालहि छाड़त, गुरुहिं दिवावत गारी॥

ज्यौं गजकुम्भ विदारहिं सिंह, बालक झपटै ज्यौं ल्यारी ।
ऐसें 'व्यास' सूर कायर की, सङ्गति हरि की न्यारी॥१६८॥

हरि बिनु को अपनौं संसार ।
माया मोह बँध्यौ जग बूड़त काल नदी की धार ॥
जैसैं संघट होत नाउ में, रहत पैले पार ।
सुत सम्पति दारासौं ऐसैं, बिछुरत लगै न वार ॥
जैसैं स्वपनै रङ्क पाइ निधि, औंड़ै धरि भण्डार ।
ऐसैं छिन भँगूर देही कौं गरवतु कहा गँवार ॥
जैसैं अन्ध आँधरे टेकत गनत न खार पनार ॥
ऐसैं 'व्यास' बहुत उपदेसे सुनि सुनि गये न पार॥१६९॥

राग-देव गन्धार—

गावत मन दीजै गोपालहि ।
नाँचत हरि पर चितु दीजौ तौ, प्रीति बढ़ै प्रतिपालहि ॥
बिनु अनुरागहि राग न मीठौ, सीठौ बिनु गुन मालहि ।
सब साधन सीठे धन कारन कत कूटत है गालहि ॥
गद्गद् स्वर पुलकति असुवनि बिनु भक्ति न भावत लीलहि।
ऐसो काकौ भाग जु दिनप्रति,नाँचत गावत पावत कालहि ॥
मुँह गावत गोपालहि कपटी, मनमें धरि भूपालहि ।
हाथी कौ सौ स्वाँग धरत पुनि चलत स्वाँन की चालहि ॥

घर घर भटकि भटकि धन कारन पहिरि लजावत मालहि ।
पथरा गरैं बाँधि किनि बूडहि,जब छाँड़त नन्दलालहि ॥
अधम प्रतिष्ठा विष्ठा लगि तजि वस वृन्दाविपिन रसालहि ।
आसा पासि बाँधि क्यों छूटै'व्यास'विसारि कृपालहि॥२००

राग-सारङ्ग—

सो न मिल्यौ जो कबहुँ न बिछुरै ।
हरि कौ साथ सु ओर निवाहूं, जो मन माँझ फुरै ॥
जैसैं पथरहि भिदतु न पानी, परसत फटक घुरै ।
ऐसैं जड़ सचेत के चित सौं, साँची हित न जुरै ॥
अनी, आगिमें परत धनी लगि सूर सती न मुरै ।
गिरिचर तरुवर सिन्धु भेद कैं, फिरि-न नदी बहुरै ॥
ठग, बग, डिम्भी लोगनि की गत, आदि अन्त न दुरै ।
दया दीनता दास-भाव बिनु 'व्यास' न स्याम ढुरै ॥२०१॥

गाइ लै गोपालैं दिन चारि ।
काल भुजङ्ग लोक बली तैं हरि के सरन उबारि ॥
लोभ कपट तजि साधु चरन भजि, लीजै जनम सुधारि ।
दया दीनता दास-भावतें गुरुहिं न आवै गारि ॥

रसना इन्द्री अनी अन्यारी भेदति तनहिं सम्हारि।
साधु चरन रज की कवची करि, कबहुँ न आवत हारि ॥
कृष्न कृपा बिनु तृष्ना बाढ़ी, गृह, वन, विषै उजारि।
'व्यास' अकाज करै जिनि अपनौं, प्यारौ स्याम बिसारि॥२०२

नियन्ता पतितन कौ हरि नाम।
उचरत ही मुँह कुचरत कलि कौ खोज न राखत स्याम ॥
चोर मध्य या मित्र ब्रह्म गुरु दारा सुत आराम।
अघवन्तनि हरि बोलत हीं, भगवन्त दियौ निज धाम ॥
कौन अजाभिलहूँ तैं पापी, जाकौं जम हँसि कियौ प्रनाम।
हरि-पद-पंकज छत्र छाँह बिनु मिटै न दुख रवि घाम ॥
बृजवासी 'व्यास' बबूर किये हरि, और भक्त कुल आम॥२०३

जौं पै सबहिनि भक्ति सुहाती।
तौ विद्या, विधि, वरन, धर्मकी, जाति रसातल जाती।
होते जौ न वहिर्मुख कलियुग, आनन्द सृष्टि अघाती ॥
होती सहज समीति सबनि में, प्रीति न कहूं समाती ॥
जौ भागवत रीति गुरू चलते तौ कति भक्ति बिकाती।
जौ साधुन कौ सङ्ग न तजते, तौ कत जरती छाती ॥

जो मन्दिर करि हरि कौ भजते, तौ कत लिखिते पाती।
यथा लाभ संतोष रहत ही, मिलते स्याम सँगाती॥
कृष्न कृपा न होई सबहिनि पै, माया जाहि डराती।
'व्यासदास' भागि किन उबरौ, आगि ते आसा ताती॥२०४॥

सोई साधु जौ हरि गुन गाया।
सोई साधु जु छाँड़ै माया॥
माया कौ फल गृह, सुत, जाया।
दामिनि कैसी चमकिनि काया॥
यह संसार धूरि की छाया।
स्वपनै हरिसौं मन न लगाया॥
जार भरतार कियौ दुख पाया।
'व्यास' सुहागिल स्याम रिझाया॥२०५॥

राग-केदारौ—

नाँचत गावत हरि सुख पावत।
नाँचि गाइ लीजै दिन द्वै, पुनि कठिन काल दिन आवत॥
नाँचत नाऊ, भाट, जुलाहौ, छीपा नीकै गावत।
पीपा अरु रैदास विप्र जयदेव सु भलैं रिझावत॥
नाँचत सनक सनन्दन अरु सुक नारद, सुनि सचु पावत।
नाँचत गन गन्धर्व देवता 'व्यासहिं' कान्ह जगावत॥२०६॥

राग-धनाश्री—

जैसैं प्यारे लागत दाम ।
ऐसें रसिक अनन्यन लागत, प्यारे स्यामास्याम ।।
काया, जाया सौं रति बाढ़ी, कौंन कहै निष्काम ।
राग तान तालहि मन दीनौं लेई-न हरि गुन ग्राम ।।
पाप हरन सुचि करन 'व्यास',
पतितन कौ है हरिनाम ।।२०७।।

साँचौई गोपाल गोपाल रटिवौ ।
रूप सील गुन कौंन काम कौ, हरिकी भक्ति बिनु पढ़िवौ ।।
जोग जज्ञ जप तप संजम व्रत, कलई कौसौ मढ़िवौ ।
नाम-कुठार विना को काटै, पाप वृन्द कौ वढ़िवौ ।।
जैसैं अन्न विना तुष कूटत, वारुमें तेल न कढ़िवौ ।
ऐसैंहि कर्म धर्म सब हरि बिनु, बिनु वैसान्दर दढ़िवौ ।।
जैसैं परदारा सौं रति करि, पति बिनु रासभ चढ़िवौ ।
ऐसैंहि 'व्यास' निरास भये बिनु,
कह बातनिकौ गढ़िवौ ।। २०८ ।।

राग-कान्हरौ—

हरि कहि लेहु कछु नहिं रैहै।
सपनौं सो जोवन धन अपनौं,
सुत सम्पति दारा घर जैहै॥
कोटिक कर्म धरम कौ करता,
एक भक्ति बिनु गति नहिं पैहै।
सन्तत सिंह सरन रहि को अब,
कोटि स्वान परि धों कहा लैहै॥
कुल कन्या भरतारहि तजि,
गनिका कैसैं पतिहि रिझैहै।
कदली निकट वारिकर को जड़,
अरण्ड वबूर धतूरै बैहै॥
हीरा हेम निगड़ दुखदाता,
चन्दन फूल भार को सैहै।
प्यासे परत सुधासिन्धु हित,
कौन अन्ध विप घोरि अचैहै॥
सुरसरि परिहरि कौंन पातकी,
पावन छोड़ सुरा जल न्हैहै।
"व्यास" उपासिक हरिकौ ह्वै कें,
देव पितर भूतनि को गैहै॥२०६॥

राग-सारङ्ग—

जो तू माला तिलक धरै ।
तौ या तन मन व्रत की लज्जा, और निबाह करै ॥
करि बहु भाँति भरोसौ हरिकौ, भव सागर उतरै ।
मनसा बाचा और कर्मना, तृन करि गनतु धरै ॥
सती न फिरत घाट ऊपर तैं सिर सिन्दूर परै ।
'व्यासदास' कौ कुञ्ज-विहारी,
प्रीति न कहूँ विसरै ॥ २१० ॥

छिनु छिनु ग्रसत तनहिं मन काल ।
अजहूं चेति चरन गहि हरिके, आयौ है कलिकाल ॥
लाज न कीनी राज—सभा महँ, कत कूटत है गाल ।
पेट न भरत करत हूं चेटक, लोभ परयौ मति चाल ॥
घर घर भटक्यौ नट के कपि ज्यौं बहुत भयौ बे-हाल ।
विनु हरि-दास निहाल भयौ को, विमुख भये न निहाल ॥
पुत्र, कलत्र सौं नेह विसर, ज्यौं, गैया चाटत छाल ।
दीननिहीं हरि राखि लेत ज्यौं, मीननि सीतल ताल ॥
गीध मृगनहीं तकि तकि मारत, जैसे कालहि काल ।
ऐसैं कपट प्रीति की सङ्गति सदाँ बढ़ै उर साल ॥

मन दुख आँखिन दुख, श्रवननि,
दुख सुखदै हरै कृपाल ।
'व्यासदास' की विनती सुनि पुनि,
कृपा करी नन्दलाल ॥ २११ ॥

भक्ति विनु मानुष तन खोवै क्यों सोवै उठि जागुरे ।
विषय अग्निपर भागि उवरियै साधुनि सौं कीजै अनुरागरे ॥
देह गेह दारा सुख सम्पति ज्यौं कोकिल सुत कागुरे ।
लाज बड़ाई गुन चतुराई, जैसो फोकट फागुरे ॥
माया मोह जियत नहिं छूटै, जैसो दुमुहाँ नागुरे ।
लोक बड़ाई कौ सुख भूठौ, बाजीगर कैसो बागुरे ॥
हरि बिनु क्यों तरिहै दुख सागर,
ज्यौं धन निधन सुहागुरे ।
आयु घटत जानत नहिं जैसैं,
नदी तीर बड़ बागुरे ॥
जैसैं मृग अपनौं हित जानत,
सुनत वधिक कौ रागुरे ।
ऐसैं 'व्यास' वचन बिनु मानैं,
मिटै न मनकौ दागुरे ॥२१२॥

काहे भजन करत सकुचात।
परधन पर दारा चितवत, तब कहि क्यौं न लजात॥
मिथ्या वाद-विवाद बकन कौं, फूल्यौ फिरत कुजात।
फूट्यौ कर्म भरम हिय वाढ़्यौ, तजि अमृत विष खात॥
डहक्यौ आइ पाइ भल अवसर, भक्ति विमुख भयौ गात।
सहज सिराय गई माया में, बहुत गये पछतात॥
पाछैं गई यसु जान दैरे, अब सुन लै यह बात।
हरि गुन गाइ नाच निर्भय ह्वै, 'व्यास' लखी यह घात॥२१३

उपदेस

राग-सारङ्ग—

मन दे जुगलकिसोरहि गाउ।
सेवत राधा सङ्ग वृन्दावन, बारक देखन आउ॥
या सुखतैं टरिये वा सुख लगि करिये वेग उपाउ।
अपनैं कर कुठार गहि रहि कत मारत अपनैं पाउ॥
विषै भोग कहूं विषयनि सेवत यह सयान वहि जाउ।
'व्यास' आस तजि छिन भँगुर की,
देह सवारौ दाउ॥२१४॥

जौ पै वृन्दावन धन भावै।
तौ कत स्वारथ परमारथ लगि मूंढ़ मनहि दौरावै ॥
नव निधि अष्ट सिधि जो वनवैभव, स्वपनैं अन्त न पावै।
घर-घर भटकत मुक्ति वापुरी, कमलहिं को वतरावै ॥
महा पतित पावन जमुना जल भूतल ताप नसावै।
नव निकुञ्ज रति पुञ्जनि वरषत हरषि राधे गुन गावै ॥
सदा आधीन रहत नित मोहन मन लै प्रियहि रिझावै।
'व्यास' स्वामिनी रास-मण्डल में,
चुटकिनि पियहि नचावै ॥ २१५ ॥

राग-गौरी—

राधावल्लभ के गुन गाइ लेहु।
तजहु असाधु, सङ्ग भजि साधुनि,
हरि सौं हित उपजाइ लेहु ॥
वृन्दावन निरुपाधि राधिकारमन,
सौं प्रीति बढाइ लेहु।
नव निकुञ्ज सुख पुञ्जनि वरषत,
नैंननि सुख दिखराइ लेहु ॥

पावन पुलिन रासमण्डल में,
मन दै तनहि नचाइ लेहु।
गद्गद् स्वर पुलकित कोमल,
चित आनन्द नीर बहाइ लेहु॥
विमद विमत्सर रसिक अनन्य,
चरन रज सिर लपटाइ लेहु।
इहिं विधि महाप्रसादहि पावत,
सहचरि 'व्यास' कहाइ लेहु॥२१६॥

राग-सारङ्ग—

मूँड़ मुड़ाये की लाज निवहिये।
माला तिलक स्वाँग धरि हरिकौ,
मारि गारि सब ही की सहिये॥
विधि व्यौपार जारसौ कलिजुग,
हरि भर्त्तार गाढ़ौ करि गहिये।
अनन्य व्रत धरि सत जिनि छाँड़हु,
विमद सन्तनि की सङ्गति रहिये॥
अग्नि खाहु विष पिवहु परौ जल,
विषयनिकौ सुख भूल-न चहिये।
'व्यास' आस करि राधा–धव की,
श्रीवृन्दावन कह वेगि उ हिये॥२१७॥

कहा-कहा नहिं सहत सरीर ।
स्याम सरन बिनु कर्म सहाय न, जनम मरन की पीर ॥
करुनावन्त साधु सङ्गति बिनु मनहिं देइ को धीर ।
भक्ति, भागवत बिनु को मेटै सुखदै दुख की भीर ॥
बिनु अपराध चहूँ दिसि बरषत, पिसुन वचन अति तीर ।
कृष्न कृपा कवची तैं उबरै, सोच बढ़ी उप पीर ॥
नामा, सैंन, धना, रैदास दीनता फुरी कबीर ।
तिनकी बात सुनत श्रवननि, सुख बरषत नैंननि नीर ॥
चेतहु भैया बेगि कलि बाढ़ी, काल नदी गम्भीर ।
'व्यास' वचन बल वृन्दावन बसि,
सेवहु कुञ्ज कुटीर ॥ २१८ ॥

राग-कान्हरौ—

पतित पवित्र किये हरि नागर ।
एक नाम के लेत सबनि के सूपि गये अघ सागर ॥
अधम अजामिलहुँ कौं उधरी, मुक्ति पौरिकी आगर ।
हरि हरि कहत कौंन पापी के, पाप लिखे जम कागर ॥
गौरस्याम कौ सरण तक्यौ जिनि तिनकी कौंन बराबर ।
ऐसैं 'व्यास' अनन्य सभामें और न होत उजागर ॥२१९॥

राग-सारङ्ग—

लगै जौ वृन्दावन कौ रङ्ग ।
सब सन्देह देह के जैहैं अरु विषयनि कौ सङ्ग ॥
जैसैं बाजहि नाजु लगतहीं करत है उदर मृदङ्ग ।
ऐसैं सहजमाधुरी परसत उपजत गुन कौ अङ्ग ॥
जैसैं कामी कामिनि देखत, बाढ़त दुसह अनङ्ग ।
ऐसैंहीं 'व्यास' विहार विलोकत,
साधन सों चित भङ्ग ॥ २२० ॥

दुविधा तब जैहै या मन की ।
निर्भय ह्वै कैं जब सेवहुगे, रज श्रीवृन्दावन की ॥
कामरि लै करवा जब लैहै, सीतल छाँह कुञ्जन की ।
अति उदार लीला गावहुगे, मोहन-स्याम सुघन की ॥
इन पाँइनि परिकरमा दैहैं. मथुरा गोवर्द्धन की ।
'व्यासदास' जब टेक पकरिहै, ऐसैं पावन पनकी ॥ २२१ ॥

सत छाँड़ै हूँ तन जै है ।
पाकी छाँड़ि गहत है काची, फिरि याछै पछितै है ॥
हरि के चरन सरन बिनु जुग-जुग, सिर अप-कीरति रैहै ।
ताही कौ तनु-तनु कौ सोई जो हरिही सौं हित करि लैहै ॥

जाहीकौ धर्म, धर्म कौ जोई, सो हरि की ओर निवैहै।
जोई गनिका कौ सुत सोई, बिना करै अब कैहै॥
ताही कौ कर्म कर्म कौ सोई, जो असि-धारा ब्रत गैहै।
भक्ति भाव धरि भजै स्याम कौं, भली बुरी सब सैहै॥
'व्यास' अनन्य सभा सेवत हूँ, काल व्यालको खैहै॥२२२॥

राग-नट—

सुख में हरि बिसरावै कैसैं, दुखमें हरि कहि आवै।
दुख सुख परै जु हरिहि न छाँड़ै, ताहि न हरि बिसरावै॥
दुख सुख जब लगि, भक्ति न तौ लगि यह भागवत बतावै।
दख-सुख झूँठौ सन्तत साँचौ हरि-हरि-जन मुहिं भावै॥
सुख-दुख छूटें सुक, सनकादिक, नारद हरि गुन गावै।
विधि निषेध गुन दोष दुख-सुख, विषयिनि बाँधि नचावै॥
सुख-दुख गयें जु सुख उपजत है, तापै स्याम, बँधावै।
हहिरवंसी हरिदासी सेवत 'व्यास' तहाँ बन पावैं॥२२३॥

राग-धनाश्री--

गाइ गुन तनहि न दीजै ठालि।
साधुनि की सेवा करि लीजै, कौनें देखी कालि॥
काल बधिक तकि मारत विमुखनि, विषै विसारी भालि।
हरिहीं क्यों न सम्हारत अजहूँ, गुरु वचननि प्रतिपालि॥

छाँड़हु आस त्रास सब हीं की जग उपहाँस पेटहि घालि।
ऐसैंहीं दुख सहिये जैसैं जर खोदै जीवत आलि ॥
हरि करिहै हित सुत कौं जैसैं गैया आवत थालि ।
हाथी कौ धरि स्वाँग 'व्यास' यह तजि कूकर की चालि॥२२४

राग-सारङ्ग व धनाश्री—

सोई घरी, सोई दिन, सोई पल, सोई छिन,
जबहि मिलत मेरे प्यारे के प्यारे ।
सोई घर घरनी, सोई सुत, गुरु हित
जिनके रसिक नैंननि के तारे ॥
सोई 'व्यास' सोई दास त्रास तजि हरि भजि,
रास दिखावै सोई प्राण हमारे ॥२२५॥

प्रीति-बखान

राग-सारङ्ग—

हरिसौं कीजै प्रीति निबाहि ।
कपट कियैं नागर नट जानत, सबके मन की डाहि ॥
मैं फिरि देख्यौ लोक-चतुर्दस, निरस घर-घर आहि ।
अपनैं-अपनैं स्वारथ के सब, मन दीजै अब काहि ॥

भक्ति प्रताप न जानत विषई, भव-सागर अवगाहि।
जार युवति गनका कौ बेटा पहिचानैं न पिताहि॥
जैसैं प्यासौ मृग धावत नहि पावत मृग-तृष्नाहि।
ऐसैं तन, धन, सुत, दारा झूँठे,
'व्यास (कहे सब) मधुकर साहि॥ २२६॥

साँची प्रीति हरति उपहासहि।
कपट प्रीति रङ्ग राचि परस्पर,
जब कब होहि विनासहि॥
मुँहु मीठी बातनि मन मोहत,
हरत पराई आसहि।
दावानलहि न ओस बुझावत,
कुहुर न हरत डुकासहि॥
पीर पराई धीर हरत कछु,
कहत न आप व्यथा सहि।
घर के सुत ज्यौं जिय कायर कोकिल,
चित चोरत कल वासहि॥
ऐसैं कपटिन की सङ्गति तजि,
'व्यास' भजहु हरिदासहि॥ २२७॥

जौ पै कोऊ साँची प्रीति करि जानैं ।
तौ या वनमें राधा-रमनैं, मन लगाइ गहि आनैं ॥
सुनियत कथा स्यामजू की एकै प्रीति के हाथ बिकानैं ।
ता मोहन की महिमा कैसैं विषई 'व्यास' बखानैं ॥२२८॥

नैंनन देख्यौ, सोई भावै ।
जोई कपट लोभ तजिकै श्रीराधावल्लभ के गुन गावै ॥
रसिक-अनन्य भक्ति मण्डल की मीठी बात सुनावै ॥
ताके चरन सरन ह्वै रहिये, दिन प्रति रास दिखावै ॥
स्यामा-स्याम करैं सोई जो,'व्यासदास'सुख पावै ॥२२९॥

हमारैं कौन भक्ति की रीति ।
साधन पौरुष करत कछु नाहीं, सन्तन सौं न समीति ॥
कायर कुटिल अधम लोभी हम, निसदिन करत अनीति ।
सपनैंहू स्याम चरन रति नाहीं, विषइनि सौं बहु प्रीति ॥
तीरथ करम धरम व्रत नाहीं, लोक वेद की भीति ।
महा पतित पावन हरि कहियतु,'व्यासहिं'यह परतीति॥२३०

राग-गौरी—

पहिले भक्तन के मन निर्मल ।
जिनके दरस पतित पावन भये जीव परसत गङ्ग जल ॥

जिनके हिय तैं हरि न टरत कहुँ कबहुँ एकौ पल।
तिनकौ नाम लेत गुन गावत रति बाढ़ै सद जुगल चरन तल॥
जिनके मद अभिमान न मत्सर तिनके वेगि पन्थ चल।
जिन्हें सेइ वृन्दावन पायौ 'व्यास' सुकल जन्म फल॥२३१॥

कलि–आगमन

राग-सारङ्ग—

धर्म दुरयौ कलि दई दिखाई।
कीनौं प्रगट प्रताप आपनौं, सब विपरीति चलाई॥
धन भयौ मीत, धर्म भयौ बैरी, पतितन सौं हितवाई।
जोगी, जपी, तपी, संन्यासी व्रत छाँड्यौ अकुलाई॥
वरनाश्रम की कौन चलाई, सन्तनिहूँ में आई।
लीनौं लोभ घेरि आगै दै, सुकृत्य चल्यौ बराई॥
देखत सन्त–भयानक लागत, भावत ससुर जमाई।
सम्पति सुकृत्य सनेह मान चित, गृह व्यौहार बड़ाई॥
कियौ कुमन्त्री लोभ आपुनौ, महा-मोह जु सहाई।
काम क्रोध मद मोह मत्सरा, दीनी देस दुहाई॥
दान लैंन कौं बड़े तामसी, मचलनि कौं बँभनाई।
लरन मरन कौं बड़े तामसी, वारौं कोटि कसाई॥

उपदेसनि कौं गुरू गुसांई, आचरनैं अधमाई ।
'व्यासदास' के सुकृत्य साँकरे, श्रीहरिवंस सहाई ।।२३२।।

अब साँचैं हीं कलिजुग आयौ ।
पूत न कह्यौ पिता कौ मानत, करत आपनौं भायौ ।।
बेटी बेचत सङ्क न मानत, दिन-दिन मोल बढ़ायौ ।
याही तैं वरिषा मन्द होत है, पुन्य तें पाप सवायौ ।।
मथुरा खुदति कटत वृन्दावन, मुनिजन सोच उपायौ ।
इतनों दुःख सहिबे के काजैं,काहे कों 'व्यास'जिवायौ।।२३३

कनिष्ट प्रवर्तक भक्त-लक्षण

राग-सारङ्ग—

जैसी भक्ति भागवत वरनी ।
तैसी विरले जानत मानत कठिन रहिन तैं करनी ।।
स्वामी भट्ट गुसाईं अगनित मति करि गति आचरनी ।
प्रीति परस्पर करत न कबहूं मिटै न हिय की जरनी ।।
धन कारन साधन करि हरि पर धरि सेवा वन धरनी ।
विषै वासना गई न अजहूं छाँड़ि विगूचे घरनी ।।

सहज प्रीति विना परतीति न सिस्नोदर की भरनी।
'व्यास' आस जौ लगि है, तौ लगि,
हरि विनु दुख जिय भरनी ॥२३४॥

गुरुहि न मानत चेली चेला।
गुरु रोटी पानी सौं घूँटत, ये दुध पीवें कुकरेला ॥
सिष्यनि के सौने के वासन, गुरुकैं कुँड़ी कुँड़ेला।
चौर चिकनियनि कौ वहु आदर, गुरु कौ ठेली-ठेला ॥
सिष्य तौ माँखीचूसा सुनियत, गुरु पुनि खाल उचेला।
वह कायर यह कृपन हठीलौ, ईंट मारि दिखरावतु भेला ॥
कृष्न कृपा बिनु विवि असमञ्जस, दुख-सागर में झेली झेला।
'व्यास' आस जे करत सिष्य की, तिनतैं भले भँडेला॥२३५॥

जाके मन वसै काम कामिनि धन।
ताकैं स्वपनै हूं नहिं सम्भव आनन्दकन्द स्याम-घन ॥
भक्ति, भागवत भनत तहाँ नहि, जहाँ विषय आचरन।
दया दीनता करुना तहाँ नहिं, जहाँ जीव आहरन॥
विमद विमत्सर सन्त जहाँ हैं, भगवत लीला सरन।
'व्यास' आस की पास बँधे ते, बूड़े गृह आस़रन ॥२३६॥

साधत वैरागी जड़ बङ्ग ।
धातु रसायन औषधि सेवत, निसदिन वढ़त अनङ्ग ॥
सुक वचननि कौ रङ्ग न लाग्यौ, भग्यौ न संसै अङ्ग ।
विषै विकार गुन उपजै वित लगि, सबै करत चित भङ्ग ।
वन में रहत गहत कामिनि कुच, सेवत पीन उतङ्ग ।
धिक-धिक अधमनि, सन्तनि तजि,हरि की छाँड़ि उछङ्ग ॥
लोभ वचन वाननि अङ्ग अंगनि, शोभित निकर निषङ्ग ।
'व्यास'आस दृढ़पासि गरै तिह,भावै रागिनि रङ्ग॥२३७॥

गावत नाँचत आवत, लोभ कहत ।
याही तें अनुराग न उपजत, राग वैराग सों कहत ॥
मन्त्र जंत्र पढ़ि मेलि ठगोरी, वस कीनौ संसार ।
स्वामी बहुत गुसाईं अगनित, भक्तनि पै न उवार ॥
भाव बिना सब विलबिलात अरु,किलाकिलात सब तेहू ।
'व्यास'राधिका-रमन कृपा बिनु,कहूंन सहज सनेहू ॥२३८॥

कुञ्जनि कुञ्जनि रसमय लूट ।
दस दिसि निसि वासर वृन्दावन चन्द वृन्द सब छूट ॥
राग-भोग अनुरागनि विलसत जातन देख्यौ कूट ।
गुनसागर नागर रसरूप कूप जल जात न टूट ॥

रसिक अनन्य कहाइ अनत बसि राजा राउ न पूट।
लोग प्रतिष्ठा विष्टा लगि सतु हारयौ चारौं खूट॥
ज्यौं अनबोलें ऊँट भार सहि भाँजि काटै सरहूट।
ऐसैं 'व्यास' दुरास पास बँधि
क्यों आवै बस छूट॥ २३९॥

राग-विलावल--

गुरु गोविन्दहि बेंचत हाट।
भक्त न भयौ माँगनौ जैसैं डोम कलाँवत भाट॥
कायर कूर कुटिल अपराधी, कबहुँन होइ निराट।
लोभ गोभ लगि सबै विगारयौ, ज्यौं रैनी कौ माट॥
तन पोषत कामिनि मुख जोवत, लागि काम की साट।
पावत है विश्राम न मन में, उपजत कोटि उच्चाट॥
पर घर गयैं पाण्डुपुत्रनि कौं, परिभौ करयौ विराट।
द्रुपदसुता कीचकहूं डारी धर्म, पुत्र कें रुधिर लिलाट॥
जाके जात सुआवत देखत, बिनु रुचि देत कपाट।
'व्यास' आस करि हरिहि जु सेवै,
ताकी परियौ वाट॥ २४०॥

आस-बस भटकन

राग-सारङ्ग—

अब हमहूं से भक्त कहावत।
माला तिलक स्वाँग धरि हरि कौं, नाम बेंचि धन लावत॥
स्यामहिं छाँड़त काम विवश ह्वै, कामिनिहिं लगि धावत।
हरुवे होत तूल तृनहूं तें, पर घर गये न भावत॥
श्रीगुरू कौ उपदेस लेस नहिं, और न मन्त्र सुनावत।
छल बल लेत देत नहिं दीननि, अपनैं जसकौ गावत॥
भक्ति न सूझत सुनत भागवत, साधु न मन में आवत।
किथौ अकाज 'व्यास' कौ आसा
वनही में घर छावत॥ २४१॥

भटकत फिरत गौड़ गुजरात।
सुखनिधि मथुरा तजि वृन्दावन, दामन कौ अकुलात॥
जीवन मूरि जहाँ की धूरहिं, छाँड़त हू न लजात।
मुक्ति-पुञ्ज समता नहिं पावत, एक कुञ्ज के पात॥
जाकी तक्र सक्र कौ दुर्लभ, ताहि न बूझत बात।
'व्यास' विवेक विना संसारहिं,
लूटत हूं न अघात॥ २४२॥

एक भक्ति बिनु घर-घर भटकत।
फिट-फिट होत विषै रस लम्पट,
साधु चरन गहि मनहि न हटकत ॥
औरन कैं सुख सम्पति देखत,
लेत उसास लिलारी पटकत।
दाता कौ दुख, सुख करि मानत,
नाँचि गाइ बातैं कहि मटकत ॥
जब लगि कण्ठ उसास न तव लगि,
हरि परतीति न कबहूँ अटकत।
गुरु गोविन्द लजाइ, आपनौ,
सहि अपमान, दान लै सटकत ॥
सोवत खात रहत दिन पसु ज्यौं,
यामिनि कामिनि कै उर लंटकत।
'व्यास' आस के दास, भिखारी,
दारुण दुख मेटै ज्यौं उटकत ॥२४३॥

दिन द्वै लोग अनन्य कहायौ।
धन लगि नट को भेष काछिकैं, फिरि पाँचनि में आयौ ॥
सिगरे बिगरे अगनित गुरु करि, सब कौ जूठौ खायौ।
इत व्यौहार न उत परमारथ, बीचहिं जनम गमायौ ॥

खौं खोदी ऊसर वैवे कौं, चोड मैंस लै माँटि मुल्यायौ।
गनिका कौ सुत पितहिं पिण्ड दै, काकौ नाम लिवायौ॥
अन्धरहिं नाँचि दिखायौ जैसैं, बहरहिं गाइ सुनायौ।
चढ़ि कागद की नाव नदी कहि, काहु पार न पायौ॥
प्रीति न होहि बिना परतीतिहि, सब संसार नचायौ।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' आस करि,
घर ही माँझ मुसायौ॥ २४४॥

भक्त ठाढ़े भूपनि कै द्वार।
उझकत झुकत पौरियन डरपत गाय बजाय सुनावत तार॥
कहियौं धाय थवाइत प्रोहित हमहिं गुदरबी खार।
छिन-छिन करत विदा की विनती उपजत कोटि विकार॥
विहसत लसत कोटि वर अन्तर. कलियुग के अनुसार।
होत अनादर विषयिन कैं जब, तबहीं होत कुतार॥
चन्दन माला औ स्याम विन्दनी, दै उलटे उपहार।
'व्यास' आस लगि नट बान्दर ज्यौं',
नाँचत देसउतार॥ २४५॥

वृथा जन अभिमान

राग-सारङ्ग व विलावल—

कौनैं सुख पायौ विनु स्यामहि ।
सेवत सदा बबूरन जैसैं खायौ चाहत आमहिं ॥
सिंह सरन सूझत नहिं बूझत पढ्यौ जु सून्य सभा महि ।
परम पतिव्रत कौ सुख नाहिन सुपनैं हूं गनिका महि ॥
विमल बुद्धि, मन सुद्धि न उपजै, काम क्रोध माया महि ।
गुरुकुल घर अभिमानहिं जाकैं,
'व्यास' भक्ति नहिं तामहि ॥२४६॥

राग-रामकली—

बादि सुख स्वाद, वे काज पण्डित पढ़त ।
स्याम जस, भक्ति रस, कहैं नहिं भागवत,
कहा कनक कामिनि विषै निसिदिन रढ़त ॥
करत साधन सकल धन मान चित धरि,
कटक भटकत मृषा बचन रचना गढत ।
अश्व, गज, हेत नृपति नर ठगत, रातनि,
जगत नैंक आदर जान गर्व पर्वत चढत ॥

हरिदास निन्द करि पित्र भूत वन्दि उर,
कृष्ण गोपाल शुभ नाम नहिं मुख रढत ।
'व्यास' मन त्रास नहिं करत यमदूत की,
यातना कठिन सहि लेत पावत डढत ॥२४७॥

राग-सारङ्ग—

आपु न पढि औरनि समुझावत ।
दोषहि प्रगटत गुनहिं दुरावत ॥
नीर मिलै सब छीर भिड़ावत ।
सन्त सभा स्वपनैं नहिं आवत ॥
अपनैं ही धर बड़े कहाबत ।
औरनि ठगि आपुन ठगवावत ॥
गनिका केसे भाव वनावत ।
हरि, विमुखनि पै सचु नहिं पावत ॥
इहिं विधि जनम-जनम डहकावत ।
'व्यासहिं' अभिमानी नहिं भावत ॥२४८॥

पढत पढावत ज्यौं मन मान्यौं ।
कौन काम गोपाल भक्ति सौं,
जौ पुरान पढि जान्यौं ॥

घर-घर भटकि मटकि कामिनि लगि,
गाल पटकि धन आन्यौं ।
निसिदिन विषै स्वाद रस लम्पट,
तजि पाँचनि की कान्यौं ॥
स्वपनैंहूँ न किये हरि अपनैं,
श्री हरिवंस वख्यान्यौं ।
सुनै न वचन साधु के मन दै,
चरन पखारि न अँचयौ पान्यौं ॥
सारासार विवेक न जान्यौं,
मन सन्देह न भान्यौं ।
दया दीनता दास भाव बिनु,
'व्यास' न हरि पहिचान्यौं ॥२४६॥

कहत सुनत बहुत दिन बीते भक्ति न मन में आई ।
स्याम-कृपा बिनु साधु-सङ्ग बिनु, कहि कौनैं रति पाई ॥
अपनैं-अपनैं मत मद भूले, करत आपनी भाई ।
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं, बहुतनि में प्रभुताई ॥
मैं समुझी सब काहू न समझी, मैं सब इन समुझाई ।
भोरे भक्त हुते सब तब के हम तो बहु चतुराई ॥

हमही अति परिपक्व भये औरनि कैं सबै कचाई।
कहनि सुहेली रहनि दुहेली, बातनि बहुत बड़ाई॥
हरि मन्दिर माला धरि गुरु करि, जीवनि के दुखदाई।
दया, दीनता, दास-भाव बिनु,
मिलै न 'व्यास' कन्हाई॥ २५०॥

कहत सुनत भागवत, बढै श्रोतहि वक्तहि अभिमान।
मद मत्सर न गयौ न भयौ सुख रुख न करत चपकान॥
भक्ति न भई विषै न गई रति भूलि गयौ भगवान।
लोभी कौ लोभ न छूटौ न गयौ कृपन कौ जु सयान॥
केवल कृष्न-कृपा बिनु साधु सङ्ग बिनु रङ्ग न आन।
'व्यास' भक्ति समुझी तबहीं,
नारद के सुनत बखान॥ २५१॥

राग-धनाश्री--

कर्मठ गुरु सुकल जग बाँध्यौ करम धरम उरझाये।
काका, बाबा, घर गुरू कीनैं घर ही कान फुकाये॥
जिनकैं भक्ति कहाँ तें आवैं साधु न मन में भाये।
क्रोध रारि हिंसा के माँडे सिष्य न गुरू सुहाये॥
प्रभुता रहत न तन के नातें, कोटिक ग्रन्थ सुनाये।
बूड़े कुलीन विद्या अभिमानी सुता पिता लपटाये॥

जगत प्रतिष्ठा विष्ठासौं तजि सरन स्याम के आये ।
'व्यासदास' कुल तजी बड़ाई,
जब हरि भक्त कहाये ।। २५२ ।।

राग-सारङ्ग—

भई काहूकैं भक्ति पढ़ै न ।

धन कौं पण्डित कहत भागवत, होत न हरि सौं ढैन ।।
उपज्यौ भाव कबीर धीर कौं वेद पुरान पढ़ैन ।
माँस छाँड़ि रैदास भक्त भये, कृपा तुरङ्ग चढ़ैन ।।
विषइनि तजें पिंगला सुधरी कर नाराज बढ़ैन ।
'व्यास' प्रतीति बिना न कहूं सुख, ज्यौं दुख उरग कढ़ैन ।।२५३

भक्ति न जनमें पढ़ैं पढ़ायैं ।

कृष्न कृपा बिनु साधु सँग बिनु कह कुल गाल बजायैं ।।
हरिहिं रिझाइ सकै को नटवा नट भट पै नचवायैं ।
सपनैंहूं न मिलै हरि लोभिन, बाजे विविध सुनायैं ।।
सुभठनि जूझत हरि न मिलैं अब सती न पावक पायैं ।
दान दिये भगवान न भेटैं कोटिक तीरथ न्हायैं ।।
नाऊ, जाट, चमार, जुलाहे, छीपा हरि दुलरायैं ।
मत्सर बाढ्यौ भट्ट गुसाँइन, स्वामी 'व्यास' कहायैं ।।२५४।।

राग-कान्हरौ—

सबै करत पद कीरति कहा हम थोरें हरिहिं रिझावत।
राग रागिनी तान मान महि लाल न लगतैं आवत॥
कछू जुगति ना मो कहँ उपजत उरमें मोहन गावत।
सवा लाख कीनैं तिलोचन हरि को, को दरसन पावत॥
भाव बिना न भक्ति रस उपजै यह सब सन्त बतावत।
किये उपाय राधिका मोहन,
'व्यासहि' निकट न आवत॥२५५॥

कपट निषेध

राग-विलावल—

कपट न छूटै हरि गुन गावत।
काम न छूटै स्यामहिं सेवत कामिनिहिं लगि धावत॥
कहत भागवत घर नहिं छूटै, मत्सर मद न नसावत।
भक्ति करत हूँ धर्म न छूटै, बाँधे कर्म नचावत॥
हरिवासर कौ भेद न छूटै, महाप्रसादहि पावत।
कर्म विषै नहिं छूटै विषयी साधुनि कौ समुझावत॥
देह धर्म कौ सङ्ग न छूटै, देह धर्महिं ध्यावत।
कुञ्जर-सौच करत नहिं डरपत, 'व्यास'वचन विसरावत॥२५६

धर्म छुटत छूटहि किनि प्रान ।
जीवत मृतक भयौ अपराधी तजि गुरु रीति प्रमान ॥
विधि रवानी करी मूढ़ मति करि गोरिल गुन गान ।
चढ़ि गादहि सर्वत्र मन्त्र पढ़ि पाप वजाइ निसान ॥
यह कारौंचि पौंछि है को अब, लै दै कन्या दान ।
मांगर तेल कलस जल धोये रोवे जड़ वे दान ॥
भक्ति न होत देव पितरन कौ किंकरीन की सान ।
चढ़ै काठ की वार वार क्यौं लगत न कूर कड़वान ॥
कपटी अपनौ होइ न कबहूं ज्यौं रामी तनु दान ।
'व्यास' पुनीत न होय कूकरी कोटिक गङ्गहि न्हान ॥२५७

राग–सारङ्ग—

हिय में आवत हरि न पढ़ै ।
अभिमानी कौ दास होत, दीननि के कान्ध चढ़ै ॥
भक्ति प्रीति तो खोवत धनि लगि रोवत गुली डढ़ै ।
ठगत राजसिनि, डगत धर्म ते फूलत दाम बढ़ै ॥
जब कब पीतरि प्रगट होत कलई सो कनक मढ़ै ।
'व्यास' कपट सौं हरि न मिलत,
ज्यौं सूरहि रनहि कढ़ै ॥ २५८ ॥

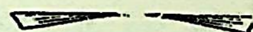
राग-गौरी (अठताल)—

कहा भयौ वृन्दावनहि बसै ।
जौलगि व्यापत माया तौ लगि कह घरतें निकसै ॥
धन मेवा कौ मन्दिर सेवत, करत कोठरी विषै रसै ।
कोटि कोटि दण्डवत करै कह, भूमि लिलाट घसै ॥
मुँह मीठे, मन सीठे कपटी, वचन रचन नैननि विहसै ।
मन्त्र ठगोरी कबहूं न तन्त्र गद मानत विषय डसै ॥
कञ्चन हाथ न छुवत कमण्डल मै मिलाय विलसै ।
'व्यास'लोभ रति हरि हरिदासनि परमारथहि खसै ॥२५९॥

राग-सारङ्ग—

जो पै हरि की भक्ति न साजी।
जीवतहूँ ते मृतक भये, अपराधी जननी लाजी ॥
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, जप, तप सब स्वार्थ की बाजी ।
पीड़ित घर-घर भटकत डोलत पण्डित मुण्डित काजी ॥
पुत्र कलत्र सजन की देही, गीध स्वान की खाजी ।
बीत गये तीनों पन कपटी, तऊन तृष्ना भाजी ॥
'व्यास'निरास भयौ याही तैं कृष्न चरन रति राजी॥२६०॥

प्रीति कपट की जब तब टूटै ।
छोड़ गाय ज्यौं हुँकरि बछेरुहि, थन लागत मुँह कूटै ॥
कबहुँक बचन बोल मीठे से, तमकि तुपक सी फूटै ।
पाखण्डिन की सङ्गति खोटी, ज्यौं ठग मिलि सङ्ग लूटै ॥
कृपावन्त भगवन्त होहि तब, दारुन दुख तें छूटै ।
साधु सङ्ग तें 'व्यास' परम सुख, भक्ति रतन कह खूटै ॥२६१



लोभी की दसा

राग-नट—

कहत सब लोभहिं लागो पाप ।
तऊ न छूटत लोभ होत हूँ, बाढ्यौ उर परिताप ।
जैसैं पंकहि पंक न छूटहि, सूखि सरीरहि आप ।
ऐसैं जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत मन कौ मिटै न ताप ॥
विद्यमान कृष्न यादव को, मुनि नैं दीनौ कोपि सराप ।
'व्यास' भक्ति बिनु दुर्लभ लोकनि, तजत सोक अगधाप॥२६२

राग-कान्हरौ—

लोक चतुर्दस लोभ फिरायौ।
कबहुँक राजा रङ्क सुहायौ॥
कबहुँक बाभन सुपच कहायौ।
'व्यास' बचन सुनि साधुन पायौ॥२६३॥

राग-सारङ्ग—

लोभी बगरूरे कौ सौ पात।
सात छानि को फूँस धूम सो काके नैन समात॥
पावस सलिता के तिनका ज्यों, चलत न कहूँ खटात।
दामनि लगि गनिका लौं, निसदिन सबके हाथ बिकात॥
जो कोऊ सर्वस देइ तौऊ सन्तोष बिना पछितात।
अमुका मेरी भाँजी दीनी ता पर ओंठ चबात॥
निलजन सकुच नहि घर माहीं सब ही सों सतरात।
भड़िहा कूकर लौं, कारो मारत हूँ किकियात॥
टूटे घरहि नेक लों डरपत जब लगि दद्र चुचात।
सूकर पाइ प्रतिष्ठा बिष्ठा फूले अङ्ग न समात॥
अधर लार गण्डकहि भजन करि महा मांस हूँ खात।
कृष्न कृपा बिनु तृष्ना जाकें सो 'व्यासहि' न सुहात॥२६४॥

जाके मन लोभ बसै सो कहा हरि जानै ।
स्याम कृपा विनु साधु वचन नहि मानै ॥
साधुन सों विमुख भूत पितरन कौ मानैं ।
गनिका कौ पूत पितहिं कहौ कैसे पहिचानै ॥
इहि विधि जगत जनमि-जनमि वहुतन के हाथ विकानै ।
'व्यास' स्याम भक्ति बिनु को, को नहीं खिसानै ॥२६५॥

लोभिनि वृन्दावन न सुहात ।
भागत भोर चोर लौं पापी विमुखन सेवन जात ॥
रहत सोभ लगि लोभ धरै मन दुःख करै बिललात ।
सुखहि पीठि दै दुखकौ दौरत, बहुतनि हाथ बिकात ॥
केलि-कुञ्ज पुञ्जनि कौ वैभव नैंननि महँ न खटात ।
सहज माधुरी कौ रस कैसै नीरस हृदै समात ॥
जहाँ स्याम के धोखैं चौंकै तनिकहु खरकै पात ।
जाहि पीठि दै पति गति नासै,
'व्यासहि' सो न सुहात ॥ २६६ ॥

विमुख प्रति अभाव

राग-कान्हरौ—

जाकैं हरि धनु नाहिन माल ।
तौ गरीव गरवत काहे कौं बादि बजावत गाल ॥
है कपूत वंस-कुल-वोरा, काँच रच्यौ ज्यौं लाल ।
यासौं धनिक कहौ जिनि कोऊ, है कोरौ कङ्गाल ॥
तरपट परैं जानिहै तव ही कण्ठ गहै जमु जाल ।
'व्यासदास' सपनैं की सम्पति को गहि भयौ निहाल ॥२६७॥

साकत वाँभन गूंगौ ऊँट ।
भार लेत संसार अहार, विकट काँटे को सूँट ॥
चालि, हालि सहि नकुवा छेदि चढ्यौ उटहेरौ टूँट ।
नक नकाय मारत हारत हूँ, देत न जल कौ घूँट ॥
लये कुदान काटों खाइ वढ़ाइ निलज जग खूँट ।
'व्यास' वचन मानै विनु वाढ्यौ दारुन दुख कौ वूंट ॥२६८॥

राग-सारङ्ग—

हरि विमुखन कौं दारुन दुख भायौ ।
निसिदिन विषै भोग की चिन्ता, अन्तकाल दिन आयौ ॥
औंड़ी नींव खुदाइ दाम दै ऊँचौ घर करवायौ ।
'व्यास' वृथा ऐसे साधन करि, जन्म-जन्म डहकायौ ॥२६९॥

विमुखनि रुचित न कुञ्जन बसिबौ।
जिनमें राधा-मोहन विहरत देखि सुखद मुख हसिबौ ॥
निसिदिन छिन छूटत नहिं कामिनि चरननसौं सिर घसिबौ।
चुम्वत मन आनन्द विकाने रह, कुल व्याकुल गसिबौ ॥
अङ्ग-अङ्ग रसरङ्ग रचे सुख सचे कुसुम कच खसिबौ ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि पिय सङ्ग,
जमुना जल में धसिबौ ॥ २७० ॥

बाँभन के मन भक्ति न आवै ।
भूलै आप सबनि समुझावै ॥
औरनि ठगि ठगि अपुन ठगावै ।
आपुन सोवै सबनि जगावै ॥
वेद पुरान वेचि धन ल्यावै ।
सत्या तजि हत्याहि मिलावै ॥
हरि हरिदास न देख्यौ भावै ।
भूत पितर देवन पुजवावै ॥
आपुन नर्क परि कुलहि बुलावै ।
'व्यास' भक्ति बिनु को गति पावै ॥२७१॥

पितर सेष जड़ स्यामहिं देत ।
तिहिं पापी अपनैं पितरनि के मुख में मेली रेत ॥
सो ठाकुर सेवक न जानिबौ जो अधमनि की जूठनि लेत ।
तिनकी सङ्गति पति गति जै है मेरे चित यह चेत ॥
स्याम केस सित होत न धोयैं केउला होत न सेत ।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' 'व्यास' नहीं,
किन सेवत ऊसर खेत ॥ २७२ ॥

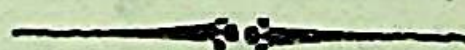
जो दुख होत बिमुख घर आयैं ।
ज्यौं कारौ लागै कारी निसि, कोटिक बिच्छु खायैं ॥
दुपहर जेठ परत बारू में, घायनि लौंन लगायैं ।
काँटन माँझ फिरत बिनु पनहीं, मूंड़ में टौला खायैं ॥
टूटत चाबुक कोटि पीठि पर, तरुवा बाँधि उठायैं ।
जो दुख होत अँगन में ठाढ़ैं सर्वसु जुवा हरायैं ॥
ज्यौं बाँझहि दुख होत सौतकौ, सुन्दर बेटा जायैं ।
देखत ही सुख होत जितौ दुख बिसरत नहिं बिसरायैं ॥
भटकत फिरत निलज बरजत हीं, कूकर ज्यौं झहरायैं ।
गारी देत बिलग नहीं मानत, फूलत दमरी पायैं ॥
अति दुख दुष्ट जगत में जेते, नैंकु न मेरे भायैं ।
दरस परस नहिं दीजा वाकौ, कहत 'व्यास' यौं नायैं ॥ २७३ ॥

राग—नट—

को को न गयौ को को न जैहै ।
इहिं संसार असार भक्त बिनु दूजौ और न रैहै ॥
हरिविमुख नर आतमघाती, नरक परत न अघैहै ।
सन्तचरन दृढ़ सरन नाव बिनु, काल नदी में बैहै ॥
सुधासिन्धु हरि नाम निकट तजि, विषयी विषयन खैहै ।
'व्यास' वचनकौ कियौ निरादर फिर पाछैं पछितैहै ॥२७४॥

राग-गौरी—

हरि की भक्ति बिनु तन मन मैलौ ।
जैसैं बिनु लाद्यो बिनु जोत्यौ,
गायनि-माँझ फिरत खल खैलौ ॥
आपु न जानत कही न मानत,
अजहूँ गुरुहिन करत असैलौ ।
आपुन बिगरि बिगारत औरनि,
ज्यौं जल-नायैं काचौ घैलौ ॥
जुग-जुग जनम-जनम याहीतैं,
अजहुँ न भरचौ विषैकौ थैलौ ।
'व्यास' बचन माने बिनु जानैं,
नरक परैगौ ऐलौ पैलौ ॥ २७५ ॥



तृष्णा की निवृत्ति

राग-धनाश्री—

तृष्ना कृष्न कृपा विनु सबकैं ।
जती सती कौ धीरज न रहै माया लोभ बाघके बबकैं ॥
जग घोराहि काम दौरावत मारत आसा चाबुक ठबकैं ।
गह्यौ आसरौ वृन्दावन कौ,
कट्टर 'व्यास' भयौ है अबकैं ॥२७६।

राग-कान्हरौ—

श्रीकृष्न सरन रहें तृष्ना जै है ।
भजि गोपाल कृपालहि निसिदिन,
काल व्याल कबहूं नहिं खैहै ॥
साधु सिंह की जो सङ्गति रहै,
तौ न निकट माया मृग रैहै ।
'व्यास' भक्ति बिनु गति नहिं लहिवौ,
जमकें द्वार नरक दुख सैहै ॥२७७॥

राग-बिलावल—

निष्काम ह्वै जो स्यामहि गावहु ।
साँचे-साँचे साधुनि में तुम साँचे साधु कहावहु ॥

बिनु लीनैं जो नाँचहु तुम प्रेम भक्ति फल पावहु ।
दाम कामना हरि नाम कौ गुन लगैन कोटि रिझावहु ॥
इन्द्रीजीत ह्वै अजितहि मन दै तन धन सुख बिसरावहु ।
बिमुखन के द्वारैं उझकतहीं मुख जिनि हरिहि दिखावहु ॥
अगनित दोष रोष तृष्ना महँ कृष्नहि कहा लजावहु ।
आसा बन्धन तैं नन्दनन्दन 'व्यासहि' वेगि छुड़ावहु ॥२७८॥

कलि तरण उपाय

सारङ्ग व धनाश्री—

कलियुग स्याम नाम अधार ।
हरि के चरन सरन बिनु काल व्याल पै कहूँ न उवार ॥
देवी देवा पूजा करि करि, धार बह्यौ संसार ।
श्वान पूंछ गहि भव सागर कौ, क्यौं पावहुगे पार ॥
छूट्यौ अपनौं धर्म सबनि पै, ज्ञान विवेक विचार ।
एक लोभ कै आगैं सकल गुननि कौ परयौ विडार ॥
बाभन करत सूद्र की सेवा, तजि विद्या आचार ।
रज छाँड़ी रजपूत कपूतन लाज नहीं संसार ॥

वनिक वनिक में मेलि जौंडरीं जोरत कपट भण्डार।
कुल की नारि गारि दै भर्त्रहि, ज्यौं रति गाय विजार॥
और सबै असमञ्जस हरि बिनु, नाहिन कहूँ उबार।
'व्यास' वचन मानैं बिनु जुग-जुग सेवहुगे यमद्वार॥२७६॥

राग-सारङ्ग--

कलियुग मन दीजै हरि नामैं।
आराधन साधन धन कारन, कत कीजै वे कामैं॥
साधुनिकै गुन जाहिनं लागैं दोष विरानैं वामैं।
सेवा मन्दिर भक्ति भागवत अब न होत बिनु दामैं॥
हरि साधुनि बिनु कछु न भावै ऐसे गुन हैं जामैं।
जाहि भलौ सबही कौ भावै 'व्यास' भक्त है तामैं॥२८०॥

राग-कान्हरौ—

गाइ लेहु गोपालहि यह कलिकाल वृथा न बितैजै।
बिछुरत हूं न जानि हैं तन मन धनहिं न भूलि पतैजै॥
दामिनि कैसी चमक मीचुकी कामिनि त्यौं न चितैजै।
करता हरता परमेश्वर बिनु काजहिं कत पछितैजै॥
भोग करत दुख रोग बढ़त, हरि नाम प्रसाद हितैजै।
'व्यास' स्याम के दास कहावत, कपट भण्डार रितैजै॥२८१॥

हरि गुन गावत कलियुग रहियै ।
विधि व्यौहार रह्यौ न कछू अब, साधु चरन निज्‌ गहियै ॥
इहिं संसार समुद्‌ वोहित उठि हरि हरि कहत निवहियै ।
'व्यास' स्याम की आस करहु,
उपहास सबनि की सहियै ॥ २८२ ॥

हरिके नाम भरोसैं रहियै ।
साधन विधि व्यौपार न कलियुग,
निसि-दिन हरि हरि कहियै ॥
अपनैं धरम विमुख नर हरि,
भजन बिना भवसिन्धु न तरियै ।
और न कछू उपाव भाव करि,
सन्त चरन रज गहियै ॥
माया काल नर गुन सब झूँठे,
दुख सुख विधि सब सहियै ।
'व्यास' निरास भयौ हरि के बल,
साँचौ सुख तब लहियै ॥ २८३ ॥

राग-गौरी—

हरि गुन गावत कलियुग सुनियत भयौ सबनि कौ काज ।
साखि भागवत बोलत अजहूँ काहे करत अकाज ॥

सुक सनकादिक जेहि रस माँते तजि संसार समाज।
जेहिं रस राज परीच्छत राँचे विसरि गयौ जल नाज॥
जिहिं रस प्रेम मगन भई गोपी तजि सुत पति गृह लाज।
सो रस 'व्यासदास' की जीवनि राधामोहन आज॥२८४॥



व्यास रस-लालसा

राग-गौरी—

किशोरी तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुञ्जनि के कौनैं, स्याम राधिका गाऊँ॥
या रज शिव सनकादिक लोचन, सो रज सीस चढ़ाऊँ।
व्यासस्वामिनीकी छबि निरखत, विमल-विमल जस गाऊँ॥

किशोरी मोहि अपनी करि लीजै।
और दियैं कछू भावत नाहीं, श्रीवृन्दावन दीजै॥
खग मृग पशु पन्छी या वनके, चरन सरन रख लीजै।
व्यासस्वामिनी की छबि निरखन, महल टहलनि कीजै२८६

बलि जाऊँ बलि जाऊँ राधा मोहि रहन दै वृन्दावनके सरन।
मौकौं ठौर न और कहूं अब सेउँगौ ये चरन॥

सहचरि ह्वै तेरी सेवा करिहुँ, पहिराऊँ आभरन ।
अति उदार अङ्ग-अङ्ग माधुरी, रोम-रोम सुख करन ॥
देखौं केलि वेलि मन्दिर में, सुनि किंकिनि रव श्रवन ।
दीजै वेगि व्यास कौं यह सुख, जहाँ न जीवन मरन ॥२८७॥

राग-कान्हरौ—

श्रीराधावल्लभ तुम मेरे हित ।
और सबै स्वारथ के संङ्गी, गुर चोपरी दै पोषत पित ॥
यह मैं जानि सबनि सौं तोरी, तुमसौं जोरी दै चरनन चित ।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवहु,
ज्यौं चातिक पोषत पावस-रित ॥२८८॥

राग-सारङ्ग—

जीवत मरत वृन्दावन सरनैं ।
सुनहुँ सुचित ह्वै (श्री) राधामोहन, यह विनती मन धरनैं ॥
यहै परम पुरुषारथ मेरौ, और कछू नहिं करनैं ।
स्यामभरोसै, तेरे व्रत के, नहीं व्यास कौ टरनैं ॥२८९॥

ऐसैहि काल जाइ जौ वीति ।
निसिदिन कुञ्जनि-कुञ्जनि डोलत, कहत सुनत रस रीति ॥
विमद विमत्सर चरन सरन ह्वै, विषै जाइ जौ जीति ।
नाँचत गावत रास रेनु में, तन छूटै जौ प्रीति ॥

या रस बिनु सब साधन फीके,
ज्यौं बिनु लौंन पहीति ।
रसिकनि की हरि आसा पुजैहैं,
यह व्यासहि परतीति ॥ २६० ॥

श्रीराधे जु आसा पुजवौ मेरी ।
हा हा कुँवरि किसोरी वलिजाऊँ,
करहु आपनी चेरी ॥
मोहि स्याम कौ डर नहिं स्यामा,
छुटत न आसा तेरी ।
अगति जाति तैं मेरी देही,
भव सागर तें फेरी ॥
कामधेनु के सङ्ग न सोहै,
सदाँ छोति में छेरी ।
तुव पद-पङ्कज पारस परसत,
'व्यास' कहा अब खेरी ॥२६१॥



* श्रीयुगलकिशोरोजयति *

व्यासजी की साखी–

हरि हीरा गुरु जौंहरी व्यासहि दियो बताय।
तनु मन आनँद सुख मिलै नाम लेत दुख जाय ॥१॥
आदि अन्त अरु मध्य में गहि रसिकन की रीति।
सन्त सबै गुरुदेव हैं 'व्यासहि' यह परतीति ॥ २ ॥
'व्यासहि' बामन जिन गनौ हरि-भक्तन कौ दास।
राधावल्लभ कारने सह्यो जगत उपहास ॥ ३ ॥
'व्यास' बसेरौ कुञ्ज में वंसीवट की छाँह।
हरिभक्तन कौ आसरौ राधाबर की बाँह ॥ ४ ॥
भाव-भक्ति बिनु चौहटौ जहाँ भक्ति तहँ होइ।
'व्यास' एकता तब लखै जबहि एक चित होइ ॥ ५ ॥
'व्यास' विवेकी भक्ति सौ दृढ़ कर कीजै प्रीति।
अविवेकी कौ सङ्ग तजि यही भक्ति की रीति ॥६॥
व्यास स्वपच बहु तरि गए एक नाम लवलीन।
चढ़ै नाव अभिमान की बूड़े कोटि कुलीन ॥ ७ ॥
ब्यास वड़ाई छाँड़ि कै हरि-चरनन चित जोरि।
एक भक्ति रैदास पर वारौ बामन कोरि ॥ ८ ॥

नामा के कर पय पियो खाई व्रज की छाक।
व्यास कपट हरि ना मिलें नीरस अपरस पाक ॥ ९ ॥
व्यास न कथनी काम की करनी है इक सार।
भक्ति बिना पण्डित वृथा ज्यों खर चन्दन भार ॥१०॥
व्यास भलौ अवसर मिल्यो यह तनु गुरु मुख पाय।
फिरि पाछै पछिताय गौ चौरासी में जाय ॥११॥
व्यास कठिन कलिकाल है नाम रूप अवगाहि।
रसिकन सौं तजि अन्तरौ नर तनु हीरा पाहि ॥१२
नर-देही द्वारो खुल्यो हरिपावन की घात।
व्यास फेरि नहि लगत तरुवर टूटो पात ॥ १३ ॥
व्यास विषय बन बढ़ रह्यो नीच सङ्ग जलधार।
हरि कुठार सों प्रीति करि कटत न लागै बार ॥१४॥
व्यास रसिक सब चलिबसे नीरस रहे कुबंस।
वग ठग की सङ्गति भई परि हरि गये जु हँस ॥ १५ ॥
रसिक अनन्य कहाइ कें पूजें गृह गन्नेस।
व्यास क्यों न जिनके सदन यम गन करें प्रवेस ॥ १६ ॥
व्यास जहाँ प्रभु को भजन होते रास विलास।
ते कामिनि वस ह्वै गए ऊत पितर के वास ॥ १७ ॥

व्यास पराई कामिनी कारी नागिन जान ।
सूँघति ही मरि जायगो गरुड़ मंत्र नहि मान ॥१८॥
व्यास पराई कामिनी लहसनि कैसी बानि ।
भीतर खाई चोरि कै बाहिर प्रगटी आनि ॥१९॥
व्यास कनक अरु कामिनी तजिये भजिये दूरि ।
हरि सौं अन्तर पारि हैं मुख दै जैहैं धूरि ॥२०॥
व्यास कनक अरु कामिनी ये लांबी तरवारि ।
निकसे हे हरि भजन कौं बीचहि लीनें मारि ॥२१॥
व्यास विभौ के मीत सब अन्तकाल कोउ नाहि ।
ताते तुम हरि कौं भजौ यम न गहेंगे बांहि ॥२२॥
व्यास न कबहूं उपजै विषयन कें अनुराग ।
साधु चरन रज पान बिनु मिटै न उर कौ दाग ॥२३॥
व्यास जाति तजि भक्ति करि कहत भागवत टेरि ।
जातिहि भक्तिही ना बने ज्यों केरा ढिग बेरि ॥२४॥
मोह मुक्य या जगत में सो कहुँ पैयत नाहि ।
काम प्रेम के कहन को रसना उठति कुकाहि ॥२५॥
व्यास भक्त चन्दन जहाँ सो बन सकल सुगन्ध ।
निकट बाँस कुल बहिर्मुख इनमें होइ न गन्ध ॥२६॥

सब तजि भजिये स्याम को श्रुति सुम्मृति कौ सार ।
व्यास प्रगट भागौ तमै भृगु कीनौ निरधार ॥२७॥
श्रीराधावर ध्याय कै और ध्याइये कौन ।
व्यासहि देत बनें नहीं बरी-बरी प्रति लान ॥२८॥
व्यास दास की भक्ति में नीरस करें उपाव ।
ज्यौं सिंहिन के चेंटुवन दावन कहत बिलाव ॥२९॥
व्यास जगत में रसिक जन जैसें द्रुम पर चन्द ।
सत्त चित्त आनन्द मय भेद न जानत मन्द ॥३०॥
व्यास चन्द आकास में जल में आभामन्द ।
जलज मन्द यह कहत हैं जो हम सो यह इन्द ॥३१॥
व्यास बिकाने स्याम घर रसिकन कीनो मोल ।
जरी जेवरी ह्वै रहे काम न आवत भोल ॥३२॥
व्यास बड़ाई लोक की कूकरि की पहिचानि ।
प्रीति करें मुख चाटही बैर करें तनुहानि ॥२३३॥
कनक रतन भूषन बसन मिथ्या अनंत बिलास ।
कन्या हाट सिंगारि कें बस वृन्दावन व्यास ॥३४॥
मुहरें मेवा अनत को मिथ्या भोग बिलास ।
वृन्दावन के स्वपच की झूठनि खैये व्यास ॥३५॥

व्यास रसिक जन तें बड़े व्रज तजि अनत न जायँ।
वृन्दावन के स्वपच लों जूठनि मागें खाय ॥३६॥
व्यास आस करि मागिबौ हरिहू हरिबौ होय।
बावन ह्वै बलि के गये यहु जानत सब कोय ॥३७॥
राधावल्लभ परम धन व्यासहि फबि गई लूट।
खरचत हू निघटै नहीं भरे भंडार अटूट ॥३८॥
नैन न मूदें ध्यान कौ किये न अंगन न्यास।
नाचि गाय रासहि मिले बसि वृन्दावन व्यास ॥३९॥
रे भैया हों व्यास कौ जिनि कोऊ पछिताय।
हरि सों हेत न छूटि है जित बछरा तित गाय ॥४०॥
व्यास न साधन सकल सम हरि सेवा सम तूल।
पत्रनि-पत्रनि जल भिदै सीचत तरुवर मूल ॥४१॥
व्यास राधिका रमन बिनु कहूँ न पायौ सुक्ख।
डारन-डारन में फिरयौ पातन-पातन दुक्ख ॥४२॥
व्यास अहंता ममतु तजि संपति प्रभु कौ जानि।
ताही कर गुण हरि भजहु भक्तन कौ सन्मान ॥४३॥
व्यास भक्ति की कुबुद्धि कहि गुरु गोबिन्दहि मारि।
कै या व्रतहि निबाहि लै कै मालादि उतारि ॥४४॥

वृन्दावन को चूहरौ बेचि खात है सूप ।
ताकी सर बर ना करै आन गांव कौ भूप ॥४५॥
मन जो चरनन तर बसै तनु जो अनत ही जाय ।
तनु चरनन मन अनत ही ताह न व्यास पत्याय ॥४६॥
व्यास जु मन चरनन लगै तनु के लगै न काज ।
मन तनु करि सब तजि भजै ताहि प्रेम की लाज ॥४७॥
व्यास भागवत जो सुन्नों जाके तनु तनु मन स्याम ।
वक्ता सोई जानिये जाके लोभ न काम ॥४८॥
व्यास न तासों प्रीति करि जाहि आपनी पीर ।
पर पीरहि सों प्रीति करि दुख सहि मेटे भीर ॥४९॥
देखा देखी भक्ति कौ व्यास न होय निबाह ।
कुल कन्या के हीस को गनिका करत बिवाह ॥५०॥
व्यास भक्त घर-घर फिरें हरि प्रभु की तजि सर्म ।
पति खोवैं पर घर भये ज्यों पात साहि की हुर्म ॥५१॥
व्यास आस जौ लगि हिये जग गुरु योगी दास ।
आस विहूनौ जगत में योगी गुरु जगदास ॥५२॥
तजि कै रसिक अनन्यता विधि निषैध लिये घेरि ।
व्यास दास के भावतै भक्ति गई दै टेरि ॥५३॥

झूठ मसखरी मन लग्यो हरि भजिवे कों झेर ।
व्यास दास की पौरि तें भक्ति गई दै टेर ॥५४॥
व्यास बाघ भुज भेटिये सहिये जिय की हानि ।
सकल भक्त नहिं भेटियै पूरबली पहिचानि ॥५५॥
साकत सगौ न भेटिये व्यास सु कण्ठ लगाय ।
परमारथ लै जाहिगौ रहै पाप लपटाय ॥५६॥
व्यास विगूचे जे गए साकत राधौ खाइ ।
जीवत विष्टा स्वान को मरे नर्क लैजाइ ॥५७॥
व्यास डगर में परि रहे सुनि साकत को गाँव ।
मनसा बाचा कर्मना पाप महा जो जाव ॥५८॥
व्यास भक्ति सहगामिनी टेरें कहत पुकारि ।
लोकलाज तबही गई वैठी मूड़ उघारि ॥५९॥
राधाबल्लभ श्रुति सुमृति सुमिरौ कहौ सु टेरि ।
श्रीराधावर व्यास के एक गांठि सौ फेरि ॥६०॥
व्यास भाव बिनु भक्ति नहि नहीं भक्ति बिनु प्रेम ।
झूठी बातन कह कहै क्यों सु कहावै हेम ॥६१॥
प्रेम अतनु या जगत में जानैं विरला कोय ।
व्यास सतनु क्यों परस है पचि हारचौ जग रोय ॥६२॥

अपने अपने मत लगे वाद मचावत सोर ।
ज्यों त्यों सब कौ सेवनें एकै नन्द किसोर ॥ ६३ ॥
'व्यास' जगत अभिमान सौं नख सिख उमग्यो जाय ।
ते नर वृष के भानु लों आपुन ही जर जाय ॥ ६४ ॥
युगल चरन हिय ना धरै मिलें न सन्तन दौरि ।
व्यास दास तैं जगत में परै पराई पौरि ॥ ६५ ॥
खाय सोय सुख मानही कामिनि उर लपटाय ।
व्यास दास अचरज कहा ते यम लोकै जाय ॥ ६६ ॥
खाय सोइ सुख मानि कै हरि चरनन चितलाय ।
व्यास दास तेई वड़े पुर वैकुँठहि जाय ॥ ६७ ॥
हरि हीरा निर्मोल है निर्धन गाहक व्यास ।
ऊंचौ फल क्यों पावही चौप करत उपहास ॥ ६८ ॥
पूत मूत को एक मत भक्त भयो सो पूत ।
व्यास वहिर्मुख जो भयो सो सुत मूत कपूत ॥ ६९ ॥
व्यास विदित चतुरा इयनि उपदेसैं संसार ।
करनी नाउ चढ़े बिना क्यों करि पावै पार ॥ ७० ॥
व्यास वचन मीठे कहै खरबूजा की भांति ।
ऊपर देखौ एक सौ भीतर तीन्यों पाँति ॥ ७१ ॥

मुख मीठी बातै कहै हिरदे निपट कठोर।
व्यास कहौ क्यों पाय है नागर नन्दकिसोर ॥ ७२ ॥

व्यास विवेकी सन्तजन कहनि रहनि में एक।
कहनि कहै करनी करै ज्यों पाथर की रेक ॥ ७३ ॥

व्यास निरन्तर भजन करि वा निष्काम सकाम।
हाँसी साचे क्रोध करि बट्टक बीज हरि नाम ॥ ७४ ॥

व्यास सनाम सनाम है नाम समान न कोय।
नामी ते प्रगट्यो विदित तद्यपि गरुवौ होय ॥ ७५ ।

व्यास दास से पतित सौ भृगु कौपलटौ लेहु।
उन उर दीनौ एक पग तुम दोऊ पग देहु ॥ ७६ ॥

व्यास आस इत जगत की उत चाहत हिय स्याम।
निलज अधम सकुचत नहीं चाहत है अभिराम ॥ ७७ ॥

खरे खरे सब लेतहें परखिपार खूसार ।
खोटे व्यास अनन्य के गाहक नन्दकुमार ॥ ७८ ॥

राधावल्लभ मूलफल और फूल दल डार ।
व्यास इनहि ते होत हैं अंस-कला अवतार ॥ ७९ ॥

वृन्दावन की माधुरी रसिकन की घरवाति ।
चारु चरन अंकित सदा निरखि व्यास वलिजात ॥ ८० ॥

मो मन अटक्यों स्याम सौं गढ्यो रूस में जाय।
चहले परि निकसै नहीं मनौ दूबरी गाय ॥ ८१ ॥
ब्यास जु मूरति स्याम की नख सिख रही समाय।
ज्यों महदी के पात में लाली लखी न जाय ॥ ८२ ॥
ब्यास भक्त को वन घनो सन्त लगै फल फूल।
पत्रनि पत्रनि जल भिद्यो तरुवर साखा मूल ॥ ८३ ॥
साधुन की सेवा किये हरि पावत संतोष।
साधु विमुख जे हरि भजैं ब्यास वढ़ै दिन रोष ॥ ८४ ॥
जिनके मुख गोपाल जी पावन हरिगुन गीत।
तिनको युग-युग जानिवौ ब्यास दास के मीत ॥ ८५ ॥
स्वान प्रसादहि छीगयो कौवा गयो विटारि।
दोऊ पावन ब्यास के कह भागौत विचारि ॥ ८६ ॥
ब्यास दास हरि जन बड़े जिनको हृदय गभीर।
अपनौं सुख चाहत नहीं हरत पराई पीर ॥ ८७ ॥
ब्यास वड़े हरि के जना सदा रहत भरपूर।
खात खवावत घटत नहिं ज्यों समुद्र के पूर ॥ ८८ ॥
ब्यास वड़े हरि के जना जिनके उर कछु नाहिं।
त्रिभुवनपति जिनके सुवस और कहो किहिं माहिं ॥ ८९ ॥

व्यास बड़े हरि के जना जिनकों हरि सौं मित्त।
निस दिन ते माते रहैं सदा प्रफुल्लित चित्त ॥ ६० ॥
व्यास बड़े हरि के जना जिन के हरि आधार।
निसि दिन ते माते रहैं पिऐं प्रेम चित धार ॥ ६१ ॥
व्यास बड़े हरि के जना जिनकें हरि आधार।
निसि दिन हरि के भजन में घटत न कबहूँ प्यार ॥ ६२ ॥
व्यास बड़े हरि के जना हरि कों अर्प्यो आय।
निसि दिन अति उल्लास मन मुख सें हरि यस गाय ॥६३॥
व्यास बड़े हरि के जना हरिहि नवावत मांथ।
जिनके हिय में बसत है तीन लोक कौ नाथ ॥ ६४ ॥
व्यास बड़े हरि के जना हरि यस में भे लीन।
तनु मन मनसा हरि बिना और कछू नहिं कीन ॥ ६५ ॥
व्यास सु रसिकन की रहन बहुत कठिन है बीर।
मन आनन्द घटै न छिन सहज जगत की पीर ॥ ६६ ॥
सती सूरमा सन्त जन इन समान नहिं और।
अगम पंथ कौं पग धरैं डिगैं न पावै ठौर ॥ ६७ ॥
व्यास रसिक बासौं कहै काटै माया फन्द।
हरिजन सौं हिल मिल रहै कबहूँ व्याप न द्वन्द ॥ ६८ ॥

हरि जन आवत देखिकें फूले अङ्ग न मात।
तनु मन लै आगे मिले हिल मिल हरि गुन गात ॥ ९९ ॥
हौं बलिहारी भक्त की करयो बहुत उपकार।
हरि सौ धन हिरदय धरयो छुड़ा दियो संसार ॥१००॥
उपदेस्यो रसिकनि प्रथम तब पाये हरिवंस।
जब हरिवंस कृपा करी मिटे व्यास के संस ॥१०१॥
रसिक कहैं सोई भली बुरी न मानों लेस।
पद रज लै सिर पर धरों यह व्यासै उपदेस ॥१०२॥
व्यास बड़ाई और की मेरे मन धिकार।
रसिकनि की गारी भली यह मेरो सिंगार ॥१०३॥
ब्यास भक्त के जाइये देखत गुन कौ हेत।
सूरा ह्वै तौ उठि मिलै नातर हारै खेत ॥१०४॥
व्यास बसै बन खण्ड में करै निरन्तर वास।
तिनकौं हरि कैसैं मिलैं भक्तनि सो अभिमान ॥१०५॥
वैर करै हरि भक्त सौं मित्र करै संसार।
भक्त कहावै आप ते मिटै न यम कौ द्वार ॥१०६॥
वृन्दावन कौ वास करि छोड़ जगत की आस।
व्यास सुरसिकनि हिल मिलैं ह्वै नव जन्म प्रकास॥१०७॥

व्यास भजन करिवौ करौ भक्तनि सो करि हेत।
यहि मन सौं निश्चै करी वृन्दावन सौ खेत ॥१०८॥

महा प्रलय अब ही भई वृन्दावन करि वास।
परचौ रहै निस्चित मन छोड़ि जगत की आस ॥१०९॥

काहू कै बल भजन कौ काहू कै आचार।
व्यास भरौ से कुँवरि के सोवत पाऊँ पसार ॥११०॥

व्यासै बहुत कृपा करी दीनी भक्ति अनन्य।
कुल कृत सब साँचौ भयो जहाँ भयो उत्पन्य ॥१११॥

व्यास एक ही बात गहि राधा वल्लभ धाम।
और कनेक सु भक्त सो मेरौ नाहिन काम ॥११२॥

मोह मया के फन्द बहु व्यासहि लीनों घेरि।
श्रीहरि वंस कृपा करि लीनौं मोकौं टेरि ॥११३॥

श्री हरि वंस कृपा बिना निमिष नहीं कहुँ ठौर।
व्यास दास की स्वामिनी प्रगटी सब सिर मौर ॥११४॥

स्वामिनी प्रगटी सुख भयो सुर पुह पनवर षाय।
हित हरिवंस प्रताप वे मिले निसान बजाय ॥११५॥

व्यास आस हरिवंस की तिन ही के बड़ भाग ।
वृन्दावन की कुञ्ज में सदा रहत अनुराग ॥११६॥
व्यास भक्त से भक्त हैं, सन्तन अति सुख देन ।
तन का मन का वचन का परे विपिन के खेत ॥११७॥
व्यासहि अब जिन जानियो लोक वेद कौ दास ।
राधा वल्लभ उर बसे औरनि ते जु उदास ॥११८॥

राधा वल्लभ मधुर रस जाके हिये नहि व्यास ।
मानुष देही रतन सी भली बिगारी तास ॥११९॥
धर्म मिटचो अब कृपा करि दियो भजन रस रीति ।
रसिक कुँवर दोउ लाड़िले व्यासहि बाढ़ी प्रीति ॥१२०॥
मेरे मन आधार प्रभु श्रीवृन्दावन चन्द ।
नित प्रति यह सुमिरत रहों व्यासहि मन आनन्द ॥१२१॥
राधावल्लभ व्यास कौं इष्ट मित्र गुरु देव ।
श्रीहरिवंस प्रगट कियो कुञ्ज महल रस भेव ॥१२२॥

वृन्दावन की द्रुमलता रसिकनि की घर बात ।
राधा विहरत लाड़िली निरखि व्यास बलि जात ॥१२३॥

श्रीहरि भक्ति न जानहीं माया ही सो हेत।
जीवत ह्वै हैं पातकी मरिके ह्वै हैं प्रेत ॥१२४॥
व्यास न सुख संसार में जो सिर छत्र फिरात।
रैन घनौ धन देखियत भोर नहीं ठहरात ॥१२५॥
कर्म करैं भव तरन कों उलटे पर भव मांहि।
पैडै व्यास अनन्य कौ जो पै जान्यों नाहि ॥१२६॥
वेद पुराननि हूँ पढ़ैं करैं सुकर्म सजोय।
व्याससु जन्म अनन्य विन एकौ गति नहिं होय ॥१२७॥
आन धर्म में मिल करें श्रीहरि भजन समान।
जैसे रतन अमोल कर जानत नहि अजान ॥१२८॥
यम की मार बुरी यहै छुटै न और उपाय।
दृढ़ करि कै हरि भक्ति ह्वै तब हरि भक्त सहाय ॥१२९॥
व्यास दीनता के सुखहि कह जाने जग मन्द।
दीन भये तें होत हैं दीनबन्धु सुख कन्द ॥१३०।
व्यास विभूका खेत कों दुक्ख न काहू देय।
जो निसंक ह्वै जाय सो वस्तु घनेरी लेय ॥१३१॥

वृन्दावन के स्वपच की रहिये सेवक होय ।
तासों भेद न कीजिये पीजे पद रज धोय ॥१३२॥

यास मिठाई विप्र की तामें लागै आग ।
वृन्दावन के स्वपच की जूठनि खैये माँग ॥१३३॥

व्यास कुलीननि कोटि मिलि पण्डित लाख पचीस ।
स्वपच भक्त की पान हीं तुलै न तिन कौ सीस ॥१३४॥

व्यास बधाएं श्राद्ध में पतित नृपति ग्रह दान ।
व्यास विवेकी भक्त जन तजत विमुख कौ धान ॥१३५॥

साकत भैया सत्रु सम बेगहि तजिये व्यास ।
जो वाकी सङ्गति करै करि है नरक निवास ॥१३६॥

साकत स्त्री छाड़िये वेश्या करिये नार ।
हरिदासी जो ह्वै रहै कुलहि न आवै गारि ॥१३७॥

साकत सगौ न भेटिये इन्द्र कुवेर समान ।
सुन्दर गनिका गुन भरी परसत तनु की हानि ॥१३८॥

साकत वामन जिन मिलौ वैष्नव मिलि चण्डाल ।
जाहि मिलै सुख पाइये मनौ मिले गोपाल ॥१३९॥

साकत बामन मस करा महा पतित जग माँझ।
पिता नपुंसक किन भयो माता भई न बाँझ ॥१४०॥

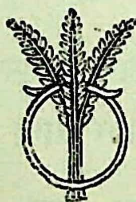
करै व्रत्त एकादसी हरि प्रताप ते दूर।
बांधे यमपुर जायेंगे मुख में पड़ि है धूर ॥१४१॥

नारि नागिनि बाघिनी ना कोजे निश्वास।
जो वाकी सङ्गति करै अंत जु होय विनास ॥१४२॥

व्यास न व्यापक देखिये निर्गुन परै न जान।
तब भक्तन हित औतरै राधा वल्लभ आन ॥१४३॥

कोटि ब्रह्म ऐश्वर्यता वैभव ताकी वारि।
व्यास दास की कुँवरि कों अब को सकै निहार ॥१४४॥

पूर्वार्द्ध समाप्त



* श्रीयुगलकिशोरो जयति *

श्री व्यास-वाणी

[उत्तरार्ध]

शृंगार-रस-विहार

श्रीगुरु-मङ्गल

राग-सूहौ विलावल (रूपक ताल)

जय जय श्रीगुरु सुकलवंस उद्दित भयौ ।
ऊग्यौ है जस-भान तिमिर जग कौ गयौ ॥
गयौ जगको तिमिर सजनी ताप तीनौं श्रम घटे ।
पञ्च रसकौ तत्व लै सिंगार प्रेम सुखनि जटे ॥
पियत निसदिन तत्सुखी सुख नवल तन सहचरि गयौ ।
जय जय श्रीगुरु सुकल वंस उद्दित भयौ ॥
जय जय श्रीगुरु सुकल भक्ति हित अवतरे ।
कर्म ज्ञान कौ छाँडि प्रेम पन्थ अनुसरे ॥
अनुसरे प्रेम सुपन्थ दृढ़, आगम निगम कथि जो कह्यौ ।
सुनि गिरा अगनित जीव उद्धरे, भक्ति रस भक्तनि लह्यौ ॥

लोभ रत अरु क्रोध,कामी चरन परसत सब तरे ।
जय जय श्रीगुरु सुकल भक्ति हित अवतरे ॥

जय जय श्रीगुरु सुकल सहचरी प्रिया की ।
सदा बसैं नव-कुञ्ज चाह लखि पिया की ॥
पिया उर की जानि वपु-दौ,
प्रान-एक सहज सदा ।
दोऊ रस-बिवस जब होत सजनी,
प्रेम-रस छवि छकि-मदा ॥
बौरात से बिवि बचन बोलैं,
सुधि नहीं कछु जिया की ।
जय जय श्रीगुरु सुकल सहचरी प्रिया की ॥

जय जय श्रीगुरु सुकल मोहि सर्वसु दयौ ।
उरझि प्राननि प्रान निवारत सुख हयौ ॥
हयौ सुख धसि चाह सजनी जुगल हिय दरसाइयो ।
अंग अंगनि चखु,रसना प्रीत सौं उर-लाइयौ ॥
दई'व्यासदासहि'पीकदानी वास दम्पिति हिय नयौ ।
जय जय श्रीगुरु सुकल मोहि सर्वसु दयौ ॥ १ ॥



मंगलाचरण

राग-गूजरी (हमीरताल)

वन्दे श्रीराधा-रमन सुदारं ।
श्रीगुरु सुकल सहचरी ध्याऊँ, दम्पति सुख रस सारं ॥
श्रीवृन्दावन घन वीथिनि वीथिनि, कुञ्जनि कुञ्जविहारं ।
जोरी प्रमुदित निरख मनोहर, रतिपति विमद सुमारं ॥
रसिक अनन्य सरन आधारन, दासी जन परिवारं ।
स्याम सरीर गौर तन चीर, पयोधर भूषन भारं ॥
परम्भन चुम्बन धन संग्रह, अधर सुधा आधारं ।
मन्दहाँस अवलोकनि अद्भुत, उपजत मदन विकारं ॥
सहज रूप गुननागर आगर, वैभव अकह अपारं ।
यह रस नित पीवत जीवत है,'व्यास'विसरि संसारं ॥२॥

राग-चोतारौ—

वन्दौं श्रीराधामोहन की प्रीति ।
एक प्रान द्वै देह हरद चूनैं लौं रची समीति ॥
एक एक विनु जिय न सारस जोरी कैसी रीति ॥
गौर स्याम तव घन दामिनि लौं, राजत विपिन वसीत ॥

विविमुख चन्द चकोर नयन रस, पीव कलप गये सब बीति।
चारि चरन सेये बिनु 'व्यासहिं' अनत नहीं परतीति ॥२॥

बन्दौं श्रीराधा-हरि कौ अनुराग।
तन मन एक अनेक रङ्ग भरे, मनहुँ रागिनी राग॥
अङ्ग-अंङ्ग लपटानैं मानहुँ, प्रेम रङ्ग कौ पाग।
रूप अनूप सकल गुन सीमा, कहत न बनैं सुहाग॥
विहरत कुञ्ज कुटीर धीर, सेवत वृन्दावन बाग।
निसिदिन छिन न चरन छाँड़त अब 'व्यासदास' कौ भाग॥४॥

श्रीजोरीजू कौ सहज सनेह वर्णन।

राग-कान्हरौ —

एक प्रान द्वै देही सहज सनेही गोरे साँवरे।
प्रीत रंग अंग-अंग रचे हौ ज्यौं
हरदी चूनौं मिलि अरु रचत आँवरे।
रूपरासि गुन अधिक आगरे,
राधा मोहन नाँवरे।
सुख सागर झेलत खेलत,
बरसानैं नन्दगांवरे॥

वृन्दावन घन कुञ्जनि में रति,
पुलिन मनोहर ठाँवरे ।
मन्द-हँसनि छबि कोटि चन्द रवि,
'व्यासहिं' लागत झाँवरे ।।५।।

राग-गौरी—

राधामोहन सहज सनेही ।
सहज रूप गुन सहज लाड़िले, एक प्रान द्वै देही ।
सहज माधुरी अंग-अंग प्रति, सहज रची वन गेही ।।
'व्यास'सहज जोरी सों मन मेरे,सहज प्रीति कर लेही।।६।।

मोहन मोहनी संग ।
सुखमें, रसमें आनन्द में, गुन गन में, सम्पति अंग ।।
सहज प्रीति रस रीति वपु धर्यो, रचे सहज रस रंग ।
सहज विलास रास में सहज माधुरी उरज उतंग ।।
सहज वसन भूषन में सहज़ विनोद मोद अनुषंग ।
सहज सुरागभोग में सहज सखी सेवत सुख अभंग ।।
सहज मृगज, मलयज, कुँकुम, कपूर सुगंध लवंग ।
'व्यास'सहज विधु सरद वसन्त,विपिन व्रज वारि विहंग।।७।।

सहज वृन्दावन सहज विहार ।
सहज स्याम स्यामा दोऊ कामी, उपजत सहज विकार ॥
सहज कुन्ज रस पुन्जनि वरषत, सहस सेज सुख सार ।
सहज सैंन नैंननि दै सहज हँसनि, भुवभंग सिंगार ॥
सहज अधर मधु चूँवत सहज सचिक्कन बगरे वार ।
सहज उमग भैंटत दुख मैंटत, पीन पयोधर भार ॥
सहज गंड खंडित दरसित जनु विकसे सुपक्व अनार ।
सहज सुरति विपरीत सहज कुन्जनि किये मार सुमार ॥
सहज 'व्यास' सहचरि झकझोरत, अञ्चल चञ्चल हार ।
सहज माधुरी सागर नागर, धन्य अनन्यनि के आधार ॥६॥

राग-भोतिला व गौरी—

मेरौ स्याम सनेही गाइयै ।
तातैं वृन्दावन रज पाइयै ॥
श्रीराधा जाकी भाँवती, करि कुञ्जनि कुञ्जनि केलि ।
तरुन तमालै अरुझी मानौं, लसत कनक की वेलि ॥
महा मोहनी मोहियौ रति रास विलासनि लाल ।
कुच कमलनि रस बस कियौ, लट बाँध्यौ मनहुँ मराल ॥
नैंन सैंन सर मनु विधयौ हौ, तनु वेध्यौ कल गान ।
अञ्जन फन्दनि कुँवर कुरंग बँध्यौ, चलि भौंह कमान ॥

नकवेसरि बंसी लग्यौ, छवि जल चित चञ्चल मीन।
गिधयौ अधर सुधा दै वदन चकोर कियौ आधीन॥
अंग अंग रसरँग में मगन होत भये हरि नाह।
'व्यास' स्वामिनी सुख नदी पिय संगम सिन्धु प्रवाह॥९॥

राग जिला—

मेरौ स्याम सनेही गाइयै।
वृन्दावन कौ चन्द्रमा राधा पति गति जो पाइयै॥
छैल छवीलो भाँवतौ नैंननिही माँझ दुराइयै।
निरधन कौ धनु सांमरौ, भागिनि पायौ न दिखाइयै॥
अँग अँग सब रँग भरयौ मुख देखत ताप बुझाइयै।
जासौं बिछुरन कबहूँ नहिं ता हरि सौं हित उपजाइयै॥
सब सुखदाता जग-पिता के ह्वै, अनत न जाइयै।
हरि सौं प्रीति प्रतीतिं कै अब, मन मनसा न चलाइयै॥
कौतिक अवधि विनोद की लीला रस-सिन्धु वढ़ाइयै।
स्याम सिंह के सरन रहत माया हिरनी विझुकाइयै॥
तब सुख सम्पति जानवी जब एक चित मन लाइये।
देखि विहरत जुगल किसोर,
'व्यास' तब दासिनि कौं सिर नाइयै॥१०॥

राग गौड़ मलार—

स्यामा स्याम रति आसार।
सुभग वृन्दाविपिन वाढ़ी सुख-नदी रस–धार॥
नारदादि सुकादि गावत, कुञ्ज नित्यविहार।
प्रेम वस व्रज वल्लवी तजि नेम कुल आचार॥
ब्रह्म सिंभु सुरेस सेसु न लेस जानत नार।
'व्यास' स्वामिनि सुजस जगि मगि रह्यौ जुगनि उदार॥११॥

राग सारङ्ग व धनाश्री—

सहज प्रीति राधासौं हरि करि जानीरी।
जसु रसु स्यामा स्याम जु राख्यौ, वृन्दावन रजधानी री॥
परिबसी राउ रसिक-नृपतिनि की, परिपाटी पहिचानीरी।
सब बिधि नाइक गुनगन लाइक, नवल राधिका मानीरी॥
मान करत हँसि चरन धरत, अपमानु करति व्रजरानीरी।
लोक चतुर्दस की प्रभुता तजि, सहज दीनता मानीरी॥
अँगनि पट भूषन पहिरावत सेवा करत रवानी री।
तोरत तृन जु दिखाइ आरसी, वारि पियत पिय पानीरी॥

विविध विनोद विहार अधार की,
घर-घर कहत कहानी री।
अद्भुत वैभव निरखि, सची अरु,
कमला रति विलखानी री।
चारि मुकति नवधा दसधा गति,
जहाँ रहत अरगानी री।
यह कौतिक देखति ललितादिक,
तृपति न सदा अघानी री॥
खग, मृग, गो, सरिता, सरवर,
दम्पति कौं ये सुखदानी री।
सन्तत सरद वसन्त विराजति,
लाजत सुनि अभिमानी री॥
ता महि माँहि कहत विथकित भईं,
वेद उपनिषद् वानी री।
यह लीला अब मन्द 'व्यास' पै,
कैसैं जात बखानी री॥ १२॥



प्रातः सय्याविहार रस

राग-धनाश्री—

सुनी न देखी ऐसी जोट ।
उपजी अबही कै पहिलैं ही यह रूप गुननि की पोट ॥
गौर स्याम सोभा मानौं कञ्चन मर्कत के गिरि कोट ।
भामिनि चलत न देखत चरननि तुंग कुचनि की ओट ॥
घटत न बढ़त एक रस दोऊ जोवन जोर छकोट ।
रति रन वीर धीर दोऊ सनमुख सहत असमसर चोट ॥
वृन्दारन्य अनन्य खेत के, समरस नित्य गभोट ।
'व्यास' उपासिक प्रभुहि न जानत,
नीरस कवि कुल खोट ॥ १३ ॥

राग-सारङ्ग व देवगन्धार—

सुनि राधे तेरे अँगनि पर सुन्दरता न बची ।
लोक चतुर्दस नीरस लागत, ते रस रासि सची ॥
पद-नख की छवि निरखि बिलखि रति कमला आइ लची ।
तो कारन सुत पति गृह सब तजि, गोपी रास नची ॥
किसलय दल कुस मनि, की सैया कौतिक अवधि रची ।
सहज माधुरी रोमनि वरषत, रति रन कीच मची ॥

तोसी नारि न पुरुष स्याम सौं, विधि बेकाज पची ।
'व्यास' सुमेरु कोटि की पटतरि, क्यौं पावै घुँघची ॥१४॥

राग-सारङ्ग—

बने अङ्ग-अङ्ग जनु रंग नग चोपे ।
केसरि, चोवा, हीरा, मर्कत लाल, काल चल ओपे ॥
गोर स्याम सोभा बादर में, उपमा सागर सोपे ।
पाँचि पिरोजा पदिक पदारथ पुञ्ज गुञ्ज सौं जोपे ॥
पोति जंगालि जोति नहिं मोतिनि स्वाँति बूँद पय पोषे ।
विविधि बरन घन दामिनि दारयौं कुसुमनि कौ सन्तोषे ॥
कञ्चन घट विद्रुमहि परी चिट, और सबै निरदोषे ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि बरनत,
कबिन न परत दिन धोषे ॥ १५ ॥

सुरतान्त रस

राग-सारङ्ग—

घूँघट पट न सम्हारत प्यारी ।
उर नख अङ्क ससि जनु तिलकुन,
सुन्दर सरस सिंगारी ।
मरगजी माल सिथिल कटि किंकिनि,
स्वेत सलिल तन सारी ॥

सुरत भवन मोहन बस कीनैं,
'व्यासदासि' बलिहारी ॥ १६ ॥

राग-सारङ्ग व नट--

सुनहुँ किसोर किसोरी चोरी प्रगटत भोर सिंगार।
छूटी लट पट लपटि परे छबि, पीत पिछौरी सार॥
अङ्ग सुरँग दुरँग हठीले, गांठि-गठीले हार।
दुगुन दसन मँडित गँड़नि पर, खँडित अधर उदार॥
कुच नख रेख निमेषनि नैंननि, सैंन सुवेस सुढार।
सुरत समर सुख सूचत मोहन, उपजत कोटि विकार॥
गौर स्याम सलिल सागर मिलि, विसरी विवि कुल धार।
'व्यास' स्वामिनी के रस बस, हरि कीनैं मार सुमार॥ १७॥

अति आवेस केस विगलित जनु,
दामिनि तर बरषत घन घोरी।
निरखत अद्भुत छबि उपजत जनु,
सुख सागर में बोरी॥
मोहन अँग अनँग कीच महँ,
नख सिख कुँवरि चचोरी।
रसिक सिरोमनि गुनसागर की,
सींव सुदृढ़ हरि तोरी॥

हित चित दासी करि परि हाँसी,
कर अञ्चल झकझोरी।
पुजवति आस 'व्यास' की जुग-जुग,
राज करो यह जोरी ॥१८॥

गावति आवति पिय सँग स्यामा।
केलि सँग तैं भोर चले उठि बिधु सम मनहु त्रिजामा॥
छूटी लट टूटी मुकुतावलि लर लटकति अभिरामा।
उरज करज अङ्कित मृगमद मनहुं माह मौरै हैं आमा॥
विलुलित कटि पर अरुझानैं पट, तिरनि रुति मनि दामा।
जनु संग्राम विषय सुख सूचत, बाजत काम दमामा॥
विहसति हँसति विखण्डित सैंननि वँक विलोकनि वामा।
'व्यास' स्वामिनि की उपमा कह, ललकौ काम ललामा॥१९

राग देवगन्धार--

आवत गावत प्रीतम दोऊ बने मरगजे वागैं।
सुरत कुञ्जतैं चले प्रात उठि, पिय पाछैं धन आगैं॥
छूटी लट टूटी वनमाला, अध घूँघट्ट चल पागैं।
फूले अधर पयोधर मँडित गण्ड विराजत दागैं॥
नख सिख विषखि कुसुम की सेना, रन छूटी जनु वागैं।
'व्यास' स्वामिनी कौ सुख सर्वसु, लूट्यो स्याम सभागैं॥०२॥

राग सारङ्ग—

झूलत कुञ्जनि कुञ्जकिसोर ।
सुरत रँग सुख सैंननि सूचत, नैंन रँगीले भोर ॥
सिथिल पलक महँ वँक विलोकनि, विहसनि चित वित चोर ।
फिरि फिरि उर लपटात समात न, फूले तन कुच वोर ॥
अधर मधुरमधु प्याइ जिवाये विवि वर वदन चकोर ।
मादक रस रसना न अघाति, लहँति मंडल चल छोर ॥
बीचि बीचि नाँचति मिलि गावत, कल सुर मन्दिर घोर ।
रीझि पुलकि चुम्बन करि कुलकित, झुलवति जोवन जोर ॥
हरिवंसी फूलत हरिदासी, निरखत सुरत हिण्डोर ।
व्यासदास चञ्चल अञ्चल करि, मोद विनोद न थोर ॥२१॥

राग नट तथा षट्—

आजु पिय के संग जागी भाँमिनी ।
चोरी प्रगट करत तेरे अँग, रति रँग राचे जाँमिनी ॥
भूषन लट अञ्चलु न सम्हारति, हसति लसति जनु दाँमिनि ।
पुलकित तनु श्रम जलकन शोभित, वेपथजुत गजगाँमिनी ॥
फूले अधर पयोधर लोचन, उर नख भुज अभिराँमिनी ।
गंड़नि पीक मषी न दुरावति,
'व्यास' लाज नहिं काँमिनी ॥२२॥

राग देव गन्धार—

कहा निसि जागे रसिक सुजान ।
सुरत रँग, अँग अँग रचौ है, दुरवत अपनै जान ॥
नैंन कपोल पीक रस मंण्डित खंडित अधरनि पान ।
विगलित केस कुसुम-कुल वरषत, उर लागे नख वान ॥
मनिमय माल हृदै आलंकृत, कुच जुग उरज वितान ।
मानहुँ उड़गन सहित गगन महँ, मिले उभै ससि भान ॥
नख-सिख प्रति, रतिरस वरषावति, विटकुल नृपति निदान ।
विथकित कोटि 'व्यास' कवि मति,
या छवि की उपमा आन ॥ २३ ॥

राग गौरी—

आजु पिय के सङ्ग जागी राति ।
दुरति न चोरी कुँवरि किसोरी, चीन्हैं परसति राति ॥
पुलकित कंपित गातनि संकति, वात कहत तुतराति ।
जावक, पीक, मषी रँग रञ्जित, सारी स्वेत चुचाति ॥
छूटी चिकुर चन्द्रिका उरजनि पर, लटकति लर पाँति ।
मानहुँ गिरवर कञ्चन ऊपर, मेघ घटा घुरवाति ॥

खंडित अधर पीक गण्डनि पर, लोचन अलसज भाँति ।
हँसति अकोर देत चित चोरति, अङ्ग मोरि ऐंड़ाति ॥
कहा कहा रति बरनौं वैभव, फूली अङ्ग न माति ।
वेगि देखाउ बहुरि वह कौतिक,
'व्यास' दासि अकुलाति ॥ २४ ॥

राग सारङ्ग—

देखि सखि आँखिन सुखदैंन दोऊ जन ।
बिथुरी-अलक पीक-पलक, खंडित-अधर,
मंडित गँड, सिथिल-वसन गौर साँवरे तन ॥
नव निकुञ्ज, कुसुम-पुञ्ज रचित सैंन मैंन,
केलि कलित दुहूं अङ्ग अङ्ग श्रम-जल झलकन ।
आवेस अरुन चकित नैंन चाहत बिबि,
कमलनैंन सैंननि कछु कहन व्यास दासी जन ॥२५॥

आज कछु तनकी छबि फबि आई ।
कहत न बनति देखि मुख सुख अति दुख पुनि कहत न जाई॥
निसिकी विपति बिसरि गई प्रातकी सम्पति उर न समाई ।
रँग दुरायैं दुरति न अङ्गनि, कहि दीनी चतुराई ॥

व्याकुलता इतकी जु लालचिनि, लाज सरीर सहाई।
विकल वेदना अधिक व्याधि की, मिटत न पीर पराई ॥
जाकी प्रकृति विकृत्ति रस राच्यौ, तासौं कछू न बसाई।
सुनत हिय में राखि 'व्यास' की,
स्वामिनि पिय पहँ आई ॥ २६ ॥

मननविहार रस

राग सारङ्ग व गौरी—

पिय प्यारेहि कहाँ छाँड़ि आई।
लैंन गई ही दैंन परम सुख, मुख दिखाइ दुखु लाई ॥
अङ्ग अनँगनि कीसी नगरी, नागर सुवस वसाई।
दोऊ सुरत परस्पर राचे, थाती लूटि लुटाई ॥
चँक निसंक ससंक नैंन छवि, स्याम अरुन सित झाई।
एक चौर पहँ चौर-मण्डली, कैसैं दुरति दुहाई ॥
देखत कुच नख रेखनि मेष लगव्रति हँसनि सुहाई।
विहरत व्यास स्वामिनी भोर, किसोर हियैं न समाई ॥२७॥

विराजत स्याम उनीदे नैंन।
अरुन अलस इतराति रँगीले, सूचत रति रस चैंन॥
निसि कौ अनुभव भोर न भूलत चितु वितु चोरत सैंन।
भुवविलास कल हाँस न विसरत, जुव सौं कहैं जु वैंन॥
अजहूं कर कुञ्चित रँग रञ्जित, सकुचत कुच न गहैंन।
उर कम्पित मुख चुँवन रस सुख जाचत वनित घरऐंन॥
अजहूं वाँहु उछाहु करति बलि, भैटत तरुनी गहैंन।
वलित कुटिल कटि ललित नेति रट, भामिनि, भारु सहैंन॥
कोक-कला अँग अँग नचावति और गुननि गति मैंन।
अद्भुत कथा 'व्यास' के प्रभु की,
मोपै कहत वनैंन॥ २८॥

निरखि मुखकौ सुख नैंन सिरात।
सैंननि कौ सुख कहत बनै नहिं, निमेष ओट मुसिकात॥
अङ्ग अङ्ग आलिंगन के रस, रोमनि पुलक चुचात।
कुच गहि चुँवन करत अधर मधु पीवत जीवत गात॥
'व्यास' वंस निधि सब निसि लूटी,
किसोर भोर पछतात॥ २९॥

राग-बिलावल व बिहागरो—

सैननि बिसरे नैंननि भोर ।
बैंन कहत कासौं पिय हियतैं, विहँसत कितव किसोर ॥
दुख मैटत भेंटत तुमकौं नहिं, चैंनन देत न थोर ।
काहि देत जोवन धन करि गहि लैं कुचकोर अकोर ॥
काके पाँइ गहत मेरे प्यारे, कासौं करत निहोर ।
कौनैं विकल किये नव नागर, तुम पनिहाँ तुम चोर ॥
निजु बिहार आरोपि अन्तःपुर कोपि मान-गढ़ तोर ।
'व्यास'स्वामिनी विहँसि मचाई,सुरत समुद्र हिलोर ॥३०॥

यातैं माई तेरे नयन बिसाल ।
यातै उनमद पिय पुतरी में, घरु कीनौं नन्दलल ॥
याहीतैं बिम्बाधर जलधर, बरषावति सब काल ।
याही तैं त्रिषित पपीहा पिय को, करत सदा प्रतिपाल ॥
याहीतैं कुच सकुचत नाँहीं, पीन कठोर रसाल ।
तातैं हरि मानिकु हरिलीनौं, कसि कञ्चुकी बद्ध जाल ॥
याहीतैं तुव चरन कमल की पिय पहरी उर माल ।
यात्तैं मान सरोवर बूड़त, उबरं कुँवर मराल ॥
बोलनि चितवनि हँसनि छबीली, गावत नाँचत चाल ।
'श्रीव्यासस्वामिनिह'चरनि सकै को,नीरस कु-कवि शृगाल ३१

रसोन्दार-रस

राग-गौरी—

नैंननि नैंन मिलत मुसक्यानी ।
मुख सुखरासि निरख उर उमगत,दुख करि लाज लजानी ॥
आरज पथ वेपथ करि भाज्यौ, संका सकुचि उरानी ।
धीरज सटकतहू नहिं मटक्यौ मानु गयौ अभिमानी ॥
आस गई उपहास त्रास सङ्ग, सुधि वुधि अङ्ग समानी ।
रह्यौ न अन्तरु डरु करि दूत सव धूति मुरझानी ॥
तनसौं तन मनसौं मन मिलियौ ज्यों पिय पय में पानी ।
रसिकनि की गति'व्यास'मन्द पहँ कैसैं जात बखानी॥३२॥

राग सारङ्ग—

वनकी कुञ्जनि कुञ्जनि केलि ।
विविधि वरन वीथिन महँ वीथी,विगसित नव द्रुम वेलि ॥
तिन महँ सहज सेज पर स्यामा स्याम विराजत खेलि ।
अङ्गनि कोटि अनँग अङ्ग छबि सुरत सिन्धु महँ झेलि ॥
मुख विधु वारिज पर लट लटकति, अँसनि पर भुज मेलि ।
मादक अधर सुधामधु पीवत, जीवत नवल नवेलि ॥
जोवन जोर किशोर जगे रस निसि भोरहि अवहेलि ।
'व्यास'स्वामिनीहिं सेवत मोहन,निज वैभव पग पेलि॥३३॥

स्नान-समय

राग-कम्मोद—

जुगल जन राजत जमुना तीर ।
नँन नँदन वृषभाननन्दिनी, कृतरुचि कुञ्ज-कुटीर ॥
कुसुम-सेज-सजि साजु सुरत कौ, सौंधौ भूषन चीर ।
कल सीकर मकरन्द कमल के, परसत मलय समीर ॥
कुच-गहि चुँवन करत परस्पर, परिरम्भन रसवीर ।
सुख मुसक्यात गात पुलकित सुख, मुखरितु मनिमञ्जीर ॥
खर नख सर उर उरजनि लागत, नभ गत सही सुमीर ।
वैन कहत रस ऐंन सैंनदै, नैंननि करै अधीर ॥
विगलित केस सुदेस रौम वरषत सौंमनि श्रमनीर ।
विरह जनित दुख वाकै वैरी, मारि करे सब कीर ॥
विविध विहारनि ललितादिक की, दूरि करत सब पीर ।
'व्यास' किसोर भोर नहि विछुरत, जोवन जोर सरीर ॥३४॥

राग-षट—

जमुनाजल खेलत जुगलकिसोर ।
सुरत विवस सब राति जगे दोऊ, कोऊ न विछुरत भोर ॥
पानि कमलमुख जलभरि तकि तकि, छिरकत चोट हिलोर ।
नैंननि नीर लगत नहि सकुचत, अरुझत जोवन जोर ॥

बुड़की लै उछरति एकहि-सङ्ग, अँग सहत झकझोर।
तरत न डरत प्रवाह पग पेलत, खेलत मिलि दुरि चोर ॥
करतल ताल बजावत नाँचत, गावत मन्दिर घोर।
'व्यासदास' की स्वामिनी पियहि, मिली दै उरज अकोर ॥ ३५

राग-धनाश्री—

मान करि मानसरोवर खेलति।
ग्रीषम ऋतु रजनी सजनी सङ्ग, विरहताप पग पेलति ॥
बुड़की लै जलही जल आये, हरि सहचरि कौ वपु-धरि।
थाँह लेत ही जहाँ राधिका, धाइ धरी आँकौं भरि ॥
परिरम्भन चुँवन पहिचान्यौं, नागरिजान्यौं नागर।
इहिंविधि जल थल विहरत छलबल,
'व्यास' प्रभु सुखसागर ॥ ३६ ॥

राग सारङ्ग—

रति रस सुभग सुखद जमुनातट।
नव नव प्रेम प्रगट वृन्दावन,
विहरत कुँवरि नागरि नागर नट ॥
सीतल तरल तरङ्ग अम्बू-कन,
बरषत पद्म पराग पवन वर।
कुसुमित अमित कुसुम-कुल परिमल,
फूलत जुगलकिसोर परस्पर ॥

विविधि विलास रास परमावधि,
गावत मिलि दोऊ रीझति अति ।
मधुप, मराल, मोर, खञ्जन, पिक,
विथकित अद्भुत कोटि मदन रति ॥
कुँकुम कुसुम सयन मंजुल मृदु,
मधु पूरित कञ्चनमय भाजन ।
रजनीमुख सनमुख दल साजत,
सुभटनि जूझत लाजत न ॥
अति आतुर कञ्चुकि बन्ध खोलत,
बोलत चाटु वचन रचनाँ रचि ।
नेति नेति कल-बोल श्रवन सुनि,
चरनकमल परसत मोहन लचि ॥
इहिं विधि करत विहार मगन दोऊ,
पोषत रति सुख सागर ।
'व्यास' ललित लीला ललितादिक,
देखत रसिक उजागर ॥ ३७ ॥

श्रीअङ्ग--वर्णन

राग-बिलावल व विहागरौ--

सुभग राधामोहन के गात।
विहरत अँग-अँग विवि तन मन, सहज मधुरता तात॥
निरुपम अति उपजति छवि,कविकुल उपमा कौं अकुलात।
वर वँधूक अति मूक होत सब, मनु मनसाहि लजात॥
कोटि कोटि जौ कीजै बुधि बल सरवा सिन्धु न मात।
कैसैं 'व्यास' रङ्क की वसनी, लंक सुमेरु समात॥३८॥

राग सारङ्ग--

देखत नैंन-सिरात गात सब नागरता की खानि।
कोटि चन्द्रमनि मन्द करत मोहन मुख मृदुमुसकानि॥
खञ्जन मीन मृगज कञ्जनि, मनहरित चितै नैंनानि।
कोटि काम कोदंड्नि खंडित, भ्रू-भंगनि कीनी बानि॥
केस निचय घन रुचियसकरि, कुन्तल अलि वलि जानि।
उरज करज गजकुम्भ हेमघट, श्रीफल छवि की हानि॥
दाख सिता मधु सुधा मुधातैं, अधरामृतु पहिचानि।
बाहु विलोकत उपजी सकुच, मृनाल भुजङ्ग लतानि॥
दसननि देख दुरी दामिनि, दारयौं उर अति अकुलानि।
'व्यास'स्वामिनि स्वामि भामिनी सब अङ्गनि सुखदानि॥३६

राग-षट्—

कौंन कौंन अङ्गनि के रँग रूप वरनौं।
तिनके रस विवस स्याम रहत सदा सरनौं॥
कामातुर कुँवर धाइ धरत सीस गौर चरनौं।
अधर सुधा-पान मिटत विरहताप जरनौं॥
मधुर वचन रचना सुनि अति जुड़ात करनौं।
नैंननि की ओट होत आनिबनत मरनौं॥
'व्यासदासि' आसअधिक अनत नहीं सरनौं॥ ४० ॥

उरज वर्णन

राग सारङ्ग--

उरज जुगल पर सहज स्याम छबि उपमा कह कवि पचिहारे।
रूप वरन गुन जस रस राचे, सुख की रासि दुखारे॥
कनक--कमल मकरन्द पीवत अलि, चलि नहिं सकत सुखारे।
मानौं नूतमञ्जरिनि बैठे, कोकिल करत कुरारे॥
नखसिख सुन्दर कनकलता के फल जन रसमय भारे।
मानौं हितकरि वदन दिठौना कज्जल विन्दु अन्यारे॥
विनु भूषन भूषित पट सुन्दरि, सहज सिङ्गार विसारे।
व्यासस्वामिनी वैरी मेरी प्राननि के रखवारे॥ ४१ ॥

राग-सारङ्ग व नट—

सबै अङ्ग कोमल उरज कठोर।
कहि काहे ते आपुन गोरे, सुन्दर स्यामल चोर ॥
ते बाँधे रिस कैं कचुकि महँ, ये मेरे चितचोर।
तोरि तनी चमकत जोबन बल, माँगत नैंन अकोर ॥
मोहू पीठि दई इन लोभिनि, कीनौं कपट न थोर।
ताकौ फल पावत हैं निसदिनु दसनख की झकझोर ॥
निर्दय हृदय भेदतजु वैरि करि, डरत न अपनैं जोर।
व्यासस्वामिनी इनसे हैं ऐई, प्रान जीवनि धन मोर ॥४२॥

राग-कमोद—

सब अँगनि के हैं कुच नाइक।
जिनि पर पहिलैं दृष्टि परतही, कथा होत मन भाइक ॥
मन कौ दुख न हरत सुख देखत ताप नसावत काइक।
पीर व्याधि मैटत देखत ही, कर परसत सुखदाइक ॥
दोऊ सूरवीर रति रन में, टरत न सनमुख पाइक।
मेरो उरबेधत तो कारन, सहत नखर सर साइक ॥
घूँघटपट अञ्चल चोलीबँध ये सब मेरे घाइक।
व्यास स्वामिनी प्रेम नेमतैं, हौं कछूक तो लाइक ॥४३॥

राग धनाश्री—

अधिकहूं तैं अधिक उरज की चोट।
अनी अन्यारे बान धनुषबिनु, तकि बेधत तन-चोट ॥
मोहन मृग मोह्यौ चितुनादहि, लगत न जानत चोट।
'व्यास' बरबस हाव कियौ हाठि, चञ्चल अञ्चल ओट ॥४४॥



बैंनीगुहन-वर्णन

राग-सारङ्ग—

पाछैं बैठे मोहन मृगनैंनी की बैनी गुहत,
सोभा न कही परै देखत नैंनसिरात।
नखछबि रबि-जानि पानि-कमल फूले,
निकसि चली अलिसैंनी अधरात ॥
मानौं बारिज बिधुसौं रिपु-नति-तजि,
सदल सुधा पीवत न अघात।
स्याम--भुजङ्गिनि के डर डोरी बांधत,
'व्यास'की स्वामिनीकौ सुन्दर अकुलात ॥४५॥

राग-नट—

बैंनी गुही मृगनैंनी की पिय।

चम्पकली सोहति अलकनि बिच,
मोहति मन नैंननि सुख लागतु,
निरखि आरसी उमग भई जिय॥
नखसिख अङ्गनाइ रँग-रस-रचि,
मिलवत हिय सौं हिय।
गुनगन निपुन व्यासकी स्वामिनि,
रति महँ गति उपजावति,
तत् थेई तताथिय॥ ४६॥

राग-कमोद—

पाटी सिलसिली सिर लसति।
सहज सिंगार सुकेसी केसनि, स्वरनजूथिका लसति॥
रँगभरे नग मंग विराजत, लासत मुक्ता, मन न खसति।
मृगनैंनी की वैंनी मानहुँ स्याम भुवँगिनि विधु मधुहि ग्रसति॥
अनुपम छबि देखैं दबि रहै सुखमा,
सकुचि रमापति पछ्याइ हँसति।
व्यासस्वामिनी पिय के हिय तैं,
निमिष न इत उत धसति॥ ४७॥

षोड़स शृङ्गार-वर्णन

राग-सारङ्ग -

आजु बनी वृषभानुदुलारी ।
अँगराग भूषन पट रचि रुचि, मोहन आपुन हाथ सिंगारी ॥
चिकुरनि चम्पकली गुहि वैंनी डोरी रोरी माँग सवारी ।
मृगज विन्दुजुत तिलक इन्दु छवि,
झलकति, अलक मनहु अलिनारी ॥
श्रवननि खुटिला खुभी झुलझुली,
नैंननि अञ्जन रेख अन्यारी ।
नासापुट लटकनि नकबेसरि,
भौंह तरंग भुजंगिनि कारी ।
मन्दहास बसि बलि दामिनि,
जलधर, अधर कपोल सुढ़ारी ।
कण्ठजोति उर-हार चारु कुच,
गरु नितम्ब जघननि अति भारी ।
गजमोतिन के गजरा, हाथनि,
चारु चुरी, पहुँचिन पर वारी ।
नील कंचुकी, लाल तरौटा,
सनमुख की तन झूमक सारी ।

नखसिख कुसुम विसिख रस बरषत,
रौमनि कोटि सोम उजियारी ।
व्यासस्वामिनी पर हँसि तृन तोरन,
रसिक निहोरत जय जय प्यारी ॥४८॥

राग-कान्हरो--

आजु बनी वृषभानुदुलारी ।
नव निकुञ्ज विहरत प्रीतम सँग,
मन्दपवन चाँदिनी उजियारी ॥
भूषन भूषित अंग सुपेसल,
नीलवसन तन झूमक सारी ।
चिकुर चन्द्रकनि चंपकली गुहि,
सिर सीमंत सुकन्त सचारी ॥
मनिताटंक विलोल कपोलनि,
नासामनि लटकनि लटकारी ।
झलकति अलक तिलक भौंहनि छबि,
नैंननि अञ्जन-रेख अन्यारी ॥
स्याम दसन सित चौका चमकत,
अधर बिम्ब प्रतिबिम्ब बिहारी ।

कुच गिरि-पर घनश्याम-कंचुकी,
क्रस कटि, जघनि नितम्बनि भारी ॥
तरुवनि कुमकुम नखनि महावर,
पद मृगमद चूरा चौधारी ।
नखसिख सुन्दर ताकी सीवाँ,
व्यासस्वामिनी जय पियप्यारी ॥४६॥

राग-सारङ्ग—

सुभग सुहागिल नवल दुलारी ।
नखसिख अङ्ग रङ्गसागर छवि नागर सुहत्थ सवारी ॥
गजमोती सिर सुन्दर बैंनी, जनु अहिवधू-मन्यारी ।
चिकुरनि चम्पकलिन की रचना, सिन्दुर सरस पनारी ॥
अलक तिलक झलकत गण्डनि पर, ताटंकन लटकारी ।
भौंह-धनुष सर नैन सैन हन, अञ्जन रेख अन्यारी ॥
अधर सिन्धु क्षर राधा मोहन विहँसत दसननि उजियारी ।
सोभित स्यामलबिन्दु चिबुक सुक नासा ललित रवारी ॥
वाहु मृनाल नाहु के अंसनि, पीन-पयोधर भारी ।
नील कञ्चुकी, लाल तरोंटा, लटकत झूम्मक सारी ॥
गुरु नितम्ब किंकिंनरव क्रसकटि जघननि वीच विहारी ।
मुखरित मनिमञ्जीर असीर करति रति गति की चारी ॥

निभृत निकुञ्ज भवन महँ सुखपुञ्जनि वरषत पियप्यारी।
विविध विनोद मोद दिन देखति,
'व्यासदासि' बलिहारी ॥ ५० ॥

राग कम्मोद—

सोहत सिर सारकी उढ़ैंनी।
नारी कुञ्जर कौ लहँगा, कटि किंकिन पर रुरकत बैंनी ॥
तनी तरतनी कञ्चुकि की कसि लेत उसास उरज उर।
उमगे रहसि स्यामहि मिलि मृगसावक नैंनी ॥
रतिरस सूर 'व्यास' की स्वामिनि दामिनिसीं चञ्चल।
घनमहँ जनु वरषावति सरन हसति चैंनी ॥ ५१ ॥

मुखारविन्द-वर्णन

राग-विलाविल व विहागरो—

गौर मुख चन्द्रमाँ की भाँति।
सदा उदित वृन्दावन प्रमुदित, कुमुदिन वल्लभ जाति ॥
नील निचोल गगन में सोभित, हार तारिका पाँति।
झलकति अलक, दसनि-दुति दमकति,
मनहुँ किरनि कुल काँति ॥

गंड कोप पर श्रम-जल ओस जु,
अधरनि सुधा चुचाति।
मोहन की रसना सु चकोरी,
पीवति रसु न अघाति॥
हाँस कलाकुल संरद सुहाई,
तन छवि चाँदनि राति।
नैंन कुरँगिनि, कटि सिंघनि डर,
उनि पर अति अनखाति॥
नाह निकट, नहिं राहु विरहु डरु,
पट सोभा न समाति।
देखत पाप न रहति,
'व्यासदास' तन ताप बुझाति ॥५२॥

राग-सारङ्ग—

राधावदन चन्द्रमा की जुन्हईया सीतल सुखदाई।
नँदकिसोर चकोर पियतु हूं, अरु पूजी न अघाई॥
हरषित स्याम तनूरुह भूरुह, बरषत श्रम-जल ओस सुहाई।
अधर सुधा मकरन्द माधुरी, वृन्दाविपिन पुरन्दर पाई॥
हाँस-कला फवि, पूरन मंडल, सन्तत राकातिथि जु बढ़ाई।
भूषन निकर किरन नग परसत, विहरत रति तनताप बुझाई॥

महाराज वृषभान घरनि वपु-प्राचीदिसि जु जननि जग गाई।
वल्लभकुल सागर अति प्रमुदित,
निरखत 'व्यासदास' बलिजाई ॥५३॥

राग-नट—

प्यारी तेरे बदन-कमल-रस अटक्यौ लालन अलि।
तनसौं तन मनसौं मन अरुभ्यो न सकतु चलि ॥
तुव वृन्दावन कनक वेलिसी रही उरजनि फलि।
यह सुख निरखत 'व्यासदास' जाइ बलि ॥ ५४ ॥

राग-नट व खट—

देखि सखी राधामुख चारु।
मनहुँ छिड़ाइ लयौ इहि सब उपमनिकौ रूप सिंगारु ॥
दारयौ, दामिनि, कुन्द मन्द भये, दसननि दै सतु सारु।
विद्रुम वर बंधूक विंब मिलि, अधरन दै रस भारु ॥
सुक, किंसुक, तिलकुसुम तज्यौ मृदु निरख नासिका ढारु।
सुभग कपोलनि वोल दियो तनु, अधिक मधुप उदार ॥
खञ्जरीट, मृग, मीन, कमल नैंननि कीनौं सब आरु।
अञ्जन भौंहनि धनुष कियौ रद, चल सैननि सिरदारु ॥
चन्दन बिन्दु ललाट इन्दु सम, अलकनि किरनि प्रसारु।
नकवेसरि तरौना तरका श्रवन कुरङ्ग उफारु ॥

स्यामल रसमय चिकुरनिके डर, मेघन परयौ चिडारु।
वैंनी लट पटतरहि डरानौं, भुजंगनि गह्यौ पतारु॥
स्याम सहित स्यामाहि विलोकत भूल्यौ रतिहि भरतारु।
कमला कहति सुनहुँ पति, दम्पति पर वारौं संसारु॥
गौरस्याम सोभा सागर कौ, नाँहिन वारापारु।
व्यासस्वामिनि की छवि आगें, सकल सरूप उगारु॥५५॥

नेत्र-वर्णन

राग-बिलावल व विहागरौ—

राधे तेरे नैंननि काहू की दीठि लगीसी।
लगत न पलक जम्हाँति मनौं खिजति सब राति जगीसी॥
झलमलाति ऐंड़ाति दृगनसौं डारत लाज भगीसी।
लटकति लट मनौं हाथ न देत, मोहन ठगु आजु ठगीसी॥
कज्जल बिन्दु दिठौंना से कछू, पीक पराग पगीसी।
व्यास वचन सुनि विहसति अति आनन्द सिन्धु उमगीसी॥५६

राग-सारङ्ग—

नैंन कर सायल से विडरे।
मोहन रूप अनूप हरे तृन चाखत गर्व भरे॥

मनिताटङ्क जुगल फन्दा लट फाँसी देखि डरे।
भौंह कमाँन वान बिनु जानैं आतुर जियहि हरे ॥
सरनु तक्यौ कच विपिन सघन में, मदन वधिक निदरे।
व्यास त्रास कर भाजत वागुरि, घूंघट माँझ परे ॥ ५७ ॥

अञ्जन पनिच धनुष सम भौंहैं !
वँक निसँक अनी अनियारे, लागत नैंन सर सोहैं ॥
मुख सुखरासि नागकी फाँसि वँध्यौ मोहन मृग मौंहैं।
स्यामहि डर उपज्यौ देखत जनु कामि सिंघ विछोहैं ॥
तजैं पीतपट नागर नट जानत मानहुँ वलदौहैं।
'व्यासस्वामिनी' त्रास हरि हँसि कुच गिरि पर आरौ हैं ॥ ५८ ॥

निरुपम राधा नैंन तुम्हारे।
वंक विसाल स्याम सित लोहित, तरलित तूँग अन्यारे ॥
अञ्जन छवि खञ्जन मदगंजन, मीन पानि वुड़ि हारे।
निसि ससि डरत पङ्कजकुल सकुचत, वधिकन मृगज त्रिडारे ॥
पीक पलक भ्रुव अलक कुटिल, विकट निकट घुंघरारे !
डरत न हरत परायौ सर्वसु, 'व्यास' प्रान धन वारे ॥ ५९ ॥

राग-कमोद व कान्हरौ—

मन मोह्यौरी मेरौ नैंननि ।
चितवति ही चित-वितु इनि चोरयौ,
फोरयौ तनु घनसर सैंननि ॥
यह छवि कबहुँ न हुइ है कवि,
वपुरा कहि सकत बनैंननि ।
यह गति खंजन, मीन कमल अलि,
सुनी न देखी मिटैंननि ॥
याहीतैं तेरे खरे पियारे,
जातें मोहन वसतु सु ऐंननि ।
कच कुच चिबुक भौंह में तेरे,
श्रीव्यासस्वामिनी चैंननि ॥ ६० ॥

राग-भौंतिला—

नैंन खग उड़िवेकौ अकुलात ।
उरजनि डर विछुरे दुख मानत, पलक पिञ्जरा न समात ॥
घूँघट विटप छाँह बिनु विहरत, रविकर-कुलहि डरात ।
रूप अनूप चुनौं चुनि निकट अधर सर देखि सिरात ॥
धीर न धरत पीर कहि सकतन, काम बधिक की घात ।
व्यासस्वामिनी सुनि करुना विहँसि पिय उर लपटात ॥६१॥

राग–धनाश्री—

नैंन बनैं खञ्जन से खेलत।
चपल पलक तारे अतिकारे,
वँक निसँक ठगौरी मेलत॥
भृङ्ग कुरंग मीन कमलनि की,
भाँति काँति छवि कवि अवहेलत।
अञ्जनरेख विसिखि मद गञ्जन,
सैंन चलनि मैंननि पग पेलत॥
घूँघट पट मह चितै कुँवरकौ,
चितु चोरति रति सिन्धुहि झेलत।
'व्यासस्वामिनी' तेरौ प्यारौ,
बड़भागी सुखरासि सकेलत॥६२॥

राग–गौरी व षट—

नैंननिहीं की उपमाँकौ को हैरी।
सैंननिहीं मैंननि उपजावति, भौंहनि मन मोहैरी॥
वारिज अङ्ग विहङ्ग, मीन, मृग, विनती सुनि को हैरी।
अञ्जन पर खञ्जन मधुकर, वलिजात गात तो हैरी॥
जिनमहँ वसतु लसतु अति मोहन, रति-सुख-रस दोहैरी।
व्यासस्वामिनी सिखयौ मोहन वसीकरन सोहैरी॥६३॥

राग सारङ्ग—

नैंन छबीले कतहि दुरावति ।
घूँघट पट पिञ्जरा महँ मानहुँ, खञ्जन जोट चुरावति ।।
लेत उसास कुचन पर चोली के बंद कतहि दुरावति ।
'व्यासस्वामिनी' विहसि विरह बन्धनतैं पियहि छुड़ावति।।६४

नटवा नैंन सुधङ्ग दिखावत ।
चञ्चल पलक सबद उघटत ग्रं ग्रं तत् थेई थेई गावत ।।
तारे तरल तिरप गति मिलवत गोलक सुलप दिखावत ।
उरप भेद भ्रू भङ्ग सङ्ग मिलि रतिपति कुलनि लजावत ।।
अभिनय विपुन सैंन सर ऐंननि, निसि वारिस वरषावत ।
गुनगन रूप अनूप 'व्यासप्रभु', निरखि परम सुख पावत।।६५

राग-भूपाली—

चितै मन मोहत पियकौ नैंन ।
सर्वसु हरत करत रों रों सुख, चल अलकनि विच सैंन ।।
भ्रुवविलास कल हाँस मनोहर, प्रगट नचावत मैंन ।
'व्यासस्वामिनी' की अद्भुत छबि, कवि पै कहत बनैंन ।।६६।।

नवलता-वर्णन

राग-धनाश्री—

दिनहीं दिन होत कंचुकी गाढ़ी ।
बैठत पौढ़त चलत नई छबि, संभ्रम पियहि देखिकै ठाढ़ी ॥
पोषी रस प्यौसार माइकैं, खाति दूध की साढ़ी ।
बोलति चितवति हँसति धोखें जाति,
राति रूठि जब करति उकाढ़ी ।
व्यासस्वामिनी के गुन गावत,
रसिक अनंन्य सुढाढ़ी ॥ ६७ ॥

राग सारङ्ग—

छिनहीं छिन जोबन सलिता बाढ़ी ।
स्याम सजल-घन रतिरस वरषत, करार गिरावत गाढ़ी ॥
सोभित भँवर फैन कुल पङ्कज, पोषत पै दधि साढी ।
कुच-कठोर चकवनि पर कँचुकी चीन तरङ्गिनि चाढी ॥
कञ्ज मृणाल, व्याल, गज खञ्जन केलि त्रास गहि काढी ।
मीन मकर बंसी में बींधे, मृगमाला ढिंग ठाढीं ॥
पथिक न वार पार पावत जस गावत दादुर ढाढी ।
व्यासदास खग उपवन सेवत, नेह सनेह न आढी ॥६८॥

नवरङ्ग नवरस नव अनुराग जसु नव,
गुन नव रूप नव जोबन जोर।
नव वृन्दावन नव तरुवर घन,
नवनिकुञ्ज क्रीड़त नवलकिसोर ॥
नव घन, नव दामिनि नवबूँदें नवरङ्ग,
रागनि सुनि नटित नवल मोर।
नवल चूँनरी, नवल पीटपत, तन नवल,
मुकुट नव सिरपाटी फूल जोर ॥
नव नव चूँवन, नव परिरम्भन,
नव कच मीडत नव कुच कोर।
नवल सुरत भाव हावनि प्रगटत,
देखत व्यासहि नव प्रीति न थोर ॥६९॥

राग-गौड मलार—

नव निकुञ्ज सुख पुञ्ज नगरकौ नागर साँचौ भूप।
मृगज कर्पूर कुमकुमा कुंकुम की अगर दिसि धूप ॥
षडंग सुधंग सुदेसी रागिनि राग अनूप।
जीवतु, निरखि लाड़िलीराधारानी कौ गुन रूप ॥
नव नव हाव भाव अँग अँग अगाध सुरत रसरूप।
व्यासस्वामिनी सौं हरि हार्यौ सर्वसु रति रन जूर ॥७०॥

राग-कल्याण—

चन्द्र बिम्ब पर वारिज फूले ।
तापर फनि के सिर पर मनिगन,
तर मधुकर मधुमद मिलि झूले ॥
तहाँ मीन, कच्छप, सुक, खेलत,
वंसीहि देखि न भये त्रिकूले ।
विद्रुम दारयौं में पिक बोलत,
केसरि नख पद नारि गरूले ॥
सर में चक्रवाक वक व्यालिनि,
विहरत वैर परस्पर भूले ।
रम्भा सिंघ वींच मनमथ घरु,
तापर गान धुनि सुनि सुख मूले ॥
सब ही पर घनु बरषत, हरषत,
सर सागर भये जमुना कूले ।
पूजी आस 'व्यास' चातक की,
स्थावर जंगम भये विसूले ॥७१॥



स्तुति-रस

राग-सारङ्ग—

नव जोबन छवि फबति किसोरिहि देखत नैंन सिरात।
वलि बलि सुखद मुखारबिन्द की चन्द वृन्द दुरि जात॥
गौर ललाट पटल पर सोभित, कुंचित कच अरझात।
मानहुँ कनक-कञ्जमकरन्दहि, पीवति अलि न अघात॥
दुखमोचन लोचन रतनारे, फूले जनु जलजात।
चञ्चल पलक निकट श्रवननि के, पिसुन कहत जनु बात॥
नकवेसरि बंसी के सम्भ्रम, भौंह मीन अकुलात।
मनिताटङ्क कमठ घूँघट डर, जाल बिधे पछितात॥
स्यामकंचुकी माँझ सजि फूले, कुच-कलस न मात।
मानहु मद गयन्दकुम्भनि पर, नीलवसन फहरात॥
नखसिख सहज सुन्दरिहि विलसत सुकृती स्यामल गात।
यह सुख देखत 'व्यास' और सुख उड़त पुराने पात॥७२॥

राधिका सम नागरी नवीन को प्रवीन सखी,
रूप गुन सुहाग भाग आगरी न नारि।
वरुन नागलोक भूमि देवलोक की कुमारि,
प्यारी जू के रोम ऊपर डारौं सब बारि॥

आनन्दकन्द नन्दनन्दन जाके रसरङ्ग रच्यौ,
अङ्ग वर सुघङ्ग नाँचति मानतु है अति हारी।
ताके वल गर्वभरे रसिक 'व्यास' से न डरे,
लोक वेद कर्म धर्म छाँडि मुकुति चारि ॥ ७३ ॥

राग-देवगन्धार—

रूप गुन ऊषकौ रस राधिका पायौ,
सुजस और त्रियनि कौ छोई आग।
अति करुनाकरि पिय हित कारन कुच-
घट-भरि राख्यौ प्रेमहू कौ पाग ॥
छिन छिन भोग करत काम रोग नासै,
याही तैं न कह्यौ परै मोहनजूकौ भाग।
रोम-रोम प्रति 'व्यासहिं' कोटिक रसना,
होति तौ न वरन्यौ परै प्यारीकौ सुहाग॥७४॥

राग-कमोद—

गौर स्याम सुन्दर मुख देखत मेरे नैन ठगे।
मानहुँ चन्दकिरन मधु पीवत रति चकोर जगे ॥
सरद-कमल मकरन्द स्वाद रस जनु अलिराज खगे।
निरखत हाँस विलास मधुरता लालच पल न लगे ॥

चञ्चल चाटु दृगञ्चल चितवत प्रेम पराग पगे।
भृकुटि कुटिल कच तरल तिलक चितवत अँसुवा उमगे॥
नासाभरनि हँसन दामिनि छबि दसन फूल सुभगे।
नखसिख अङ्ग निहारत आरज पथतैं 'व्यास' डगे॥७५॥

राग-नट—

हसति ज्यौं ज्यौं हीरी त्यौं त्यौं दसन
लसत मनहुँ सरदससि-कोटि उज्यारी।
बरषत रस बिम्बाधर जलधर,
पीवत चातिक कुञ्ज-बिहारी॥
नैंननि सैंननि दै चितु चोरत,
लै भ्रुभङ्ग अनङ्ग नचावति प्यारी।
गावति मोहन मृगहि रिझावति छातीसौं
लगावति निरखि 'व्यास' जुग जुवती वारी॥७६॥

राग-कल्याण—

गौरअँग रँगभरी, दुसह बिरहसिन्धु तरी,
सुख गिरवर सर सुन्दर स्याम बन्दिनी।
प्रानरमन बदन कमल नयत कुमुद मुदित करन,
हास रस बिलास सरद सूर चान्दिनी॥

मोहन मन चपल मीन खञ्जरीट सरन,
रोमावलि नीलछबि कालिन्दनन्दिनी ।
नव-नव निजवृन्दावन सुरत पुञ्ज कुञ्ज रवन,
प्रानवल्लभा की रेनु दुखनिकन्दिनी ॥
नागर वर कुंवरलाल मधुप जीव जीविका,
पीनुतुङ्ग उरज जलज सुदृढ़ फन्दिनी ।
कृष्न-राधिका प्रताप सुनत दूरि होत ताप,
नेति नेति वदति'व्यास'निगम छन्दिनी॥७७॥

राग-गौंड मलार—

बनै न कहत राधाकौ रूप ।

विहसि विलोकनि विमोह्यौ मोहनु, वृन्दावन कौ भूप ॥
अंगनि कोटि अनङ्ग सोमकुल, एक अँग कौ कूप ।
नख सिख भोग भोगवतु नागर, अधर सुधा रस तूप ॥
लेत उसास वासु सुख महकत मनहुँ अगर कौ धूप ।
मानहुँ चम्पेकौ वन फूल्यौ गोरौ गात अनूप ॥
वाम पयोधर राजत मानहुँ, सुरतयज्ञ कौ जूप ।
'व्यासस्वामिनी' सौं विहरतही, मोहन लगत सरूप॥७८॥

राग-सारङ्ग—

बनी राधामोहन की जोरी।
नील पीतपट भूषनभूषित, गौर स्याम तन गोरी ॥
दुख मोचन जल लोचन चारयौं चितै करत चितचोरी।
वंक निसंक चपल भ्रुभङ्ग अनँग नचावत होरी ॥
नाँचत अँग सुधँग किसोरहि, सिखवत कुंवरिकिसोरी।
गावत पियहि रिझावति नागरि, सुखसागर में बोरी ॥
नवनिकुञ्ज कमनीय कुसुम सयनीय सुरँगरचि भोरी।
विहरत'व्यासस्वामिनी'की उपमा कहुँ भामिनी कोरी॥७९॥

राधिका मोहन की प्यारी।
नखसिख रूप अनूप गुन सीमा, नागरी श्रीवृषभानुदुलारी ॥
वृन्दाविपिन निकुञ्जभवन तन कोटि चन्द उजियारी।
नव-नव प्रीति प्रतीति रीति रस वस किये कुञ्जविहारी ॥
सुभग सुहाग प्रेमरँग राची, अङ्ग-अङ्ग स्याम सिंगारी।
'व्यास' स्वामिनी के पदनख पर,
बलि-वलि जात रसिक नर नारी ॥ ८० ॥

चरण-वर्णन

राग-षट्—

सुभग गोरी के गोरे पाँइ।
स्याम कामवस जिनहिं हाथगहि, राखत कण्ठ लगाइ॥
कोटि चन्द नखमनि पर वारौं, गति पर हंसके राइ।
नूपरध्वनि पर मुरली वारौं, जावक पर ब्रजराइ॥
नाँचत रास रँग महँ सरस, सुधँग दिखावत माइ।
जमुनाजल के दूर करत मल, चरननि पंक छुटाइ॥
सघन कुञ्ज-वीथिन में पौढत कुसुमनि की सेज वनाइ।
कुँकुम रज कर्पूर धूरि मुरिकी, छवि बरनी न जाइ॥
धन्य वृषभान धन्य वरषानौं, धन्य राधा की माइ।
तहाँ प्रगटि नटनागरि खेलत, रति सौं रति पछिताइ॥
जाके परस सरस वृन्दावन, वरषत सुखनि अघाइ।
ताके सरन रहत का को डरु, कहत 'व्यास' समुझाइ॥८१॥

राग-गौरी—

सुभग सुहाग कौ चीनौं प्यारी तेरे चरननि सोहे।
जिनकी रज राजत वृन्दावन, देखत ही मोहन मन मोहै।
गौर-अङ्ग-छबि स्यामहि फब गई, सकल-लोक चूड़ामनि जो है॥
'व्यासस्वामिनी' की उपमाकौं, भवन चतुर्दस कामिनि को है।८२

शृङ्गारभोग-रस

राग-कान्हरौ व कमोद—

मेरे माई स्यामास्याम खिलौना ।
पलक ओट जिनि होहु लाड़िले, अनत करौ जिनि गौना ॥
प्रीति रीति परतीति बढ़ावत, मेलि परस्पर टौना ।
निसिदिन कुञ्जनि कुञ्जनि विहरत वृषभान नन्द के छौना ॥
हँसत वदन सुख सदन छबीले, चितवत लोचन कौना ।
चारि भुजनि के बल आलिंगन उरज होत नहिं चौना ॥
दरस परस रस भोजन करिकैं अधरामृत के लेत अचौना ।
वाइस 'व्यास' चिटारै सुरति सुख जूठनिहूं कौ दौना॥८३॥

बलैया

राग-गौरी—

राधाजू के बदन की बलि जैहौं ।
कोटिमदन वसन्त रवि ससि करि न्यौछावर दैहौं ।
हँसत दामिनि लसति दसननि, अधर बिम्ब रसाल ।
नासिका सुक मुक्तफल छवि, तिलक मृगमद भाल ॥

लाल लट सुकपोल श्रवननि खुभी खुटीला चारु।
अलक झलकति झुलझुलि छवि, नील सिर पर सारु॥
भृकुटिभङ्ग तरङ्ग उपजति, चिबुक स्यामल विन्दु।
'व्यासस्वामिनि' नैंन सैंननि वस किये गोविन्दु ॥८४॥

राग जयति श्री–

मोहन मुख की हौं लेउँ बलाइ।
बोलत चितवत हसत लसत, छबि उपजत कोटिक भाइ॥
भँवरनि कौ सम्भ्रम करि भँवरिनि, भैंटति अलकनि आइ।
खेलत नैंननि सौं खञ्जन भ्रुव धनुषहि रहै उराइ॥
दारयौं दसन जानि सुक दाता भँवरनि बँधि अकुलाइ।
अधर सुधाकर मानि चकोरी, दुख मैटति सुखपाइ॥
बाँम कपोल विलोल कुटिल नट, उरज रही अरुझाइ।
स्याम भुजङ्गिनि मनहुँ सुधाघट पीवत हू न अघाइ॥
निरुपम कह उपमा थोरी सब मन में रही लजाइ।
'व्यासस्वामिनी' विहँसि मिलि हँसि, चूंवन दै पछिताइ॥८५॥



गान-रस

राग-कमोद—

रसिकसिरोमनि ललना लाल मिलेसुर गावत ।
मत्त मधुर विवि धुनि सुनि कोकिल,
कूँज्जित तन मन ताप बुझावत ॥
मोर मण्डली नाँचति प्रमुदित,
आनन्द नैननि नीरु बहावत ।
मन्द मन्द घनवृन्द गरजि लजि,
सीतल सजल सीकर वरषावत ॥
नादस्वाद मोहे गो, गिरि, तरु,
खग, मृग, सर, सरिता सचुपावत ।
वृन्दा विपिन विनोदी राधा,
रवनविनोद 'व्यास'मन भावत ॥८६॥

राग धनाश्री—

जैसैंहीं जैसैंहीं गावै मेरौ प्रीतम,
तैसैंहीं तैसैंहीं हौं मिलिचलौं ताहि ।
नीचैं लेत ऊँचैं लैउँ सम नेम दोऊ,
घोर मैंवथोर निषाद निवाहि ॥

सुघरराइ गुनसागर न थहायौ जाहि जाहि।
'व्यासकीस्वामिनी' मोहनसौं बादु भयौ,
विकट औघर गाइ रिझाहि ॥८७॥

ताल मन्दिर स्वर सबही पह आवत,
सोई सोई वदिजै जु गावै घोरि।
कण्ठ सुकण्ठ रागरङ्ग सचि काचि हिमतिहि,
सुघरु क्यों साँचि थोरि यै भली कोर॥
तुमहीं पै होइ आवै प्रीतम,
तौ देहौं नवउरज अकोर।
'व्यास' के प्रभु कहि घटि बढ़ि आवत,
रवकि भेटिहै जोवन जोर ॥८८॥

राग-कमोद व कान्हरो--

जोई भावै सोई क्यौं जानैंरी परत गाइवौ।
कोऊ अनी वांनी गिररी लै कोऊ औघर सुर वढ़ाइवौ॥
कठिन है रङ्गमहलकौ रिझाइवौ (औ) सहचरि कहाइवौ।
यह सब छबि तबही फबि आवैं,
जब 'व्यासस्वामिनी'के चरनकमलमकरन्द पाइवौ ॥८९॥

राग-षट—

मृगनैंनी पिकवैंनी तू राधिका,
विनती सुनि नेंक गाउरी ॥
पंचमसुर आलापि, तासु हरि,
षट-राग के पटु तान सुनाउरी ।
सरस विरस बुधि तोही यह पावत,
याही तैं लालच कीजतु गुन राउरी ॥
'व्यास'की स्वामिनि तेरे दरस परस बिनु,
मो अनुचर कहँ अनत न सहाउरी ॥ ९० ॥

लालकौं धीरज न रह्यौ ललना के गावत ।
सुनतही सुख लागै, बुझे तैं भरमु भागै,
अनुराग गिरिपर्यौ बेंनु बजावत ॥
रङ्गकौ रसरङ्गनि भायौ तान तरङ्गनि,
छायौ बाहु बिच नाहु लगावत ।
'व्यास'स्वामिनि हियौ पियहि लगावति,
चेत्यौ कुंवरि अधर मधु प्यावत ॥९१॥

राग-कमोद व सारङ्ग—

बहुत गुनी मैं देखे सुनेरी,
सुधि न परै राधे तेरे गान की ।

मोहू कछू गर्व हुतौरी गुनकौ,हौं पचिहारयौ,
समुझि न परै कछू तेरे तानकी ॥
तू जानत गति रेख नेमकी,
ताल मन्दिर घोर सुर बन्धान की ।
'व्यासस्वामिनि' तेरे गावत कछु,
सुधि न रही मेरे लोचन कानकी ॥९२॥

राग कल्याण—

गावत गोरी नैंन नचावति ।
सुघराई तन मुख सनमुख करि विहसि दसन चमकावति ॥
रीझत सुघर नवतरुनि नागरी,सुनि धुनि पिकहि चुनावति ।
तान बन्धान तकिही तकि मारति,मोहन मृगहि गिरावति ॥
लेत उसास कठिन-कुच उकसत, स्यामहि काम बढ़ावति ।
'व्यासस्वामिनी' आतुर पियकौं,
रवकि कण्ठ लगावति ॥ ९३ ॥

राग-गौरी –

गौरी गायौ सुनि स्याम रिझायौ ।
लटक्यौ मुकुट पीतपट झटक्यौ चटक्यौरी,
नासापुट सुन्दर करतें वेंनु गिरायौ ॥

नैंननि असुवाँ गिरत अमित अति,
कम्पित जानि रवकि उर लायौ।
'व्यास' की स्वामिनी कुञ्जमहल में,
अधरसुधारस प्यायौ ॥ ६४ ॥

राग-गौरी व कल्याण—

नटनागरिकौ औसरु देखत रसिकसिरोमनि रीझि रह्यौ।
सरस बजावत नाँचत गावत अङ्ग दिखावत रंगु रह्यौ ॥
राग तान बँधान मिलि देसी सुधँग न परत कह्यौ।
जो कछु गुनकी मनमहँ उपजी, सो नखसिख तर लैं निवह्यौ ॥
मोहन धन लाज छाड़िं पुनि कौतुक देखत जग उमह्यौ।
'व्यासस्वामिनिहि' रीझि लटू ह्वै,
हारि मानि पिय चरन गह्यौ ॥६५॥

भोजन-विलास

राग-धनाश्री—

आजु बनी कुञ्जनि ज्यौंनार।
जैंवत स्याम परोसति स्यामा नखसिख अँग उदार ॥

सपरि स्वेद जल गण्डुष कर गहि, धोइ कमलदल थार।
अम्रित अरुन सुपक्व अधर, षट-रसमादिक्र आहार॥
दरस सुगन्ध सुस्वाद तहाँ पुट, रुचि कर मधुरस षार।
माँगि सबै सब लेत देत सुख, तन मन स्वाद सुसार॥
रोम रोम आनन्द सोमकुल. श्रवत सुधा मधु धार।
सर्वसु देत न डर भयौ दातहि, जाचक कीन संभार॥
लालचही की लटी लोलता, लचत न लागी वार।
ऐसेही विविधविहार विलोकति, 'व्यासदास' बलिहार॥९६॥

राग-आसावरी—

बनी बन आजु की ज्यौंनार।
जैंवत राधामोहन अँग सँग, उपजति कोटि विकार॥
धूमकेतु मकरध्वज मानहुँ, जानिदुखइंधन भार।
सुरति सुदारि चिर कुञ्चित, आतुर तजि आचार॥
संतत सद्य सुवास गातरस मीठौ देत उदार।
कुसुमपत्र पत्रावलि रचिक्ररि, नैंन चषक्र सुखसार॥
तृपित न भई छुधा न गई अचवत अधरामृत धार।
व्यासस्वामिनी भोगभोगवत, हरि गुनसिन्धुअपार॥९७॥

आरती

राग–धनाश्री—

आरती कीजै जुगलकिसोर की।
नखसिख अङ्ग बलैया लीजै, साँझ दुपहरी भोर की॥
भूषन पट नागरि नट अद्भुत, चितवनि चञ्चल कोर की।
'व्यास' दासि छबि नैंननि फबि रही,
अञ्चल चञ्चल छोर की॥ ६८॥



उत्थापन समय रस

राग–षट—

छूटी लट न सम्हारति गोरी अञ्चल डारैं आवति।
घूँमत नैंन बैंनु तुतरानैं लटकति अङ्ग नचावति॥
स्यामअङ्ग भुजधरैं करें बस हँसनि भौंह मटकावति।
सावधान परवसी यहीरस यहै रीझि अधर-मधु प्यावति॥
कबहुँक रति बिपरीति मीत पर सुख-वारिद वरषावति।
इहिं विधि विहरत संतत देखत,
'व्यासदासि' सुख पावति॥६९॥

राग–सारङ्ग—

स्यामकैं गोरी सहज सिंगार।
कञ्चन-तन हीरा दसनावलि नख-मुकता सुखसार॥

कुचकलसन महँ प्रान रतन धरि अधर सुधा आधार।
चरन सिरोमनि कर नैंननि धरि भुज चम्पक मनि हार ॥
अङ्ग अङ्ग सेवा रस मेवा वनविहार अहार।
परिरम्भन पट भूषन चुँवन चितवनि हँसनि भण्डार ॥
पिय के गण्ड अधर रसना मुख सुखमय जूठौ थार।
व्यासदासि दिनपीक पियत बड़भागिनि लेत उगार ॥१००॥

राग-भूपाली व सारङ्ग—

लटकति फिरति जोबन मदमाती,
चम्पक वीथिनि चम्पक वरनी ।
रतनारे अनियारे लोचन,
दुखमोचन लखि लाजत हरिनी ॥
अंस भुजा धरि लटकति लालहिं,
निरखि थके मद-गजगति करिनी ।
वृन्दाविपिन विनोदहिं देखत बहु,
मानिक मोही वृन्दारकधरनी ॥
रासविलास करत जहाँ मोहन,
बलि बलि धनि धनि है वन धरनी ।
श्री वृषभाननन्दिनी के सम,
'व्यास' नहीं त्रिभुवन महँ तरुनी ॥१०१॥



कुञ्जनविहरण-रस

राग-कान्हरौ—

चलहि तू भेद की माई चाल।
रचि रचि चरन धरति गति उपजति,
देख लजाने कीर मराल॥
किङ्किन कङ्कन नूपुरधुनि सुनि,
नदित मृदङ्ग सुधङ्ग सुताल।
हस्तकमल हस्तकनिहि दिखावति,
मनु मिलवति अरु वाहु मृनाल॥
अञ्चल भाँझ न चञ्चल कुचघट,
मटकि चटकि चितु हरत रसाल।
मुरि मुसक्याति भाँतिसौं वितवति,
काम करत स्यामहि बेहाल॥
गावति काम बान तकि मारत,
विथकित मोहनमन मृगमाल।
इहिविधि 'व्यासस्वामिनी' संग विहरत,
जीवनिकौ फल पायौ लाल॥१०२॥

राग-षट व गौरी—

फिरत सँग अलिकुल मोर चकोर ।
घनपरु जुन्हाई सरद वसन्त मनहुँ हैं जुगलकिसोर ॥
निकट कुरङ्ग कुरङ्गनि आवत सुनि मुरली धुनि घोर ।
'व्यास आस करि त्रास तजत सर चक्रवाक भरि भोर ॥१०३

राग-सारङ्ग—

चलि तू भेद की माई चाल ।
गावति मनिमञ्जीर वजावति मिलवति गति छपताल ॥
झलकत-अलक छबीली भौंहैं चञ्चल नैंन विसाल ।
मानहुँ वधिक डराने विडरे खंजन मीन मधुप मृगमाल ॥
पीन गगन कुच उन्नत देखत पग डगमगत रसाल ।
मानहुँ फँदनि के सम्भ्रम मग तजत गयन्द मराल ॥
मन्द हँसनि घूंघट में सोभित उर–लटकत लटजाल ।
'व्यासस्वामिनी'तो तन देखत स्याम भयौ बेहाल ॥१०४॥

राग-भूपाली —

आवत सखि चन्दा साथ अन्ध्यारी ।
घन दामिनि चकोर चातिक मिलि मोरति राका प्यारी ॥

गज मराल केहरी कदली सर वक चकवा सुक सारी।
खञ्जन मीन मकर कच्छप मृग मधुप भुजङ्गिनि कारी॥
कमल मृनाल लाल मनि मुक्ता हीरा सरसु पवारी।
'व्यासस्वामिनी'की सुख-सम्पति लूटत कुञ्जविहारी॥१०५

व्यासरूपासखी सखियन प्रति

राग–षट—

देखौ माई सौभा नागर नटकी।
मानौं चपल दामिनी जामिनि मेह सनेहनि अटकी॥
कुञ्जसयन कमनीय किसोरी राजति पिय उर लटकी॥
कोमल सुन्दर पानि जुगल महँ छवि उपजत कुच घटकी।
जनु वारिज पर मधुकर जोरी हँस वैरु करि हटकी॥
परिरम्भन चुम्बन करि करधरि अधर सुधामधु गटकी।
मानौं चकोर मिथुन मधु पीवत चन गति विधु संकटकी॥
लोचन सफल करत निजु दासी अति आतुर नहिं अटकी।
परम उदार 'व्यास'की स्वामिनि, सर्वसु देत न मटकी॥१०६

राग-सारङ्ग—

समाइ रहे गतनि में गात।
निकसत नहीं निकासे प्यासे रस पीवत न अघात॥

गौर स्याम छबिकी उपमा कह कोटिक कवि अकुलात ।
मधुर बैंन सुनि सैंननि नैंननि सोभा सिन्धु न मात ॥
वसीकरन आकर्षन मोहन मंत्र वरन लपटात ।
सहज रूप लावण्य नदी महँ गुन नौका न समात ॥
कुञ्ज कुटीर तीर जमुना के खेलत द्यौस वितात ।
'व्यास' विपिन वैभव सुनि सिरधुनि,
कमलापति पछतात ॥ १०७ ॥

राग गौरी व गौड मलार—

देखौ माई सोभा नागर नटकी ।
बिहरत राधा के सँग निरखि बिलखि रति कमला सटकी ॥
सुरत श्रमति प्यारी प्रीतम के कण्ठ भुजा धरि लटकी ।
मानहुँ मेघमण्डल में दामिनि चञ्चलता तजि अटकी ॥
मोहन करजनि बीच सोभियति सुन्दरता कुच घटकी ।
मानहुँ कनक कमल पर हंस चरनिधरि भँवरनि हटकी ॥
कुचगहि चुँवन करत अधर खण्डित हूं कुँवरि न मटकी ।
मानहु निकट चकोर चुञ्चगहि चन्द सुधामधु गटकी ॥
गौर गण्डरस मण्डित स्याम वदन गति नैंक न ठटकी ।
मानहुँ नूत मञ्जरी के रस अनत न कोयल भटकी ॥

देखत ही सुख कहत न आवे क्रीड़ा वंसीवट की।
'व्यास' स्वामिनी की छबि बरनत,
कचितु लिलारी पटकी ॥ १०८ ॥

राग-धनाश्री—

मोहन माई राधिकाकौ कन्तु।
विहरत वृन्दावन घन बीथिन वसतु सु सदा वसन्तु ॥
नवनिकुञ्ज प्यारी सङ्ग अङ्ग अङ्ग सुख पुञ्जनि वरषन्तु।
प्रगट करत रस रीति छवीलौं प्रीतहिं नाहीं अन्तु ॥
गनतुन काहू जोवन के बल जनु हाथी में मन्तु।
रूप अनूप देखि जग भूल्यौ मुदित जल थल जो जन्तु ॥
बड़भागी अनुरागी नागर सुघर कुँवर भववन्तु।
'व्यास' सहे उपहाँस स्यामकौं सौभागिन नेह जरन्तु॥१०६

राग-सारङ्ग—

मोहन बन की सोभा स्याम।
स्याम हरित दुतितनमहँ उपजति सो छवि कवि अभिराम ॥
बदन चन्द करि रंजित दोऊ मानहुं सरदनि याम।
भूषन उडगन दमकत नील निचोल गगन सुखधाम ॥
अधर अरुन पल्लव सुसोभित विहँसनि कुसुमनि वाम।
श्रीफल कुच कापि सुकल फूल लाजत मौरे आम ॥

चालि दृगञ्चल चंचल खंजन मीन मृगज अलिजाम।
कुंजनि कुहू कुहू पिक कूजत पियहि बढ़ावत काम॥
सकल अङ्ग घनस्याम वनहिं पोषत नव सुरस ललाम।
'व्यासस्वामिनी'कौ रस वैभव गोपी ग्वाल सुदाम॥११०॥

वीणा वादन-रस

राग-षट व टोडी—

कुँवरि प्रवीन सुवीन वजावत।
वंसीवट निकट निकुंजनि बैठी, सुख पुंजनि वरषावति॥
स्याम चुरि पौंची कर सोभित, अँगुरिनि रँग बढ़ावति।
ताँति मोर नासारि पान सजि,हँसति दुति मन भावति॥
उपजति राग रागिनि अद्भुत मोहन मृगहि रिझावति।
सुर बँधान तान मानहि मिलि ग्रीवा नैंन नचावति॥
गावत गीत मीत के श्रवननि वर संगीत सुनावति।
विवस जानि कुंवरहिं करुनाकरि अधर सुधादै ज्यावति॥
कोटि काम दै स्यामहि मोहति हँसि हँसि कण्ठ लगावति।
लेत उसाँस देति कुच दरसन परसत सकुचि दुरावति॥
कुसुम-सयन पगि कोक-कलाकुल प्रगट पतिहि सिखावति।
इहविधि रसिकनि की निधि राधा,
'व्यासहि' सुख दिखरावति॥ १११॥

राग सारङ्ग—

बजावत स्यामहि बिसरी मुरली ।
मोहन स्वर आलाप जु गायो राधा चितुवितु चुरली ॥
अरुन वरुन दिसि निसि ससि विकसित सकुचत कमलकली ।
तमचुर सुनि मिलि बिछुरी चकवनि की जोटि छली ॥
फूली धरनि सदां गति भूली तरनिसुता न चली ।
विकल भँवर पिक पथिक अचल पथ रोकत कुञ्जगली ॥
स्थावर जंगम, संगम बिछुरे सब की गति बदली ।
कै यह मरम जानिहै महलनि कैर 'व्यास' वृषली ॥११२॥



विविध विनोद-रस

राग सारङ्ग—

वन महँ कुञ्जनि कुञ्जनि केलि ।
जमुना पुलिन कमल मण्डल मह रहे रासरस झेलि ॥
वीथिन वर विहार गहवर गिरि लीला ललित सुवेलि ।
खोरि, खरिक प्रति रचना सखीरी जानि बाहु गलि, मेलि ॥
रस सरिता झिरना सौरभ जल अवगाहत पग पेलि ।
'व्यासस्वामिनी' विरचित छिनु छिनु,
निसदिन पियसंग खेलि ॥ ११३ ॥

राग-कान्हरौ—

कुँवरि कुँवरकौ रूप भेष धरि नागरपिय पहँ आई।
प्यारिहि हरि मिले सकुच जिय उपजी, तब इक बुधि उठाई ॥
हौं वृन्दावनचन्द छबीलौ राधापति सुखदाई।
तू को 'प्रिया' 'प्रिया' कह ठेरत, तजि बनभूमि पराई ॥
कैसी तेरी तरुनि सुहागिल कहि मोसौं समुझाई।
'राधा' नाम गाँव बरषानो, बड़े गोप की जाई ॥
सुन्दर पुरुष स्यामतन मोहन, प्रिया अधिक गोराई।
तेरीसी उनहारि 'वारिहौं' जब मोतन मुसिकाई ॥
नकवेसरि के वेह नेह मौं मृगमद बांटि लगाई।
'व्यासस्वामिनी' विहँसि मिली जब,
प्रगट जानि चतुराई ॥ ११४ ॥

राग-गौरी—

सुनि गोरी तें एक किसोरी वनमह देखी जात।
ता बिनु दीन छीन हौं डोलत, कोऊ न बूझत बात ॥
तेरीसी उनिहारि नारि के सबै लुभ्यारे गात।
चितवत चलत अधिक छवि उपजति, कोटि मदनसर घात ॥
तू अपनौं व्यौरौ कह मोसौं, अधनैंननि मुसिकात।
'व्यासस्वामिनीहि' वार न लागी,
स्याम कण्ठ लपटात ॥ ११५ ॥

राग—जयति श्री—

कहि धौं तू काको बेटी ।
वन महँ फिरति अकेली सुन्दरि सहचरि सँग नचेटी ॥
तोसी कुँवरि न ब्रजमें कोऊ मैं देखी गुजरेटी ।
बिनु चोली अञ्चलहू डारें उरजन मृगज लपेटी ॥
वरषति स्वेद हर्ष तन रोमनि वेपथ जीभ लपेटी ।
प्रानवल्लभा मेरी बिछुरी वीर पीर तैं मेटी ॥
सुनत वचन हँसि बोली राधा कहाँ विहँसि पिय भेटी ।
रतिरस राखि 'व्यास'की स्वामिनि, कुञ्ज महलमें लेटी ॥ १६

राग-सारङ्ग—

चम्पक वीथिन फिरत अकेली सुन्दरता की खानि ।
राति अचानक स्याम कुँवरि के लोचन मूँदे आनि ॥
काकी नारि गारि हौं देहौं तेरी करौं न कानि ।
तूँ पाछे तें छलकरि मोहि सुनाउ नैंक मुख वानि ॥
गजमोतिन के गजरा चचरि चुरी मुदरी तव पानि ।
पीन पयोधर पीठि गड़ावति दीठि वरावति जानि ॥
सबै मनोरथ पुजऊँ तेरे करि मोसौं पहिचानि ।
कृपा बचन सुनि सनमुख करि हँसि भेटी सुख निधानि ॥
'व्यासस्वामिनिहि' मिलत कुँवरकैं भई लाजकी हानि ॥ १७१ ॥

राग-केदार—

देखि सखी खेलत नागरि नट।

अद्भुत बात कहत नहिं आवै,
क्रीड़ा करत चढ़े वंसीवट ॥
मोहन के करजनि में सोभित,
प्यारी के कुच कनक सुधाघट।
मानौं हेमकमल पर मधुकर,
रसकरि हँस गहै कर संकट ॥
चुम्बन करत लरत नासा सुक,
दारयौं दसन स्वादरस लम्पट।
नैंननि चञ्चल खञ्जन मिलि विहरत,
मधुर वचन बोलत कोकिल रट ॥
रति रन साजत भाजत नाहिन,
नखसिख ते अँग अँग सुघर भट।
यह रस 'व्यासदासहिन' उबीठतु,
जद्दपि सेत भई सिरकी लट ॥११८॥



बतरस-विहार

राग-गौरी—

कहत दोऊ मिलि मीठी बातैं ।
मन मन विहसत नैंन नचावत, अधर सुधा मधु मातैं ॥
अनतहि चितु, चितवत दोऊ अनतहि लखत न कोऊ घातैं ।
कछु वे गहत, कहत कछु वे दोऊ खात न पेट समातैं ॥
तन मन मिलि अरुझे जनु कोटिक चन्द अमास रातैं ।
गौरस्याम सागर मिलि वाढ्यौ,
'व्यास' अङ्गनि रंग चुचातैं ॥ ११८ ॥

राग-आसावरी मूलताल)—

मोहनी कहत मोहन सौं बात ।
कोमल मधुर मनोहर धुनि सुनि, पिय के श्रवन सिरात ॥
सरस अधर मधु मादक बरषत, रसिक कुंवरि पीवत न अघात ।
जनु अलि-लम्पट के मुख मेलत, मकरन्दहि जलजात ॥
दम्पति की छवि निरखि दामिनी, दार्‌यौ कुन्द लजात ।
मानौं कोक नदमाँझ किरनिका केसर तृषित बसात ॥
नैननि नैन मिलत सैननि दै, मन्द मन्द मुसक्यात ।
जनु खञ्जन खेलत प्रतिबिम्बनि, जल में चंचल गात ॥

रसना एक अनेक रूप गुन, वरनत कवि अकुलात।
कोटिक 'व्यास' करतहूं बुधि बल, सरवा सिन्धु न मात॥११६

राग-देव गन्धार—

कुंवरि छबीली तेरी बतियाँ।
सुनत सिरात श्रवन मन आनन्द,
सुख पावत अति छतियाँ॥
विहँसत अधर कपोल नयन भुज,
उपजावति गुन गतियाँ।
अङ्ग अङ्ग फूल निरख नकवेसर,
उर लटकति लटपतियाँ॥
गावत लेत उसास उरज उमगत,
मारति करि घतियाँ।
'व्यासस्वामिनी' मेरौ सर्वसु,
लूटि लेत निज थतियाँ॥ १२१॥

राग-कमोद—

सुन सुन्दरि इक बात कहत हौं।
तेरी गति मति तुही कृपा तेरी चाहन मैं चहतु हौं॥
सर्वोपरि मेरौई भागजु तेरे सङ्ग रहतु हौं।
तू जु मोहि अपनौं करि जानतु हौं पुनि इतौ लहतु हौं॥

मेरे छमि अपराध जु बरसौ करजनि उरज गहतु हौं ।
खण्डतु तेरे अधर मधुर धरि सौं अति पीर सहतु हौं ॥
निर्दय बहुरि भेंट तोहि हौं दुखसागर न थहतु हौं ।
'व्यासस्वामिनी' अङ्ग सङ्ग के रङ्गहि लै निवहतु हौं ॥१२२

राग-कान्हरो—

नैंन सिरानैंरी प्यारी देखत मुख ।
सुनि राधा बाधा न रही अब तैं कीनौं मो पर रुख ॥
श्रवन सीतल भये बचननि सुनि, गये दारुन दुख ।
'व्यास' की स्वामिनी सौं मिलि विहरत,
नख-सिख भयौरी परम सुख ॥ १२३ ॥

राग-गन्धार—

रूप तेरोरी मोपै बरन्यौ न जाइ ।
रोम-रोम जो रसना पावौं तौ गाऊँ तेरौ गुन अघाइ ॥
कोटि जतन जौ कीजै कैसैं हूं सरवा सिन्धु न माइ ।
कैसैं 'व्यास' रङ्ककी वसनी, लङ्क, सुमेरु जराइ ॥१२४॥

निरख मुख सुख पावत मेरे नैंन ।
श्रवन सिरात गात उमगत सब, सुन छबीले बैंन ॥
विहसनि बंक विलकनि भौहैं धनुष तैं चलै सर सैंन ।
रोम-रोम गति सेन विराजति, कोटि कोटि रति मैंन ॥

महामधुरी सिन्धु समात न, अङ्ग सांकरे ऐंन।
'श्रीव्यासस्वामिनी' की अद्भुत छबि,
कवि पहँ कहत बनैंन ॥ १२५ ॥

राग-धनाश्री —

तब मेरे नैंन सिरात किसोरी जब तेरे नैंन निहारौं ।
कोटि काम रति, कोटिचन्द वदनार विन्द पर वारौं ॥
तब मुख सुख जब तेरे प्यारी पावन नाम उचारौं ।
हाथ सनाथ होत जब तेरे अङ्ग सु-माँग सिंगारौं ॥
श्रवन स्रवन तबही जब तेरे गुनगन सुनत उर धारौं ।
तब रसना रसमय जब तेरे अधर सुधाहि न डारौं ॥
उरकौ जुरु जात न तब जब भुजनि बीच तैं टारौं ।
तब बुधि मन चित मेरौ हित जब रूप अनूप विचारौं ॥
तब मम मोर मुकुट साँचौ जब सेजमहल रज झारौं ।
तब वंसी धुनि जगत प्रसंसी जब तब जस न बिसारौं ॥
तू भूषन धन जीवन मेरैं, यह व्रत मन प्रति पारौं ।
'व्यासस्वामिनी' के तन मन पर राइ लोन उतारौं ॥ १२६ ॥

राग कल्याण —

चपल चकोर लोचन मेरे तरसत,
देख्यौरी चाहत वदन मयँकहिं ।

घूँघट पट महँ कतहि दुरावति,
क्रपनि दुरत ज्यौं देखत रंकहि ॥
तो बिनु मो कहँ ठोर न और कहूँ,
इतनौं भरोसौ करि अब जिनि संकहि ।
बिहँसि लगी पिय के हिय राधा,
'व्यास'की स्वामिनी हठि मेटति कलंकहि॥१२७

मान-रस

सम्भ्रम मान

राग-सारङ्ग—

*पिय के हिय तैंतू न टरति री ।
मेलि ठगौरी खेलि स्याम सौं, मोहूतें न डरतिरी ॥
मेरो नाह कि तेरौ कहिधौं जासौं प्रीति करतिरी ।
हौं इनकी प्यारी तू न्यारी हौं हिब, कति अरतिरी ॥
जद्दपि रूप रासि तेरें अंग निरखति आँखि जरतिरी ।
जोबन जोर किसोरचन्द कौ, चितु वितु चाह हरति री ॥

---

*श्रीप्रियाजू प्रीतम के हृदय में अपनौ प्रतिबिम्ब देखि, ता प्रति कहैं है ।

इतनौं सुनत कुँवर के तनतैं स्वेद नदी उतरति री।
हँसि हरिराम 'व्यास' की स्वामिनि,
लालहि अङ्क भरतिरी ॥ १२८ ॥

राग-कल्याण—

*गुन रूप की अवधि राधिका तैं,
परवसी राइसिरोमनि वस कियौ।
तनु मनु धनु जोवन भूषन,
प्रानप्यारे कैं और न वियौ॥
बोलत हँसत मिलत चितवत ही,
मोहन कौ चित चोरि लियौ।
नवनिकुञ्ज वृन्दावन विहरत,
सीतल करत 'व्यास' कौ हियौ ॥१२९॥

राग-वसन्त—

सुन्दरता की रासि नागरी देखत नैंन सिरात।
अङ्गनि कोटि अनङ्ग वारियतु विहँसि कहत जव बात॥
कोटि कल्प कोऊ जो जीवै रसना कोटि कलात।
निरुपम नख की छवि उपमा कहँ कोटिक कवि अकुलात॥

---

*सखी श्रीप्रियाजू की प्रसंसा करि कहै है।

लोक चतुर्दस की वर तरुनी तरुन सुनत वलिजात।
नयन श्रवन उर श्रयन सांकरे सोभासिन्धु न मात॥
बड़भागी अनुरागी मोहन हिलत मिलत न अघात।
धन्य 'व्यास' की ठकुराइनि,
राधा कहि स्याम सकात॥१३०॥

राग-गौरी व भैरव—

कामकुञ्जदेवी जय राधिका वरदायिनी,
निस्चैं देहि प्रिये वृन्दावन वृन्दवासिनी।
करत लाल आराधन साधन वलि कर,
प्रतीति नामावलि मन्त्र जपत जय विलासिनी॥
प्रेम पुलक गावत गुन पावत मन भावत अति,
नाँचति गति रीझि देखि मन्दहासिनी।
अञ्जन पट भूषन पहिराइ तोरत तृन,
लै वलाइ सुख निवासिनी॥
करजोरें चरन गहत कहत चाटु वचनावलि,
विनती सुनि दास की दुखरासि नासिनी।
प्रतिपालय करुनालय मोंसौं जिनि मान करै,
देहि प्रिये प्रान वदत 'व्यासदासिनी'॥१३१॥

राग-मलार—

*तू कत मोहि मनावन आई ।
कोटि वार वरजेहूं पिय चञ्चल की टेव न जाई ॥
मो देखत अपनैं उर (में) मोहन सुन्दरि वसन दुराई ।
मोहूतैं गुन रूप अति आगरि, तातैं तन मन भाई ॥
मोसौं विरति वढ़ी वासौं रति करी तव हौं विसराई ।
करि अपराध साधु ह्वै वैठे, तोहि सिखै चतुराई ॥
पट भूषन तजि छलकरि नागर तन कुमकुम लपटाई ।
'व्यासस्वामिनी' निरखि हँसी,
सुन्दर हँसि कण्ठ लगाई ॥१३२॥

राग-सारङ्ग—

रूसैंहूं न तजी चतुराई ।
सकति वसीठी सीठी जानत, नैंननि सैंन चलाई ॥
आजु नेह सौं वात कहत सुनि श्रवननि रुचि उपजाई ।
विनु काजैं रूठे झूठौं दुख पावति, कहत लुगाई ॥
आपुन सौं सव भले कहावत, हरत न पीर पराई ।
तव ताकौं अपराध न दुरिहै, कहि दैहै जल झांई ॥

---

*श्री प्रियाजू सखी प्रति ।

इतनौ कहि जमुना महँ मुख देखत ही लाज-गवांई।
स्याम कामवस 'व्यासस्वामिनी, राखी कण्ठ लगाई॥१३३॥

श्रीलालजूके बचन श्रीप्रियाजी प्रति

राग-सारङ्ग—

बाधा दै राधा कितहि गई।
वृन्दाविपिन अछत प्यारी बिनु, सब विपरीति भई॥
मेरे मन्द भाग्य तें काहू पोच प्रकृति सिखई।
मुख सुखरासि उरज देखे बिनु क्यों जीवै विपई॥
ताके प्रान रहहिं क्यों जिय वह, अधर-सुधा अचई।
'व्यासस्वामिनी' विहँसि मिलत ही, बाढ़ी प्रीति नई॥१३४

राग-नट—

काहे कौं लाडिली मौसौं मान करति।
मेरी प्रकृति जैसी, तैसी तुहि जानति,
गुन अपुगुन कत जिय महँ धरति।
ताही पर कीजै कोप जाहीसौं सपनेहूं न,
बीचु नीकु कामहि पाछैं हूँ डरति।
'व्यासस्वामिनि' तू चतुरसिरोमनि,
औचका पाछैंते नीकैं आँकौभरति॥१३५॥

राग-सारङ्ग—

व्रिरह व्याधि तन बाढ़ी राधा करि उपचारु।
दै अधरामृत, मृतक रसाइनि,
कुच गुटिका घटिका उर डारु ।।
रोगहरन निज चरन सीस धरि,
नैंननि पर कर पङ्कज चारु।
अङ्गराग-अजना सु देहि अब,
अञ्जन पीक लीक गद्सारु ।।
प्रतिपालय, करुना वरुनालय,
तो बिनु अनत नहीं निस्तारु।
यह सुनि व्रत-तजि पिय अङ्ग-सङ्ग,
'व्यासस्वामिनी' करत विहारु ।। १३६ ।।

राग-कमोद व झंझौटी (इकताल,—

मान दान दैरी प्रान राखिलै।
विनती सुनि मुनिव्रत तजि बलि जाऊँ,
रिस सलिता की सींव नाखिलै ।।
तोहि वृषभानु की सौंह वेगि कहि,
जियके प्यारे को अधर सुधा चाखिलै ।।

विरह-सिन्धु हौं मगन होत कुच तूंबी दै,
उबारु जौन पत्याहि तौ 'व्यास'साखिलै ॥१३७

राग–विलावल—

राधाप्यारी हौ मान न करु।
अन्तर विरह दहन तन जारत,
वरषावहिं बिम्बाधर जलधरु ॥
बिनु अपराध कोप न कीजे, दीजै हौ प्यारी
प्रान दान धन, राधा तेरौ हौं अनुचर।
'व्यासस्वामिनी' मन्दहाँस करि,
कण्ठ लगाइ लयौ सुन्दरवर ॥१३८॥

राग केदारौ(ताल चौताल)

मुखछवि अद्भुत होत रिसानै।
नैंननिकी सैंननि महँ सुन्दरि, तेरे हाथ विकानै ॥
तोरे तरल बंक भ्रुव वोटनि मनहुं मनसिज सर तानै।
पलकु अलक मिलि अनखु करति हँस ताहि वदों जु बखानै॥
विहँसत अधर कपोल औल मनु माँगत नित पहिचानै।
चमकत दसन दामिनी मानहुँ पट घन अरि अरुझानै ॥
फरकत उर भुज करत चाव इत जघननि स्वेद चुचानै।
तोरत अँग रँग भरि पुलकित, रिसि न तजत अकुलानै ॥

अपनौं काज बिगारति नाहिन, आतुर कुसल सयानै।
'व्यास' उसास लेत दोऊ जन, रचकि कण्ठ लपटानै ॥१३९॥

मान तजि मानिनि वदन दिखाउ।
दुख मोचन तेरे दरसन बिनु, लोचन जरत बुझाउ॥
मन्द मधुर मृदु कोकिल केसे, अपनैं वचन सुनाउ।
पञ्चमसुर पटतार अलापति, तू षटरागहि गाउ॥
परमभाग मेरो अब सुन्दरि, देखे तेरे पाउ॥
'व्यासस्वामिनो' बिहँसि मिली,
हँसि बिरहसिन्धुकी नाउ ॥ १४० ॥

राग-कल्याण—

तेरौ जान कुँवरि मैं जान्यौ।
मोहू से अनुचर कौ तैं, अनुराग नहीं पहिचान्यौ॥
तो बिनु मोहि अनाथ जानि अब, मदनवान सन्धान्यौ।
चन्दन, चन्द, पवन तन जारत, करतु कछू नहिं कान्यौ॥
तेरे विरह भयौ दारुन दुख, कैसैं जात बखान्यौ।
तेरे चरन सरन हौं सुन्दरि,
'व्याससखी' गहिआन्यौ ॥ १४१ ॥





सखी वचन श्री प्रियाजू प्रति

राग—भूपाली—

*अजहूं माई टेव न मिटति मान की।
जानति पिय की पीर न मानति सौंह बबा वृषभान की॥
कुसमित सेज भयानक लागत भवन पवन गति खानकी।
वनकी सम्पति कहि न जात, सही जाति न विपत जानकी॥
भूषन वसन सुहात गात नहिं विकल, न सुरत गानकी।
चातिक कृष्नहि, तृष्ना बाढ़ी, जलधर अधर पानकी॥
सुनि, पिय उरज वोट दै, चोट बचाई, मदनवानकी।
'व्यासस्वामिनी' हरि जाचक कौं दानिव प्रान दानकी॥१४२

राग—कल्याण—

सुख के सरीर महँ, अगनित दुखरासि,
कैसैं कै समातिरी कहिधौं राधिका प्यारी।
यह मेरे जिय कौं संसय तूँ दूरि करि,
जै तीन्यौं परि होइ सुखारी॥

---

* इस में श्री प्रीतम सखी रूप ह्वै विविध विधि मान मनावन रस भी संयुक्त है।

थोरैं ही कहैं हम, बहुत समझि,
तूँ अतिही सयानी जानी कुञ्जविहारी।
'व्यासहि' जानि निजु दासी मानि मनावौ हँसि,
पियहि मिलौ श्रीवृषभान दुलारी ॥१४३॥

राग–षट—

कबहूं तौ काहूकौ कह्यौ न कियौ।
जुरत वसीठी ते सीठी करि डारी, हठ करि कछु न लियौ॥
नैंननि तोहि कुटिलता सिखई, और न हेत वियौ।
कठिन कुचन की सङ्गति कौ फल, ह्वै गयौ कठिन हियौ॥
बिनु अपराधहि साधु पियहि तैं कबहुँ न चैंन दियौ।
सरधाहू तें कृपन अधर मधुरस पिय न अघाइ पियौ॥
सुनत चली आतुर ह्वै चातुर, विसरइ सङ्ग सखियौ।
'व्यासस्वामिनी' भेटत ही मेरौ मोहन जियौ॥ १४४॥

माननी मानु लड़ैती तोहि मन मोहन बोली।
चाहति फिरति तोहि हौं कुञ्जनि कुञ्जनि बूझत डोली॥
तो कारन रचि पचि पिय पठई चम्पकलिन की चोली।
सुन्दरि गोरे गात पहिरि चलि, नीलसारि पचतोली॥
पाइन परत करति हौं विनती, तोसौं वोलति बोली।
लेत बलाइ करति हौं हा! हा! अब जिन होइ अबोली॥



प्रानदान दैन चली अली सँग, प्रीति बढ़ी निरमोली।
'व्यासस्वामिनिहि' कुँवर मिले हँसि,
कन्चुकि, नीवीबंध खोली ॥ १४५ ॥

राग जयतिश्री—

कहाँलौं कहियै दुखकी बात।
सुनि सुन्दरि तो बिनु सुन्दर कौ, जैसैं द्यौस विहात ॥
एक संदेसौ कहि पठयौ पिय, आतुर अति अकुलात।
तौ जीवै जौ मेरी सखी दियावै तू उर जात ॥
मोहि बहुत सुख ह्वैहै मेरी दूतिहि उर लपटात।
मेरौ हियौ सिरहै दूतिहि, चूँवन दै मुसिकात ॥
जो कछु सहचरि कहै सुमेरौ, कह्यौ जानिवौ जात।
व्यास विनोद समझि हँसि प्यारी, पिय सँग विहरत प्रात १४६

राग-सारङ्ग—

नवल नागरि री मान न कीजै पियसौं।
बहुत बार मैं तूं सिखाराई, तो बिनु छिन को,
जीवै विषई नागरु रूस्यौ अपने जियसौं ॥
तोहि जनाउ दयौ मैं चितकै, तोते होइ सु तूं करि,
कौजु बराबरि करि सकै सुन्दरि वृषभान धियसौं।
दीन बचन सुनि उठि चली अली संग, सहज सनेह रँग
सदमत व्यासस्वामिनी हँसि कुँवर लगाइ लियौ हियसौं १४७

राग–स्यामगूजरी—

विहरत मोहन कुञ्जकुटीर।
सुनि प्यारी तो बिनु छिनु पियके, प्रान न रहत सरीर॥
छबि दबि गई मुखारविन्द की, तरलित स्वरस समीर।
विरह दहन तन जरत बुझावत, वर्षि नैंनघन पीवत नीर॥
वेपथु स्वाद रहित पुलकावलि, चलि नहिं सकत अधीर।
कहत रहत राधा बिनु कौ लगि, धरियै मन महँ धीर॥
सहचरि व्यास बचन सुनि सुन्दरि, वेगि चली पिय तीर।
कंठ लगाइ लये, अधरामृत प्याइ, हरी तन पीर॥१४८॥

राग-गौरी—

कहाँ लगि कहिये दुखकी बात।
सुनि राधा तेरे बिछुरत पियके, सीदत सब गात॥
गिरि गिरि परत सम्हार न तनकी, चलत चरन अरुझात।
यह वदनारविन्द देखे बिनु, लोचन अलि अकुलात॥
अङ्ग निरङ्ग भये जैहि मारुत सुख तजिकै बिल्लात।
मन मनसा सँग उठै, फिरित ज्यौं विटप पुरानै पात॥
दासिनिसौं करिजोरि निहोरत, हँसि पूछत कुसलात।
प्रान अधारहिं वेग मिलावौ, पुनि पाइँन लपटात॥

कुञ्जभवन कल गावत अलि,सुक,पिक बोलत न सुहात ।
हा राधे ! रव रटत अटत बिनु नैंननि नीर चुचात ॥
तो बिनु भामिन कोटि कल्प सम, जामिन जाम बिहात ।
सुनि करुनाकरि'व्यासस्वामिनी'पियहिमिली मुसिकात१४६

राग-सारङ्ग—

बिहारी बन बिलपत बिरही ।
जौ न पत्याउ सुनहि श्रवननि दै, हा राधा ! टेक रही ॥
स्याम जपत तो नाम काम सरकी तन चोट सही ।
तू दाता, ह्वै लची परायौ, सर्वसु चाँपि रही ॥
चरन गहत हौं, कहत कछू नहिं, सैंनदै बिहँसि रही ।
'व्यासस्वामिनी'मिली प्रीतम कौं बढ़ाइ सुरत रही॥१५०॥

राग–नट—

समुझि राधिका कीवौ अब मान ।
तेरे दुसह विरह प्रीतम कौ दुखित रहत सखी प्रान ॥
रसमें विरसु न कीजै सुन्दरि, तो तैं को अति जान ।
दारुन बिपति पियकौं, तो बिनु सुखदानि न आन ॥
तुव गुन,रूप, सील,छबि क्यौं कवि पह जात बखान ।
मीठी'व्यास'बसीठी जोरी मिलि कीनौं बन्धान ॥१५१॥

राग-सारङ्ग--

मान तें होत निसा रस हानि।
तो बोली बोलैं बूड़त है, बेग चलहु सुखदानि॥
विलपत कुँज-कुटीर कुंवर की, पीर धीर पहिचानि।
मृत भय दासहि दै अधरामृत जीवय सिरधरि पानि॥
चेतय श्रवनन टेर सुनावहि इहि रव मधुरी बानि।
करसौं उरज मिलाउ चरनु करि गोरी राखहि कानि॥
आतुर चली अली सँग चातुरता बिसरी हित जानि॥
'व्यासस्वामिनी' कण्ठ लगावति, रसिकहि रतिरस सानि १५२

मेरे कहैं न मानति तू, सर्वोपरि मोहन की भामिनि।
प्रानरवन सौं हिलिमिलि खेलि, सरद की जामिनि॥
बलि बलि जाँउ मुखारविन्दकी विहँसि गजगामिनि।
बिछुरि विराजति नहीं 'व्यासकी-स्वामिनि'
ज्यौं घन दामिनि॥ १५३॥

कामसौं स्यामहि काम परयौ।
घन वसन्त वैरिनि मिलि तो बिनु, दीन जानि निदरयौ॥
हा! राधा हा! कुंवरिकिसोरी, विलपत विपतु भरयौ।
दुसैं पङ्क कूपमें बीझ्यौ, कौन करि निकरयौ॥

बरसत मनसिज की पीर अति, पत्ति धीरज न धरचौ ।
जैसैं दृढ वागुरमें अरुझ्यौ सु को जु मृग बिडरचौ ॥
लाल भयौ बेहाल बिरह बस पहिलौ सुख बिसरचौ ।
वृषभ दल गह्यौ अजासुत बचन न सुख उचरचौ ॥
कौन कौन दुख बरनों पियकौ, जो दुख फरन फरचौ ।
'व्यासस्वामिनी' करुनाकरि हरिकौ, सब परताप हरचौ॥ १५४

लाडिली मान मनावौ पियकौ सुख चाहि ।
तो बिनु दीन, मीन ज्यौं जल बिनु, तासौं कहा रिसाहि॥
जलधर अधर राखि मोहन चातक की मेटौ तृषाहि ।
वेगि किसोर चकोरहिं चन्द्रबदन की पाउ सुधाहि ॥
जैसी प्रीति रीति कर आये, तैसी और निबाहिं ।
सुनत वचन करुनाकरि 'व्यासस्वामिनी' मिली ललाहि॥ १५५

पिय पर जियतैं करहि न रोषु ।
तेरे तामस कुमरानौ मोहन मुख पङ्कज कोषु ॥
साँची झूंठी बात कहत तूं, कहत नहीं निरजोषु ।
कवन भवन तें सुन्दर देख्यौ, जाहि लगावत दोषु ॥
उठि चलु वेग जाँउ वलि तेरी, अधर सुधा दै स्यामहि पोषु ।
सुनत वचन प्यारेहि मिलतही, मिट्यौ 'व्यास' कौ सोषु ॥ १५६

राग-नट—

ठाढे लाल कुञ्ज-महल के द्वारें ।
हा राधा ! विलपत मनमथ ड़र सुनरी करत पुकारें ॥
इक इक मूंठि पांच सर वरषत मोहन गात उघारें ।
अँचल कवच उढ़ाउ स्याम उर डारत काम विडारें ॥
तेरौ विरह वढ्यौ है वैरी दिनहीं डारत मारें ।
जीवै मृत तबहि नैननि पर पीन-पयोधर डारें ॥
नैंकु कृपाकरि मुखमहि वरषहि अधर सुधा रस धारें ।
'व्यासस्वामिनिहिं' मिलि नागरु रति,
रन कह भयौ उतारें ॥ १५७ ॥

राग-कमोद—

कह्यौ मानिरी मेरौ भामिनि ।
कुञ्ज-महल तल मोहन विलपतु हा ! हा ! कैसी कामिनि ॥
वेलि विटप विछुरे न विराजत जैसें घन ज्यौं दामिनि ।
ऐसें जोटहिं ओट न सोभा विधु विनु सरदकी जामिनि ॥
इतनौं सुनि उठि चली अली संग, गावत अति अभिरामिनि।
बीचहिं भेटि, मेटि पियकौ दुख,
'व्यासदास' की स्वामिनि ॥ १५८ ॥

वृन्दावन गोरी मानरी मान निहोरौ ।
तो सी चतुर सुजान आन को, मोहन है अति भोरौ ॥
प्रान-रवन के भवन गवन करि, मन महँ धरि हठ थोरौ ।
अति कै कोप ओप नाहिन कछु,स्याम भयौ तन गोरौ ॥
छमि अपराध साधु तेरो उर,पिय हिय सौं हित जोरौ ।
'व्यासस्वामिनी'मिलि प्रीतमसौं मचवति सुरत हिण्डोरौ १५६

सुचित ह्वै सुनि सखी बात नवीन ।
तेरे कोप धोप दै संगी दुखित करे सब दीन ॥
जीव जीविका बिनु क्यौं जीवैं, निराधार आधीन ।
हानि दानि की जाचिक विमुखै, कैसैं चलै प्रवीन ॥
पियत पपीहा घन ही को, वन-सेवत जियहि न मीन ।
प्रान दान कौ देहि चकोरहि भयौ चन्द्रमा खीन ॥
इहै विचित्र जु मानसरोवर हंस होइ क्यौं छीन ।
वन वसि करत विलाप भोगवत करि प्रलय प्राचीन ॥
सुनि मन धीर नहिं पीर सुनि मिले हर्ष करपीन ।
'व्यासस्वामिनी सुखहिं दियौ दुख,करिकैं हरि बल-हीन१६०

स्याम सरोवर कौ जल छीन ।
गोरे गात मेघ वरषे बिनु, तन मन लागत दीन ॥

आस नितम्ब बिम्ब कन्दावलि, त्वचा कमलिनी पात।
नाल मृनाल जघन भुज कर पद कमल सुदल कुम्हिलात॥
लोचन हीन मीन पिय के बिनु, कुण्डल मकर थके।
केस सैवाल निरस भृगन गन, शंख सीप अटके॥
रोमावलि उपवन वहि बोलत वाँनी कोकिल कीर।
मुख इन्दीवर विकसत नाहिंन, कुञ्जत मधुप अधीर॥
सुरत जलद रस पूरित सर,ऊसर,वलि वसि'व्यास'गंभीर१६१

राग-नट—

कौन समै सखी अबहि मानकौ।
सरद निसा गई,अरुन दिसा भई,हौत न उदौ भान कौ॥
दधि भाजन घनघोरि घमर व्रज, सुनियत. सबद गानकौ।
चकई बोलत भँवरि न गुञ्जति तोहि स्वाद नहिं कानकौ॥
विलपत रुदन करत तन छाँड़ै लोभ न करत प्रानकौ।
लेत उसास वास लै तेरी, करि विस्वास दान कौ॥
चौंकि चितै उझकत तेरो पथ, आहट सुनत पानकौ।
धरकि धरनि पर लुठत उठत नहिं,डरु करि पञ्चवानकौ॥
रति के भूखे पतिहि परोसति, भोजन अङ्ग दानकौ।
'व्यासस्वामिनी'दियौ आँचवनु कुंवरहि अधर-पानकौ॥१६२

राग–देवगन्धार—

रति विहातन वन वन भटके।
तो बिनु छिनु जुग सत सम लेखत, मोहन रति गृह अटके॥
सम्भ्रम हरि जुन्हाई भेटत, चकृत पान के फटके।
तव पथ जोवत, रोवत ठाढ़े, तर हरि वंसीवट के॥
जमुनाजल झंपत अति कंपित, मानत नाहिन हटके।
क्यौं करि धीर धरै अलि लम्पट, या मुखकौ मधु गटके॥
इतनौं सुन मुनिव्रत तजि नागरि आई नागर नटके।
'व्यास' आस पुजई, हँसि वस कियौ लालन भौंहनि मटके १६३

राग-गौरी—

मान गढ चढत सखी कत आजु।
स्याम कामवस घेरि सुदृढ कै, करिहै अपनौ काजु॥
तेरे सुभट कटकई जोर तोरि, हित करत अकाजु।
मन सेनापति मिल्यौ बाँह लै, जाहि लग्यौ सब काजु॥
मेरौ कह्यौ सुनहि किनि पियहि, अकोर उरज दै गाजु।
'व्यास' वचन सुनि कुँवरि निवाज्यौ,
स्याम लयौ सिरताजु॥ १६४॥

राग-सारङ्ग—

आवति जाति विहानी राति।
समुझायैं समझत नहिं तूँ सखि, ताऊ पर अनखाति॥

वह देखि चकई पियहि मिलनकौ अति आतुर अकुलाति।
चञ्चल भ्रमरनि भ्रमर मिलन कौ कमल कोष महँ जाति॥
तेरे विरह हमारीऊँ अँखियन, अँसुवा उमगि चुचाति।
सो करि जु तोतैं होइ सयानी, पाँलागति मुसक्याति॥
इतनों सुनि मुनि व्रततजि, नागरि पिय के हिय लपटाति।
विरहत देखि, 'व्यास' निजु दासी,
फूली अङ्ग न माति॥ १६५॥

राग-देवगिरी व गन्धार—

क्यौं मन मानैं गोरी कैसैं इनि बातनि।
वेही काजकौं मनावन आई मान किये कौ
दुख सुख उपजतु देखैं पिय गातिन॥
स्यामलै आपनैं काजकौं बावरे,
बधिक तैं अधिक जानत घातनि।
'व्यास' कौ स्वामी कोकिलाहू तें कपटी अपनी,
चौंप अपन्याइत करि पुनि अन्त मिलै पितु मातनि॥१६६

राग-कल्याण—

सन्देसो कह्यौ दूतिका आनि।
अनबोलैं सब अङ्ग दिखाये, नागरि लेहै जानि॥

बदन पसारि निमेषनि बिनु चितयौ, सिर पर धरि पानि।
कान कुकाइ, गाइ, हँसि, नाच्यौ, धरनि गिरनि मुरझानि।।
पुलकित कम्पित स्वेद भेद तन, अँसुअनि आँखि चुचाति।
मूँदन श्रवन, उसास कण्ठ धरि फारत पट दुखदानि।।
बनमाला तोरति जोरति कर, पाँइ परति मुसकानि।
सीतल भरि कमल उरह धरि, कदलि खम्भ लपटानि।।
और बिपदा सुनि मुनिव्रत तजि छूटी जिय की बानि।
'व्यासदासिके' समुझि बिनोदनि,
कुंवरु जिवाये आनि।। १६७।।

राग-सारङ्ग—

देहि सखी पियहिं प्रानकौ दान।
तूँ अति चतुर उदारसिरोमनि, करत कृपनता मान।।
बन बिलपत, मुख देखे बिनु, दुख पावत रूप निधान।
उठि चलि करुणावन्त कन्त की, तन बेदन पहिचान।।
जियत स्याम तव नाम, गाइ गुन, करि करि रूप बखान।
पतति पतत्र पत्र रव सुनि सुनि, पथ जोवत दै कान।।
सारङ्गनैंनी चली अली सँग, सुनि सारङ्ग की तान।
'व्यासस्वामिनी' रति रन जीति,
हन्यौ नूपुर निसान।। १६८।।

राग-धनाश्री—

तेरे दरसन कहँ सुनि राधा प्रीतम अति अकुलात।
राति विहातन भटकत कुञ्जनि, विलपत काल न जात॥
विसरयौ वेनु रेनु तन लागी, पीरौ पट न सुहात।
गुञ्जा विपति पुञ्ज मनि भूषन, गिरत गात निरधात॥
पुलकित कम्पित स्वेद श्रवत अति नैंननि नीरु चुचात।
तेरे कुच आलिङ्गन बिनु क्यों उर सन्ताप बुझात॥
मिलि 'व्यासकी-स्वामिनी' करुनासिन्धु,
रसिक पीवत न अघात॥ १६९॥

राग-कान्हरौ—

कुँवरि करि प्रान रवनसौं हेत।
तेरे त्रास उसास न आवत, मोहन भयौ विचेत॥
तोहू अछत मदन कदनानल, स्यामहि अति दुख देत।
जल धर-अधर वरषि किनि सींचहिं, सुरत बीजकौ खेत॥
त्राहि विरहि विपदा तें सुन्दरि, कुँवरहि हमहि समेत।
तो विनु वृन्दावन हम कहँ भयौ, कारागृह संकेत॥
आतुर हमहिं निहोरत, पाइँनि परतु, वलिया लेत।
पियहि मिली हँसि 'व्यासस्वामिनी',
सुख सागर कौ खेत॥ १७०॥

राग-सारङ्ग—

गावत प्यारौ राधा तेरौ जसु ।
तेरौई नाम जपत और विलपतु है,
काम कौ स्यामहिं संक सु ॥
कह्यौ न परै दारुन दुख प्यारी,
तेरे विरह मोहन के कण्ठ रह्यौ असु ।
'व्यासस्वामिनी' करुनाकरि राख्यौ,
हरि चाख्यौ अधरसुधारसु ॥१७१॥

मानसरोवर हँस दुखारौ ।
सीतल कमलखण्ड मण्डन बिनु, कैसे होत सुखारौ ॥
नीर छीर नहिं निवरतु प्यासैं विलपतु ह्वै गयौ कारौ ।
मुकताफल बिनु दीन छीन भयौ, जोवन धन कौ गारौ ॥
खञ्जन, मीन मधुप देखे बिनु जानत जग अँधियारौ ।
'व्यास' हँसिनी विहँसि मिली,
निजु अँग चुनायौ चारौ ॥ १७२ ॥

राग–जयति श्री—

करि प्यारी पियकौ सनमान ।
माननि मान मनावौ वलि जाउँ, सुनि बिनती दै कान ॥

सुन्दर सुघर रसिक कुँवरहि तू निज अनुचर करि जान।
तू जीवन धन भूषन हरि कैं, तो विनु सरनन आन॥
तोहू अछत मृदुल उर वेधत, विरह वधिक कौ वान।
अधर पान प्रीतम माँगति सखि, दै विवि उरज प्रधान॥
मदन भुजङ्ग गरल की औषधि, तुव अधरामृत पान।
तेरौ प्यारौ जाचक जाचतु, तोपै जीवन दान॥
तो बिनु दीन छीन विलपत ज्यौं, जल बिनु मीन तजत है प्रान।
सु करु जु तोतैं होइ सयानी, तोसौं कौंन सुजान॥
तो बिनु विपिन भयानक, कुञ्जमहल अति करत विथान।
फूल त्रिसूल, दुकूल दहन सम, चन्दन किरिन जनु भान॥
धीर समीर तीर से लागत, करत भँवर पिक गान।
मोर मुकट सिर भार हार सखि, चन्दन गरल वितान॥
कहौं कहांलौं, कहौं धीरकी पीर, सखी जिय जान।
हा राधे, हा कुँवरिकिसोरी, विलपत रूपनिधान॥
सुख साधन सब दुखभाजन भये, कहत न बनैं बखान।
करुनासिन्धु 'व्यास' की-स्वामिनी,
पियहि मिली तजि मान॥ १७३॥

कोप करति कत बात कहेतें।
रास रजनि में विरस होत सखि, पियसों रुषि रहेतें॥



धरमु न रहतु नाइका कौ कछु, पतिकौं विपति सहेतें।
कीरत विमल बढ़िहै जुग जुग प्रीतम ओर निवहेतें॥
वलि बलिजाउँ रहै न कछू सुख चञ्चल मन उमहेतें।
यह सुनि पियके हिय लपटानी 'व्यासहि' चरन गहेतें॥१७४

राग-सारङ्ग तथा विलावल—

तुम विनु स्याम भयौ अति दीन।
जैसैं, जल विनु जेठ की सलिता, कैसैं जीवत मीन॥
कृपन गाँउँ महँ कैसैं जीवै, जाचिक वपुरा क्षीन।
यौं तो विनु वृन्दावनकौ सुख, कुँवरहि लागत खीन॥
चन्दहि लग्यौ चकोर व जैसैं चातृक घन आधीन।
ऐसैं तेरे अङ्गन के रस, जीवत कुँवर प्रवीन॥
जैसैं सकलकला गुन प्रगटत, नहिं जानत गुनहीन।
ऐसें 'व्यासस्वामिनी' कुच विच प्रीतम कीनौ लीन॥१७५॥

राग-मारू व मालव—

आवत जात सवै निसि निघटी,
अजहूं सुनि मान निवारिये मानिनि।
तेरौ मगु जोवत मनमोहन,
तुव पटितर कोऊ और न भामिनि॥

तुही राज, तुही पाट, तुही तन, तुही मन,
तुही प्राननकी प्यारी गजगामिनि ।
कुञ्जमहलमें तलप साजि बैठे,
वेगि पाँउ धारिये'व्यासकीस्वामिनी'॥१७६॥

राग-केदारौ—

रजनी विहान होत तुव न मान हीनौ ।
काहेकौं कुँवरि ऐसौ हठ कीनौ ॥
चन्दा-दुति मन्द, तारागन छबि छीनौ ।
तूव नारिनि सरस लागतु नवीनौ ॥
कुमोदनी कुन्दनकी कली कुम्हिलानी ।
रति-रस रिसिभरी तैं न प्रीति ठानी ॥
अरुनवरन दिसा रवि प्राची अनुरागी ।
नैंनकोर ओर निरख तू न प्रेमपागी ॥
विकसन लागे कमल,मधुप मधुर बोलै ।
वाँके, बड़े टौनहा, ये तौन नैंन खोलै ॥
'व्यासदासि' कहत ही,कह्यौ मानु मेरौ ।
जानौगी लालजू सौं मानु रहै तेरौ ॥१७७॥

कहौं कासौं समुझै को बात ।
जानै जान सयान कहैंहूँ, मानैं मन अकुलात ॥
कैसैं जियै चकोर कहा पियै चन्दहि गगन समात ।
पियै न वारि विडारयौ चातृक,करि मन घनकी घात ॥
दीन न होत मराल, मीन-कुल, सर सूखै मरिजात ।
माधूकरि न माँगत मधुकर गिरत कमलदल पात ॥
वारि वियारि झकोर दुखित ह्वै गिरि पर मेघ चुचात ।
कनक चुरायैं बिनु कनक चुरियैं,सहज सुखी न अघात ॥
मृगतृष्ना लगि दुहुँदिसि धावत,व्याकुल मृग न बुझात ।
'व्यास' बचन सुनि मुनि मिले खेलत,
सोच सकुचि पछितात ॥ १७७ ॥

राग-कमोद—

सब निसि ढ़ोवा करति किसोरहि भोर मान-गढ़ टूटयौ ।
गोरे गात गढौई गाढे मनु सेनापति कौ सतु छूटयौ ॥
स्याम-अङ्गसौं निकस्यौ जो दल छलवत ते जनु खूटयौ ।
उरनि डरनि रनभूमिन छूटो,जदपि काम सुभट हूं कूट्यौ ॥
साहसु बांह सुनि राखि सहजही सुख सागर जनु फूट्यौ ।
'व्यासस्वामिनी' मिली वांह दै,
पुनि लचि लाल न लूट्यौ ॥ १७८ ॥

राग-नट—

तू नेंक देखिरी प्रीतम कौ मोहन मुख।
गौर चरन पर, अरुन स्याम छवि,
मनौ विधुकुल सौं करत कमल रुख॥
अरु लोचन जल विन्दु विराजत,
मनहुँ मधुप मधु वमत मानि दुख॥
आरत जानि आनि उर लालहि,
'व्यासस्वामिनी' देति सुरत सुख॥ १८०॥

राग-कान्हरौ—

कहा भयौ जो प्रान रवन तें वारक चूक परी।
ठाकुर लेइ सँवारि वेग ज्यौं, सेवक तें विगरी॥
तेरे डर कर-कांपत पियके, पियरि परी मुखरी।
अलकनि ओट पलक नहिं नैंननि हिरनी सी विडरी॥
अधर दुरावत उरहि धकधकी, सुध बुध सब विसरी।
लेति उसास, 'व्यास' प्रभुकौ उपहास करहि जिनरी॥१८१

राग-कदारो व कमोद—

पीन पयोधर दै मेरी दीनैं।
अधर रस मधु प्याइ जिवावहु, विरह रोग वल हीनैं॥

ओली ओटत चोली के बंध, खोलन दै आधीनै।
कुच गहै चुँवन दानु लैंन दे, चरन कमल रज लीनैं ॥
अपनें अङ्ग नगनिं के घर में, मिलनदै स्याम नगीनैं।
'व्यासस्वामिनी' सुनि रति सलिता पोपत मोहन मीनैं॥ १८२



मानकी मलार

राग-मलार—

मान विमान चढ़ी तू धावति।
पाछैं लाग्यौ फिरत कुँवरि ताहू तू मुख न दिखावति॥
तेरी कानि करत वन निविडनि,कुञ्जनि निकस न पावति।
तो विनु कामबिवस स्यामहिं कत वन वीथी अरुझावति॥
सनमुख हरि आये सहचरि ह्वै,रचकि कण्ठ लपटावति।
दै चुँवन हँसि'व्यासस्वामिनी'प्रगट वैदि वैरावति॥ १८३॥

निसि अँधियारी दामिनि कौंधति,
राधिका प्यारी बिनु कैसे रहै वृन्दावन।
घुमरि घुमरि घन धुनि सुनि दादुर,
मोर पपीहा सुघर मलार सुनावन॥
उन्मद मदन महीपति दल सजि,
विरही कौ बल धीरज हलावन।

कोटिक कहि कहि मैं समुझाई,
'व्यासस्वामिनी'मान न कीजै सुनि आवन१८४

सावन मान न कीजै माननि ।
काम नृपति दल साजै आवत, पठयौ बादर धावनि ॥
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, कोकिल सब्द सुहावति ।
गर्जत सावन आयौ वन-घन,दामिनि-असि चमकावनि ॥
निसि अँधियारी विहारी आयौ, पैयाँ लागि मनावनि ।
'व्यासस्वामिनी'हँसि उर लागि तनकी ताप बुझावनि॥१८५

होत कत पियहि मिलनकौं सीरी ।
उठि चलि वेगि राधिका,यह देख पश्चिम खसित ससीरी ॥
तेरे नाम, रूप, गुनकी छबि मोहन उर माँहिं बसीरी ।
आवत जात मनावत 'व्याससखी' की वैस खसीरी ॥१८६

मनावौ मानिनि मान अलीरी ।
विलपत विपिन अधीर स्याम, कहि पठई बात भलीरी ॥
घन दामिनि कबहूं नहिं बिछुरत मधुकर कमल कलीरी ।
सारस कोक मराल मीन जल, प्रीति रीति कुसलीरी ।
सहचरि वचन रचन सुनि सुन्दरि, मुरि मुसकाइ चलीरी ।
'व्यास'त्रास तजि विहरत दोऊ, रति सँग्राम वलीरी॥१८७

स्यामकौ काम करत अपमान।
सुन्दर सुघर कुलीन दीन अति, दाता रूप निधान ॥
तासौं रूसत क्यौं मनमान्यौं जान्यौं तेरौ जान।
साधुहि हठ अपराध लगावति, व्यौरौ करति सयान ॥
तेरौ नाउँ जपतु बिलपतुरी, करतु रहतु गुनगान।
मोहू कत बतरस बौरावति बाढ़तु बहुत बखान ॥
बचन सुनत उठि चली अली सँग, छौड्यौ निजु करि मान।
पियके हिय हँसि लगी 'व्यासकी-
स्वामिनी दै जिय दान ॥ १८७ ॥

मान न कीजै माननि वर्षाॠतु आई।
अङ्ग सङ्ग मिलि गाउ राधिका,
राग—मलार सुहाई ॥
बिनु अपराधहि रूसनौं छाँड़िदै,
श्री वृषभान दुहाई।
'व्यासस्वामिनी' साँवरे सुन्दर,
पाँइनि लागि मनाई ॥१८८॥

श्रीलालजू बचन सखी प्रति

राग-विलावल—

बोलन लागेरी तमचुर मधुर मधुर बोल ।
अजहूं न आई प्रानप्यारी फूलन लागे कमल टोल ॥
वरुनदिसा खसत ससि कञ्जकोप मधुप लोल ।
मदन दहन ताप ज्वलित अङ्गराग कुसुम झोल ॥
पिय विलाप सुनत निकट मिलत कम्पु पुलकित कपोल ।
विहरत 'व्यासस्वामिनी' मोहन,
वस कीनौं बिनु मोल ॥१६०॥

राग-धनाश्री—

देखि धौंरी इहिं मग राधा आवति ।
तन चमकत भूषन धुनि सुनियत, अरु गुनगति लै गावति॥
अद्भुत राग रागिनी घन वरषत, आनन्दसिन्धु बढ़ावति ।
सौंधौ महकि रह्यौ तन गोरे अङ्ग परसि सब ताप बुझावति ।
'व्यासस्वामिनी' उझकि औचका,
पियहि हियसौं लावति ॥ १६१ ॥

राग-सारङ्ग--

तन मन धन न्यौछावरि ताहि हौं दैहौं,
जो मोसौं कहै वेगि राधा है आवति ।
ताहीकौ हौं सदाई सेवकहौं जोई प्यारीहि,
रूसी छलबल कै मनावति ॥
और सब भली यै सखी सहेली,
हित चित करि तेरे जिय भावति ।
पुजवति मेरी आस 'व्यास' दासी,
चौंप लागैं मोहि तोहि मिलावति ॥ १९२ ॥

नैंकु सखी राधा पुनि आवति ।
नूपुर धुनि सुनियतु, हैं निकट ही विकट,
वीथिन कोऊ ऐसैंहीं गावति ॥
अरु गोरे अँगन कौ परिमल महकत,
मैं पहिचान्यौं मदन बढ़ावति ।
इतनी कहत 'व्यास'की स्वामिनि रहसि विहँसि पिय,
उर लागी सुरत पुञ्ज कुञ्जनि बरषावति ॥१९३



सखी वचन श्रीलालजू प्रति

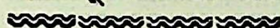
राग–कान्हरौ वागेश्वरी (मूलताल) व सारङ्ग—

अवहीं आवैगी पिय प्यारी ।
काम पोचु अति, स्याम सोच तजि सुनहु मते की,
बात श्रवन दै तनक रही उजियारी ॥
जैसियै तुमहिं चोंप तैसियै उनहि जानि,
मोहि सन्तोष आनि जाउँ वलिहारी ।
धीर धरहु मन, पीर सहहु तन तुम जु कहावत,
सूर सब ही विधि, कहा करैं वह नारी ॥
अरवरात, हौं अब ही देखि आई,
विकट वीथिन धाई, देह न सिंगारी ।
'व्यास'की स्वामिनि दामिनिसी चमकति, लखी न परति,
अङ्ग अङ्ग लपटानी विहरत विहँसि विहारी ॥१६४॥

श्रीलालजूके वचन सखी प्रति

राग-धनाश्री—

गोरी एक कहै, सखि सुनि हित बात कहौं ।
प्रान मान सौं बैरु बढ्यौ क्यौ दारुन विपति सहौं ॥



दुखकी राति विहात न सुख बिनु, क्यौं करि कुञ्ज रहौं।
को तन ताप बुझावै कहिधौं, काके पाँइ गहौं ॥
जान अधीर पीर को मेटै, जानति जुगति न हौं।
जोवन-संतहि मिलत 'व्यास'कहि आनन्द लै निबहौं।१६५

राग—कमोद—

सहचरि मेरौ सन्देसौ कहियहु।
करि मनुहारि, वारि जल पीजहु पदपङ्कज गहि रहियहु॥
जो कछू कहैं किसोरी मोसौं, तू सब सनमुख सहियहु।
मेरी ओरतैं बड़ी बेर लौं, कुच आँकौ भरि रहियहु॥
मेरे दुख सागरहि सोषि सुखसागरकौ जल थहियहु।
इतनौं करत 'व्यासस्वामिनि' कह,
पिय हिय ओर निबहियहु ॥ १६५ ॥

राग-गौरी—

कौनसौं कहिये दारुन पीर।
सुनि ललिता बनिता बिनु छिनु छिनु, जैसे सहत सरीर॥
जीव न रहतु जीविका बिच्छुरैं, काकी कुञ्ज कुटीर।
मदन दहन उर जारत उमगि बुझावति लोचन नीर॥
प्रान पयान करतु अनदेखैं, (देखें) बिनु धरत न धीर।
दरसन आस उसास रही,दुखदानि साखिनि की भीर॥

भूषन वृष पूषन तन लागत धूमकेतु सम धीर।
मालावलि व्यालावलि, मुकुट कुकुट, वंसी खरतीर॥
कण्टक किसलय सेज, चन्द्रमा चन्दन गरल समीर।
सुनत भयानक मोर चकोर हंस पिक मधुकर कीर॥
करुनाकरि सहचरि लै आई, ये दोऊ रति रनधीर।
विहरत 'व्यासस्वामिनिहि' बाढी सुरत नदी गंभीर॥१९७॥

राग-जयतिश्री—

क्यौं सखी जामिनी जाम विहात।
कछु बाधा न रही, राधा बिनु प्रान छूटि हैं प्रात॥
दुख सागर महँ मोहि छाँड़ि गई, भामिनि भरि अधरात।
कुञ्ज महल महँ अन्धकूप जनु, कोऊ न पूछत बात॥
हौं बलि ताकी ललिता, मोहिं मिलावै गोरे गात।
तब नैंननि तैं मैन निकसि है, जब देखों उर जात॥
सुनि आरत पुकारत, प्यारी पियहि मिली अकुलात।
पियत किसोर चकोर वदन विधु अधर सुधाहि चुचात॥
रति लम्पट नटनागर सरवसु रस लूटत न अघात।
'व्यासस्वामिनी' कौ रस सागर,
स्याम गात न समात॥१९८॥

राग-केदारौ तथा सारङ्ग—

चलि ललिता क्यौंहू कै वोलौ,
राधा माननि आवै हौ ।
अधर विधुहिं मुखमें वरपावहि,
प्राननि मरत जिवावै हौ ।
वरषत मदन कामकी चोटहि,
उरजनि ओट बचावै हौ ।
राधावल्लभ गहि भुज पल्लव,
दुखितहिं कण्ठ लगावै हौ ॥
सुनि विहँसी वृषभाननन्दिनी,
लालहिं मोद बढ़ावै हौ ।
'व्यासस्वामिनी' सब आसा पुजवति,
हँसि रति नाच नचावै हौ ॥१६६॥

श्रीलालजू श्रीलाडिलीजी प्रति

राग-कान्हरौ—

जो तू राधा मन क्रम वचन परम हितु मोपर,
करि आई तौ वलि वलि वलि कुमया नहि कीजै ।

नैंकु सुदृष्टि कै मोतन जो चितवौ,
तौ अपनौ जीवन जनम सुफल कर लीजै ॥
तेरे रूप रँग रस चितु चहुँट्यौ,
तोसी कौंन जाहि मन दीजै ।
तौसी तुही तातें 'व्यासकी स्वामिनि'
कण्ठ लगाइ अधरामृत पीजै ॥२००॥

राग-गौरी—

मेरे तू जिय में वसति,
नवल प्रिया प्रान प्यारी ।
तेरेई दरस परस राग रँग उपजत,
मान जानि करै करौं हा हा री ॥
तूही जीवन तूही प्रान,तुही सकलगुन निधान,
तो समान कोऊ और नाहिंन मोकौं हितकारी।
'व्यास' की स्वामिनि तेरी माया तें,
मैं पायौ नाम विहारी ॥ २०१ ॥

श्रीकिसोरीजू के प्रेमपगे बचन

राग-मलार तथा कल्याण—

बोल बन्धान न मान करौ अपराधहि हौं न छमौंगी ।
लवा लूतरी अब न मानि हौं, देखत कछू कहौंगी ॥

दुःरुख दुभाषहि साख नहीं कछु, इक रुख दुखहि डहौंगी।
आतुर होइ न चतुर स्याम सुनि, हौं फिरि पाँइ गहौंगी।
वरवट लट पट गहत 'व्यास' की,
प्रीतिहि लै निवहौंगी ॥ २०२ ॥

राग–धनाश्री—

सुनहि पिय जियतैं हौं न रिसानी।
तुम्हरे मनकौ मरमु लेतिही, अरु चित काज निसानी ॥
सांचेहूं दुख पायौ, सुन्दर मुखकमल कान्ति कुम्हिलानी।
मेरौ कोप जानिवौ झूँठौ सदा मौन अभिमानी ॥
प्रगटी ऊपर सवै कालिमा भीतर कौने जानी।
उर न समाति विपति की सम्पति, सुनियत कपट कहानी ॥
लेत उसास आस करि हरि हरि कहि सहचरि मुसिकानी।
समुझि विनोद 'व्यासकीस्वामिनि',
स्याम कण्ठ लपटानी ॥ २०३ ॥

राग–जयति श्री—

कबहूं अव न रूठिहौं प्यारे।
सदा तूठि हौं सुख दै प्रीतम कृतहि न मानत कारे ॥
तुम वड़जीव जिविका हौं, पिय तुम अँखियाँ, हौं तारे।
तुम मन, हौं मनसा, तुम चित, हौं चिन्ता प्रान पियारे ॥

तुम सरीर हौं अन्तरजामी हौं धन तुम रखवारे।
तुम विषई हौं विषै, भोगता तुम, हौं भोग ललारे॥
हौं चाँदिनी, चकोर तुम हौ, हम घन, तुम चातक वर न्यारे।
हौं जलरुह, तुम अलि, हौं जल, तुम मीन अधीन हमारे॥
हम तुम वृन्दावनकी सम्पति दम्पति सहज सिंगारे।
'व्यासदास' रसरासि हमारी, लूटति कोटि विसारे॥२०४॥

राग-कान्हरौ—

मान करत मैं कीनौ फिरि पाछैं पछितानी।
रस महँ विरस कियौ क्यौं प्रीतम,
सुनत तुम्हारी करुना वानी॥
हम तुम एक प्रान द्वै देही,
सहज सनेही ज्यौं पय पानी।
कहनि, रहनि, गति, मति रति एक,
प्रीति रीति क्यौं जाति बखानी॥
मेरौ तनु तुम्हरौ भूषन धन,
यहै हिलग सकल जग जानी।
तातें तुम सौं लाड करति हौं,
जातैं तुम नाहिंन अभिमानी॥

जो हौं करति सोई सव छाजति,
तुमसो पति, वनसी रजधानी।
ललितासी सहचरि अनुगत अब,
'व्यासदासि' मम हाथ विकानी ॥२०५॥

चोज-रस

राग-कमोद--

कहि यासौं तोहि कौन सिखाई।
तू गोरी यह स्याम किसोरी धन्य तुम्हारी लुनाई॥
इहिं वन कबकौ वासु तुम्हारौ कहि मोसौं समुझाई।
अद्भुत रूप तुम्हारौ देखत, नैंननि नहीं अघाई॥
तुम राधा मोहन हूं तें सूझत अङ्ग अङ्ग अधिकाई।
कोटिक कवि रसना पावैंहूं मुख छवि कहत न जाई॥
इतनौं सुनत मान तजि माननि कौतिक देखन आई।
'व्यासस्वामिनी' नागर हँसि कैं सरस हियैं लपटाई ॥२०६॥

राग-देवगिरि—

आज वन एक कुंवरि बनि आई।
ताहि देखि रीझे मनमोहन पिय तातैं तूँ न मनाई॥

बाजत ताल मृदंग संग उहि अङ्ग सुधँग दिखाई ।
गावति हस्तक भेद दिखावति, नख सिख स्याम बनाई ॥
रास रसिकसौं हिलिमिलि खेलति, सबबिधि सुघर सुहाई ।
मोहि पत्याहि न तौ तुही चलि वलि वृषभान दुहाई ॥
बचन मानि धुनि सुनि दुखसुख करि सहचरि उर लपटाई ।
बिन कुच सकुच समझि 'व्यासस्वामिनी',
हँसी रसिक रिझाई ॥ २०७ ॥

राग-विलावल—

ऐसी कुंवरि कहाँ पिय पाई ।
राधाहूं तें नखसिख सुन्दर अबलौं कहाँ दुराई ॥
काकी नारि कौनकी बेटी, कौन गाँव तैं आई ।
सुनी न देखी ब्रज वृन्दावन, सुधि बुधि हरति पराई ॥
याकौ सुभग सुहाग भाग अति, भाग जुवति मनभाई ।
याही के रसवस ह्वै तुम, वृषभानसुता विसराई ॥
यह विनोद सुनि देखन आई रवकि कण्ठ लपटाई ।
'व्यासस्वामिनी' विहँसि मिली तहाँ,
सरस सुधँग नचाई ॥ २०८ ॥

राग-धनाश्री—

सुनि राधा, मोहन हौं दूती, कपट वचन कहि कहि बौराई ।
तोहि मनावन मोहि पठै पुनि दूती एक अनत दौराई ॥

मैं अपनौं सौ बहुत कियौ पै,
कहा करौं लम्पट अधिकाई।
अति शूरौ जौ चनावघूरौ,
तौ पूरौ गिरि भेदि नु जाई॥
चलि हौं कौतिक तोहि दिखाऊँ,
सुन्दरि एक ललन पह आई।
तोहूं तैं गुन रूप अवगरी,
मानहुँ रंक परम निधि पाई॥
इतनौं सुनि उठि चली अली सँग,
रुचिकरि कुंवरि कण्ठ भुज नाई।
अङ्गनि अङ्ग परसि हँसि दोऊ,
'व्यास' गिरे आतुर उरझे मुसकाई॥२०६॥

राग-गौरी—

मोहन की देही उलट रचीरी।
भई स्याम तैं पीत वरनि दुख तरनि प्रताप तची री॥
नैंननि सर बूड़त विरह दहन तैं जरत बचीरी।
हा राधे रव श्रवन सुनतही अजहूं न निठुर लचीरी॥
चन्दन चन्द पवन वन पनकरि दुखकी रासि सची री।
तो बिनु अनत न सरन मीत कहँ मीत सभा वि-रची री॥

इतनी सुनि उठि चली अली सँग, अङ्ग सुधँग नचीरी।
'व्यासस्वामिनी' रतिरस वरषति रति रन कीच मचीरी॥२१०

राग-विलावल—

कहैं न पत्यैहै कोऊ बात।
स्याम काम वस गोरे ह्वै गये, राधा कैसे गात॥
जैसौई ध्यान धर्यौ तैसैंई भये अधर गण्ड उर जात।
नखसिख अङ्ग-अङ्गनि मोहियति, देखत नैंन सिरात॥
वह गुन रूप तोहूमें हैं सखि, फूल झरत मुसकात।
गज मराल गति निरखत मोहे रति मनसिज संघात॥
अपनी जोरिहि भेंटयौ चाहत, ललिता की बलिजात।
तैंही रसमें विरसु कियौ अब कौन काज पछितात॥
कण्ठ बाहु धरि चली अलीकैं, सुनि अद्भुत अकुलात।
'व्यासस्वामिनी' परसत मोहन, धरनि गिरे लपटात॥२११॥

राग-देवगन्धार—

कोऊ राधहि देहु जनाउ।
ठाढ़ी सखी कुञ्जकैं द्वारैं कुंवरि वेग दै आउ॥
कौतुक एक अचम्भे कौ सखि, निरखत नैन सिराउ।
इन तुम ऐसै सुन्यौ न देख्यौ कीजै या पर भाउ॥

सुन्दरि एक हौंन आई तव, सहचरि करि चित चाउ ।
मेटन कहति कुटेव कुँवरि की, छलवल करति सहाउ ॥
यह सुनि आनि पाँउ गहि भेंटि मेटि दुख मुख दिखराउ ।
'व्यास' आस मोहनकी पुजई मिटि गयौ बात वढाउ ॥२१२

राग-देवगन्धार—

किसोरी देखी वनमें जात ।
ता विनु दीन छीन भयौ डोलत, कोऊ न बूझत वात ॥
तेरीसी अनुहारि नारि के, सबै लुभ्यारे गात ।
चितवत चलत अधिक छवि उपजत, कोटि मदन सर घात॥
कहि मोसौं ब्योरौ तू अपनौं, अधर नैंन मुसिकात ।
'व्यासस्वामिनी' वार न लाई, स्याम कण्ठ लपटात ॥२१३

राग-सारङ्ग—

मोहन मुख देखत छूटयौ मान ।
नैंन लालची हँसि लपटानैं, छवि महँ दब्यौ सयान ॥
मन्दहँसनि सबकौ धीरज हरि चित्त चेत्यौ करि गान ।
घूँघट पट उभयौं चलि सैननि, लग्यौ मैनकौ बान ॥
विकल जानि गहि पानि आनि उर, विरच्यौ सुरत वितान।
'व्यासस्वामिनी' पियहि सुनायौ, रति रनकौ जु निसान॥२१४

अनुकरण रस

राग-विलावल—

दम्पति कौ सौ रूप भेष धरि,
सहचरि वृन्दावन महँ खेलति।
एक स्याम दूजी राधा ह्वै,
मनसिज वस कण्ठनि भुज मेलति॥
राधा मान कियौ तिहिं औसर,
हरि आये दूती ह्वै जु मनावन।
सकुची देखि कहत तव माननि,
कत आये तुम बदन जु दिखावन॥
फिरि आतुर चातुरता कीनी,
दगा दूती कर पाँइ गहे।
'व्यासदासि' रसरासि हँसी तव,
चारयौ लटकि रहै॥ २१५॥

मानकरि कुञ्जनि कुञ्जनि खेलनि।
पिय की पीर जानि व्याकुल ह्वै,
स्याम स्याम गहि वोलनि॥
सम्भ्रम मिलि भेंटत मेटति दुख,
चिवुक चारु टक-टोलनि।

सुनहि न पियकी चिन्ता तजि,
मसि सम लै घसत कपोलनि ॥
सुनत निकट नटनागर डर,
करि हँसि कँचुकि बन्ध-खोलनि ।
कुच-गहि चुँवन कियौ लियौ मनु,
लट अञ्चल झक-झोलनि ॥
कोककला कुल प्रगट करन,
सैंननि मैंननि तक-तोलनि ।
'व्यासस्वामिनी छल बिनु प्रीतम,
वस कीनौं बिन मोलनि ॥ २१६ ॥

राग-सारङ्ग व विहागरो—

सखी अनुसरत स्याम रिसात ।
समुझि अनादर रसिक उजागर, कण्ठ उर लपटात ॥
नेक टेढ़ी भोंह के डर, नैंननि नीर चुचात ।
मनहुँ मुक्ता चुनत बाल मराल चिंचु न मात ॥
मानहुँ कञ्चन कमल के रस लोभ अलि अरुझात ।
वदन चुंवन करत वरवट सुनत परिभव वात ॥
कुटिल लोचन देखि तिहिं छिनु श्रवत श्रमजल गात ।
मनहुँ चन्द तुपार वरषत, सरद पुरइन गात ॥

पीठि दीनैं होत सनमुख करनि गहि उर जात ।
मनहुँ जुग जलजात उपवन हँस चरन सुहात ॥
अब न ऐसौ मान कीजै, नमित कै तव गात ।
'व्यास'प्रभु की गति न जानत,विरस कवि सनिपात ॥२१७

रास रस

नित्य निरत रस

राग-कमोद—

कुञ्ज कुञ्ज प्रति रति वृन्दावन, द्रुम द्रुम प्रति रति रँग।
बेलि बेलि प्रति केलि फूल प्रति फल प्रति विमल विहँग॥
कण्ठ कण्ठ प्रति राग रागिनि सुर प्रति तान तरँग।
गौर स्याम प्रति स्याम वाम प्रति अङ्ग प्रति सरस सुधँग ॥
मुख प्रति मन्द हास्य,नैंननि प्रति सैंन, भौंहनि प्रति भँग ।
रास विलास पुलिन प्रति नागरि प्रति नागरि कुल सँग ॥
रूप रूप प्रति गुनसागर, सहचरि प्रति ताल मृदँग।
अधरनि प्रति मधु, गंडनि प्रति विधु उर प्रति उरज उतँग॥
कहत न आवै सुख देखत मुख मोहै कोटि अनँग।
'व्यासस्वामिनी' राधहि सेवहिं,स्याम धरे बहु अँग ॥२१८

राग-सारङ्ग व सूहौ—

विराजमान आन वृषभानकुँवरि गान करति,
रूप गुन निधान, सुभग स्यामभामिनी।
राग तान वान लगत व्यौम जान मान डगत,
कोटि चन्द मन्द, थकित कामकामिनी॥
अङ्ग वर सुधङ्ग नचति देखि सुघर,
सभा लजति मेघ दामिनी।
भ्रुवविलास मन्दहासि, नैंन बल विनोदरासि,
कुँवरि कण्ठ पासि दासि व्यासस्वामिनी॥२१९॥

राग-सारङ्ग—

अङ्ग अङ्गप्रति सुधङ्ग रङ्ग गति तरङ्ग सङ्ग,
रति अनङ्ग मान भङ्ग मनि मृदंग बाजै।
सुर बन्धाँन गान तान मान जान गुननिधान,
भ्रुव कमाँन नैंन वान सुरत विवान छाजै॥
उरप तिरप, सुलप, सुघरि अलग लाग लेति,
कुँवरि वृन्दचाल ताल रसिक लाल लाजै।
'व्यासदासि' रँगरासि, देखति मुख सुख विलास,
काम विवस स्याम वाम सुरत साज साजै॥२२०॥

अँग अँग सरस सुधङ्ग रंग रचत, नांचत वृन्दाबन चारी।
विविध वरन मन हरन वसन, तन भूषन भूषित पिय प्यारी॥

ताल मृदंग संग ललतादिक ललित बजावति करतारी।
मोहन धुनि सुनि मुनि मन मोहे खग मृग कुल मुनिव्रत धारी ॥
राधा गुनसागर अगाध पतिहि रिझावति गति न्यारी।
औघर सुघर मान महँ मोहन धाइ धरी उर सुकुमारी ॥
अद्भुत छबि कवि कहि न सकत कछू हँसत लसत सोभा भारी।
व्यासस्वामिनी के पटतर कहूं त्रिभुवन में उपमा हारी ॥२२१

राग-गौरी—

प्यारी राधा के गावत नाँचत,
मोहन रीझि रहे सिर नाइ।
तिरप मान बन्धान तान सुनि,
विथकित ब्रज कन्या रही मुरझाइ ॥
गुन सागर की हो सीमा उमगी,
सकत न कोटिन मदन थहाइ।
'व्यासस्वामिनी' अधर सुधा दै,
नवलकुँवर लयौ है कण्ठ लगाइ ॥२२२॥

राग-टोडी—

देसी सुधंग दिखावति नैंननि,
हस्तक मस्तक गति भ्रुव भँग।
कण्ठ सुकण्ठ राग रङ्ग राची,
मान लेत मुख मुखर मृदङ्ग ॥

कटि त्रुटि मानहुँ ग्रीव चरन मिलि फिरत,
कुलाल चक्र सो लखत न बनत तरँग।
व्यासस्वामिनी कौ कौतुक देखत बिनु पखियन अँखियाँ,
पियकी खग सँग फिरत दोऊ श्रवन कुरँग ॥२२३॥

राग-सारङ्ग—

कृष्नभुजङ्गिनि वेंनी नाँचति गावति गौरी आसावरी।
नाहु वाहु अँसनि पर विलसति उपजति कोटिक भावरी॥
वालय वालकिन्नरी सी सुनि विछुरत वन मृग मावरी।
खग नग धम पर स्वर बदले पुलकित वन दावरी॥
सुखसागर की सीमा उमगो, विथा तरँगिनि नावरी।
'व्यासस्वामिनी' की उपमा कह,
कौंन कामिनी बावरी ॥ २२४ ॥

राग-आसावरी—

नाँचत नव रँग सँग अँग छवि न माई।
गावति मनभावति गति देसी दिखराई॥
सनमुख रुख स्याम गौर गातनि महँ झाई।
विकसित वदनारविन्द सोभा अधिकाई॥

चरन पटकि नैंन मटकि वँक भ्रुव चलाई।
हस्तक चल मस्तक कल कुच वर सुखदाई॥
कौतिकनिधि राधाकौ गुनगन कह्यौ न जाई।
काम विवस स्याम 'व्यासस्वामिनी' उरलाई॥२२५॥

राग-कल्याण—

साँवरे गोरे सुभग गात, सुरति रस चुचात,
देखत नैंना सिरात, रोम रोम सुख साँति।
सुरङ्ग वीथिन मह गावत नाँचत नव अँग अँग रँग भरे,
अँसनि सुख बाहु धरि, लटकति लट पाँति॥
पलटे दुहूं निचोल, बोलत मधुर बोल,
हस्त कपोल लोल सोभित छवीली भाँति।
बाजत ताल मृदंग, देखि व्यासदासि,
रँगरासि फूली न अँगनि समाँति॥ २२६ ॥

राग-केदारो—

स्याम नटुवा नटत राधिका संगे।
पुलिन अद्भुत रच्यौ, रूप गुन सुख सच्यौ,
निरखि मनमथ बधू मान भंगे॥

तत्त थेई थेई मान सप्तसुर पट गान,
राग रागिनी, तान श्रवन भंगे।
लटकि मुँह मटकि, पद पटकि, पटु झटकि,
हँसि विविध कल माधुरी अँग अँगे॥
रतन कंकन क्वनित किंकिनि नूपुरा,
चर्चरी ताल मिलि मनि मृदंगे।
लेति नागर उरप कुँवरि औघर तिरप,
'व्यासदासि' सुघर वर सुधंगे॥ २२७॥

राग-गौरी—

पखावज ताल रबाब बजाइ।
सुलप लेत दोऊ सनमुख मुख-मुसकित नैंन चलाइ॥
पद पटकनि नूपुर किंकिनि धुनि सुनि न नवेरी जाइ।
उरप मान मँह, तिरप मान लै, सुर बन्धान सुनाइ॥
देशी सरस सुधँग सुकेसी नाँचत पियहि रिझाइ।
काम विवस स्यामहि तकि स्यामा रवकि कण्ठ लपटाइ॥
गुनसागर की सीवाँ उमगी कवि न छविहि कहि जाइ।
व्यासस्वामिनी कौ सुख सर्वसु, लूटत मोहन राइ॥२२८॥

श्रीवन रास-रस

राग-सारङ्ग—

वन्यौं वन आजुकौ रस-रास ।
स्यामा स्यामहि नाँचत गावत, बाढ़्यौ विविध विलास ॥
सरद विमल निसि ससि गो मण्डित, दुहुँ दिसि कुसुम विकास ।
भूषन पट अटके नटनागर, उड़त पराग सुवास ॥
अँगनि कुँवरि अनँग नचावति, भृकुटीभँग, मुखहास ।
नवनागरि इक निसान बजावत,
सुनत सकल सुख 'व्यास' ॥२२६॥

रास रच्यौ बन कुञ्जविहारी ।
सरद मल्लिका देखि प्रफुल्लित, बनि आई पिय प्यारी ॥
वाम स्यामकैं स्यामा सोभित, जनु चाँदनी अँधियारी ।
भूषनगन तारका तरल वदनचन्द छवि उजियारी ॥
कोमल पुलिन कमल मण्डल महँ मण्डित नवलदुलारी ।
बाजत ताल मृदंग सँग नव अँग सुधँग सिंगारी ॥
रति अनँग अभिमान भँग ह्वै, पदरज घसत लिलारी ।
ताँन वाँन सुर जान विमोहत, मोहन गर्व प्रहारी ॥
सहज रूप गुन सागर नागर, वलि लीला अवतारी ।
'व्यास' विनोद मोद रस पीवत, जीवत त्रिविस विहारी।२३०

राग-केदारौ—

पियकौ नाँचन सिखावत प्यारी।
वृन्दावन महँ रास रच्यौ है, सरद चन्द उजियारी॥
ताल मृदँग उपँग बजावति प्रफुल्लित ह्वै सखी सारी।
वीन, वेणुध्वनि नूपुर ठुमकत, खग, मृग दसा विसारी॥
मान गुमान लकुट लियैं ठाढ़े डरपत कुञ्जविहारी।
'व्यासस्वामिनी'की छवि निरखत,हँसि हँसि देकर तारी२३१

राग-सारङ्ग--

छवीलौ वृन्दावद कौ रास।
जापर राधा मोहन विहरत, उपजत सरस विलास॥
जीवन मूरि कपूर धूरि जहाँ उड़ति चहुँदिसि वास।
जल थल कमल कमंडली विगसत अलि मकरन्द निवास॥
कङ्कनि किङ्किनि नूपुरं धुनि सुनि खग मृग तजत न पास।
तान वान सुर जान विमोहित, चन्द सहित आकास॥
सुख सोभा रस रूप प्रीति गुन, अङ्गनि रङ्ग सुहास।
दोउ रीझि परस्पर भेटत छाँह निरखि वलि 'व्यास'॥२३२

नाचत दोऊ वृन्दावन महँ।
स्यामास्याम मिले स्वर गावत छवि उपजत आनन महँ॥

गौर स्याम नट, नील पीत पट,प्रतिबिंबित नग तन महँ ।
जनु उद्योत वलाहक मानियत धनुष दामिनि दमकति घनमहँ।
सहज स्वरूप सु-गुनिकी सीमा कहत न बनै वचन महँ ।
'व्यासस्वामिनी'कुँवरहि रीझि रिझावत राखि कुचन महँ २३३

राग-आसावरी तथा सारङ्ग—

वृषभाननन्दिनी सरद चन्दिनी नटति गोविन्द संगे ।
जगतवन्दिनी, सुरनन्दिनी, तट वंसीवट,
नागर मिलि प्रगट सरस सुघँगे ॥
रास रच्यौ गुन रूप सज्यौ,
न विनोद बच्यौ, देसी अङ्ग अँगे ।
तालि मान, बन्धानि गति,
रतिपति निरखि मन मान भंगे ॥
कङ्कन किङ्किनि नूपुर धुनि,
मिलि सुनियत ताल मृदंगे ।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत,
उमगत उरज उतंगे ॥
भृकुटि विलास, वङ्क अवलोकनि,
मन्द हास उपजत तरंगे ।
'व्यासस्वामिनी' के रस गावत,
तरु, मृग भँवर विहँगे ॥ २३४ ॥

३

राग-केदारो—

सरद सुहाई जामिनि, भामिनि रास रच्यौ ।

वँसीवट जमुना तट सीतल,
मन्द सुगन्ध समीर सच्यौ ॥

बजत मृदंग ताल राधा सँग,
मोहन सरस सुधङ्ग नच्यौ ।

उरप तिरप गति सुलप लेत अति,
निरखत विथिकित मदन लच्यौ ॥

कोककला संगीत गति रस-
रूप मधुरता गुन न बच्यौ ।

भृकुटि विलास हास अवलोकत,
'व्यास' परम सुख नैंन खच्यौ ॥ २३५ ॥

राग-सारङ्ग—

वृषभानकुंवरि गान करत बंसीवट मूले ।

नाँचत गोपाललाल अङ्ग सङ्ग कूले ॥

कुञ्ज-भवन कोक कुसल सुरत डोल झूले ।

दसन अधर नैंन निरखि 'व्यास' विकच फूले॥२३६॥

राग-विलावल—

प्यारे नाँचत प्रान अधार ।
रास रच्यौ बन्सीबट नट नागर वर सहज सिंगार ॥
पाइनि की पटकार मनोहर, पैंजनि की झनकार ।
रुनझुन नूपुर किंकिनि बाजति, सङ्ग पखावज तार ॥
मोहन धुनि मुरली सुनि कर तब, मोहे कोटिक मार ।
स्थावर जङ्गम की गतिं भूली, भूले तन ब्यौहार ॥
अङ्ग सुधँग अनङ्ग दिखाइ,रीझि सर्वसु दोऊ देत उदार ।
'व्यासस्वामिनी'पियसौं मिलि रस राख्यौ कुञ्जविहार॥२३७

श्रीजमुना तट रास-रस

राग-सारङ्ग व कान्हरौ—

आजु बनी अति रास मण्डली,
नदी जमुना के तीर सहेली ।
नाँचति गति वृषभाननन्दिनी,
मकर चन्दिनी राति नवेली ॥
माँनहुँ कोटिक गोपी धावति,
फिरत राधिका तरल अकेली ।
सम्भ्रम तितनेई रूपनि धरि हरि,
आतुर रह्यौ कण्ठन भुज मेलि ॥

अद्भुत कौतुक प्रगट करत दोऊ,
नाँचत माँचत ठेला ठेली ।
अति आवेस केस पट भूषन,
सिथिल सिन्धुरस झेलाझेली ॥
जय जय ध्वुनि सुनि खग मृग मोहे,
पुलकित धन्य कुञ्जतर केली ।
विविधि विहार 'व्यासकीस्वामिनि'
मोहन सों मिलि खेली ॥२३८॥

राग-कमोद—

नमो जुग जुग जमुना तट रास ।
सरद सरस-निसि चन्द-चन्द्रिका, मारुत मदन सुवास ॥
नटवर वेष सुरेख राधिका, अङ्ग सुधँग निवास ।
देसी सरस सुदेस दिखावति, नैंननि नैंन विलास ॥
तिरप मान महँ तान लेत दोऊ, सुर बन्धान उसास ॥
औघर सुघर अतीत अनागति रीझि जनावति हास ।
दम्पतिकी गुन गाति निरखत रति कोटि मदन मद नास ।
अति आवेस केस कुल विगलित, वरषत कुसुम विकास ॥
वाहुनि बीच नाहु गोरिहि गहि, लेत मधुर मधु ग्रास ।

बिवस भये रस लम्पट जानत, रस महँ लाज बिनास ।।
'व्यासस्वामिनी' पियहि हियें दै, लीनौं कुञ्ज-अवास ।।२३६

राग-कान्हरौ—

सुघर राधिका प्रवीन बिना, वर रास रच्यौ
स्याम सँग वर सुधँग तरनितनया तीरे ।
आनन्दकन्द, वृन्दावन सरदचन्द मन्द मन्द,
पवन कुसुम पुञ्ज ताप दवन धुनित कल कुटीरे ।।
रुनित किंकिनी सुचारु, नूपुर मानि वलय हारु,
अङ्ग रव मृदङ्ग तार तरल तिरप चीरे ।
गावति अति रङ्ग रह्यौ, मोपै नहिं जात कह्यौ,
'व्यास' रस प्रवाह वह्यौ, निरखि नैंन सीरे ।।२४०।।

राग-पूरवी सारङ्ग—

जमुना तट दोऊ नाँचत नागर नट कुँवरि नटी ।
देखत कौतुक भूलि रह्यौ ससि, आनन्द निसि न घटी ।।
बाजत ताल मृदङ्ग उपङ्ग, अङ्ग सुधङ्ग ठटी ।
लटकति लटपट झटकि पटकि पद, मटकति भृकुटि तटी ।।
मानहुँ सनमुख सिन्धुहि मिलि रस सरिता भरिता भरि उपटि ।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, गावत एक गटी ।।

तान, बन्धान, वेधि सुर वनिता विथकित लाज कटी।
नारद सारद और गुनी की, परदा सबै फटी ॥
लोकचतुर्तदस मांझ 'व्यासकीस्वामिनि' गुननि गटी।२४१

राग-विलावल—

स्याम वाम अङ्ग सँग, नाचति गति वर,
सुधङ्ग रास लास रँग भरी सुभग भामिनी।
तरनितनयातीर खचित मृदुल रचित कनक,
होर त्रिगुन सुख सभीर सरदचन्द जामिनी ॥
चरन रुनित नूपुर, कर कंकन, कटि किंकिनी,
धुनि सुनि खग,मृग मोहि गिरत काम कामिनी।
पञ्चमसुर गान तान, गनन मगन भये आन,
भगन मगन जान, गिरत मेघ दामिनी ॥
झपताल चाल उरप लेति तिरप मान सुखहि,
चन्द सुघर औघर वर सुलप गामिनी।
नयन लोल मधुर बोल, भृकुटि भंग,कुच उतङ्ग,
हँसति पियहि विवस करति'व्यासस्वामिनी' ॥२४२॥

राग-कमोद—

नाँचत नन्दनन्दन वृषभाननन्दिनी बनी,
रास रँग अङ्ग सँगीत तरनितनया तीरे।

राका निसि सरद ससिकर रञ्जित, वृन्दावन,
फूल जाहिजुही मलय धीर समीरे ॥
घुँघरी पद बाजति, कटि किंकिनी, कर कंकन,
रव कण्ठमाल, श्रवनफूल चल दुकूल धीरे।
मन्दहास, मधुर बैंन, भ्रुव विलास, नैंन सैंन,
देखत सुख सुख, भगत ताप, होत हृद सीरे।
पञ्चमधुनि गावत पट्ठ तान सुनि विमान विकल,
वृन्दारक बृन्दबधू विगलित खीरे।
कुसुमावलि वरषि हरषि स्याम कहैं होरी हो,
वारि फेरि देत 'व्यासहिं' भूषन पट पीरे ॥२४३॥

श्रीजमुनाजल-पर रास रस

राग—जयति श्री—

रच्यौ स्याम जमुना जलपर रास।
सँग राधिका अङ्ग रङ्ग छबि, सब गुन रूप निवास ॥
विविध कमल मण्डल की सोभा, जल थल कुसुम विकास।
उडुगन सहित सकल राकानिसि, चरननि तन आकास ॥

भूषन धुनि सुनि हंस हंसिनी, मधुप न छाँड़त पास।
पद पटकत वन छीटन छिरकत लेति मान तजि त्रास ॥
लेति नाक की भौंरी नागरि, गावत पियहि जिवास।
रीझि सुघर वर कण्ठ लगाई, पाँइ गहे मुख वास ॥
इहि विधि भामिनि भावहि भजि, अवतार कदम्ब उदास।
आनन्द सिन्धु मगन ह्वै 'व्यास',
विसरि प्रपंच विलास ॥ २४४ ॥

सरद-रासोत्सव-रस

राग-विहागरो--

दोऊ मिलि देखत सरद उजियारी।
बिछी चाँदनी मध्य पुलिन के, तास जरी फुलकारी ॥
सेत वादलौ, सेत किनारी, ऐसी है यह सारी।
हीरन के आभूषन राजत, जो वृषभान दुलारी ॥
मोतिन की माला वलि उरमहँ पहरें कुञ्जविहारी।
रतन जटित सिरपेच, कलङ्गी, मोर चन्द्रिका न्यारी ॥
सखियाँ सङ्ग एकसी सुन्दर, मानो चन्द्रकलारी।
वाजे बहु वाजैं (अरु) गावहिं सखियाँ, निर्त्तत वारी वारी ॥

यह सुख देखत नन्दलाडिलौ, अरु कीरति की प्यारी।
इनकी प्रीति रीति भक्तनिसौं,
'व्यासदासि' बलिहारी ॥२४५॥

राग-सारङ्ग —

नाँचति नागरि नटवर वेषधरि सुखसागरहि बढावति।
सरद सुखद निसि ससि गो रञ्जित,
वृन्दावन छबि रुचि उपजावति ॥
ताल लये गोपाललाल सँग,
ललिता ललित मृदङ्ग बजावति।
हरिवंसी हरिदासी गावति,
सुघर प्रवीन रबाब बजावति ॥
मिश्रित धुनि सुनि खग मृग मोहित,
जमुना जलं न वहावति।
हरषित रोम तन, सोम थकित धर,
व्योम विमान गिरावति ॥
लेत तिरप विगलित मालावलि,
कुसुमावलि वरषावति।
जय जय साधु करत हरि सहचरि,
'व्यास' चिराक दिखावति ॥२४६॥

राग—केदारौ तथा कल्याण—

रसिक, सुन्दरि वनी रास रंगे।
सरद् ससि जामिनी, पुलिन अभिरामिनी,
पवन सुख भवन वन विहँगे॥
नीलपट भूषननि नटवर सुवेष,
धरि मदन मुद्रा वदन कुच उतंगे।
चरन नूपुर रुनित कटि किंकिन,
क्वनित कर कंकनचुरी रव भंगे॥
चरन धरनी धरति, लेत गति सुलप अति,
तत्त थेई थेई नदति मनि मृदंगे।
चर्चरी तालमें तिरप बाँधति वनी,
तरकि टूटी तनी, वर सुधँगे॥
सप्तसुर गान, पट तान बँधान में,
मान औघर सुघर अँग अँगे।
सरस मृदुहाँसिनी नैंन सैंननि लसति,
निरख त्रिभुवन वधू मान भंगे॥
विविध गुन माधुरि सिन्धु में मगन,
दोऊ लसति, गोरी वसति पिय उछंगे।
थकित चन्दन पवन चन्द मन्दार,
फूल सोम वरषत 'व्यासदास' संगे॥२४७॥

राग-भैरव—

स्यामा सँग स्याम नचत, रासरङ्ग गुन न बचन,
ससि अखण्ड मण्डल हँसि सरद जामिनी।
तरनितनय तीर कछू मृदुल अछ्रस सित रज पुनीत,
त्रिविध पवन ताप दवन काम कामिनी॥
चरन चलित, वाहु वलित, ललित गान कलित तान,
मान सुर बन्धाँन तिरप लेत भामिनी।
वर सुघँग रंग ताल मनि मृदंग, चन्द चाल,
लाल सुघर औघर गजराज गामिनी॥
रिझै पतिहि गति दिखाइ, लेत कुँवर कण्ठ लाइ,
स्याम घटा माँझ मनहुँ दुरति दामिनी।
नैंन सैंन भ्रूविलास, मन्दहास सुख निवास,
सुनि धुनि मुनि बोलत जय व्यासस्वामिनी॥२४८॥

राग-सारङ्ग व गूजरी (चंचरी)—

नाँचति वृषभानकुँवरि हंससुता पुलिन मध्य,
हंस हंसिनी मयूर मण्डली बनी।
गावत गोपाल लाल, मिलवत झपतार ताल,
लाजत अति मत्त मदन कामिनी अनी॥

पदिक लाल कण्ठ माल तरल तिलक भाल,
झलक श्रवन फूल वर दुकुल नासिकामनी ।
नील कंचुकी सुदेस, चम्पकली कलित केस,
मुखरित मनि दाम, वांम कटि सुकाछिनी ।।
मरकतमनि वलय राव मुखर नूपुरनि सुभाव,
जावक युत चरननि नखचन्द्रिका घनी ।
मन्दहास भ्रूविलास, रास लाल सुखनिवास,
अलग लाग लेति सुघर राधिका बनी ।।
काम अन्ध कितव बन्ध, रीझि रहै चरन गहै,
साधु साधु कहत रहत राधिका धनी ।
भेंटति गहि बाँहु मूल, उरज परस भई फूल,
'व्यास' वचन सानुकूल रसिक जीवनी ।।२४८।।

राग-सारङ्ग—

नाँचति गोरी, गोपाल गावै ।
कोमल पुलिन कमलमण्डल महँ रास रच्यौ,
स्यामा स्यामल सखि मोहन वैंनु बजावै ।।
सरदचांदिनी मन्द पवन बहै दुहूंदिसि,
फूल जाति परिमल मन भावै ।

कनककिंकनि धुनि सुनि खग मृग,
आकर्षत, वन मधु वर्षावै ॥
लटकति लट भुज मुकुट विराजति,
पटकति चरन धरनि सों कुँकुमहि उड़ावै ।
उरप तिरप गति मान बढ़ायौ,
हस्तक मस्तक भेद जनावै ॥
..............................,
अङ्गनि सरस सुधँग दिखावै ।
रूप रासि गुन गन की सीवां,
भृकुटि विलास हाँस कै प्यारेहि रिझावै ॥
विच विच कच कुच परसत हँसिकरि,
परिरम्भन चुँवन दै रस-सिन्धू बढ़ावै ।
नवरँग कुञ्जविहारी प्यारी खेलति देखि,
वलिहारी यह सुख 'व्यास' भागनि पावै ॥२५०॥

राग-कान्हरौ—

नाँचत नन्दनन्दन वृषभान-नन्दिनी समीप,
देखि चन्द भूलि रह्यौ, कलप जामिनी ।
नख प्रति प्रतिरूप ठानि, भूषन उड़,वृन्द जानि,
आनि चरन भजत, तजत गगन धामिनी ॥

नील पीत वर दुकूल, गोरस्याम अङ्ग फूलि,
अङ्ग मिले हरषि वरष मेघ दामिनी ।
वर सुधङ्ग रङ्ग रचे, दम्पति गति रीझि लचे,
विगत गर्व-अर्व खर्व काम कामिनी ॥
पञ्चमस्वर गान, मधूर तान सुर बन्धान,
मान लेति तिरप राधिका गजराज गामिनी ।
चारि फेरि देत हार हार उदार कहत रहत,
हो हो हो साधू साधू 'व्यासस्वामिनी' ॥२५१॥

ब्याहुलौ

राग-जयतिश्री, अल्हैया, विलावल (मूलताल)

मोहन मोहनीकौ दूलहु ।
मोहन की दुलहिनि मोहनी सखी,
निरखि निरखि किनि फूलहु ॥
सहज ब्याह उछाह, सहज मण्डप,
सहज जमुना के कूलहु ॥
सहज सवासिनि गावति नाँचति,
सहज सगे समतूलहू ॥
सहज कलस कंचन कल भाँवरि,
सहज परस भुज मूलहु ।

सहज वने सिरमौर सहत भूषित तन,
सहजई नवल दुकूलहु ॥
सहज दाइजौ वृन्दावन धन,
सहज सेज रति जू लहु ।
सहज सनेह रूप गुन 'व्यासहि',
स्वपनैं हू जिनि भूलहु ॥ २५२ ॥

राग-गौरी—

सहज दुलहहिनी श्रीराधा सहज साँवरौ दूलहु ।
सहज व्याहु बृन्दावन निरखि निरखि किनि फूलहु ॥
सहज कुञ्ज सुखपुञ्ज महल मण्डप छाये ।
सहज सवासिनि दासिनि हरषि मंगल गाये ॥
गाइ मंगल कलस पूज्यौ पाँइ परि विनती करी ।
वलि जाऊँ सुखद मुखारविन्दहिं देखत वे, धनि हरी ॥
विधि रवानी जगत जानी जमुनाकुलदेवी पुजी ।
कञ्चन मनमय वनभूमि विराजै और गति नाहीं दुजी ॥
विटप बेलि बुलाइ न्यौंते विविध वरन बनैं घनैं ।
फल फूल न्यौंते देत लाजे वरषि मधु तन मन सनैं ॥
तहाँ बाँधि कंकन सरद विहँसि हरद केसरि छवि लगी ।

रति लिखत मृगमद वदन मरुवटि देखि हँसि आपुन ठगी ॥
बाजे बाजत वैनु धुनि सुनि देव मुनि मौहै जू ।
ताल पखावज रुँज झाँझ डप झिरनाँ रव सोहै जू ॥
मन सरस अन्हवाइ दोऊ अँग पट भूषन सजे ।
निरखि वेष निमेष विसरे कोटि मनसिज मन लजे ॥
मोर मुकुट सिर गुन्जा मनि झलक अलक घुँघरारे जू ।
श्रवननि कुण्डल चमकत सोभित गण्ड सुढ़ारे जू ॥
दसन दारचौं वदन विहसत अधर पल्लव छवि लगी ।
सुवा सारी नाँकवेसरि लाल मोती मनि जगी ॥
नैंननि अञ्जनरेख अन्यारी भौंहैं अति चञ्चला ।
पीत पिछौरी, सारी, चोली पर चौकी चल अञ्चला ॥
बाँधि अञ्चल गाँठि चञ्चल रास वेदी पर बनैं ।
सात भाँवरि देत सब निसि अँग रङ्गनि मिलि सनैं ॥
अधर सुधा जैउँनार करत न अघानैं प्रीतम दोऊ ।
दरस परस मुख सुख दूधा भाती करत न लखत कोऊ ॥
मोर प्रोहित बोलि जित तित भँवर भाटन जसु कह्यौ ।
कुलबधू कोकिल गारि दै मनुहार करतनि रस रह्यौ ॥
रूप निधाना पलटत मुख पाना, चतुर सुजानौ जू ।
घर वात लुटाइ मिली वृषभान नन्द की रानी जू ॥

करहि कंकन, कटि सु किंकिनि, चरन नूपुर बाजहीं।
मोहनी जोबन चाल देखत हंस, गजकुल लाजहीं॥
जुग जुग दम्पति रति रस वरषत अति हरषत ब्रजवासी जू।
गावत गोपी मिलि नाँचत हरिवंसी हरिदासी जू॥
यह व्याहु वरनत सुनत अति सचु भगति सम्पति पाइये।
'व्यास' वृन्दाविपिन वसिकैं बहुरि अनत न जाइये॥२५३॥

व्याहुलौ कौ रास-रस

राग-केदारौ, चौतारौ, सारङ्ग—

आज अति बढ्यौ है सखि रंग।
सुघरि लेति औघर गति सुलप, सुरेख दिखावति अँग॥
स्यामा स्याम रास बनि, नाँचत बाजत ताल मृदङ्ग।
गावति सुर बन्धान तान महँ, नागरि लेत सुधँग॥
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, नचावत भृकुटि अनँग।
'व्यासदासकौं' हित करि दीनौ, चारि चरन रस सँग॥२५४॥

राग-सारङ्ग—

मोर सिंगारे नाँचति गावति किसोर सँग।
आगैं पाछैं कछिनी टिपारे, सिर लटकति,
नील पिछौरीन छवि उन्नत, नमित वदन सोहै अङ्ग॥

मोहन कौ वेंनु सुनियत है अनुराग बढ्यौ,
नैंन श्रवन तन नीर अधीर दुहु राखत रँग।
'व्यासकीस्वामिनि' आगैं औसर बन्यौं पाछैं,
दामिनी चिराक घन घोर मृदङ्ग ॥ २५५ ॥

राग–अडानौ —

वंसीवट के निकट हरि रास रच्यौ,
मोर, मुकुट और ओढ़ैं पीत पट।
वृन्दावन नव कुञ्ज सघन घन,
सुभग पुलिन अरु जमुना के तट॥
आलस भरे उनीदे दोऊ जन,
श्रीराधा प्यारी नागर नट।
'व्यास' रसिक बलि रीझि रीझि कैं,
लेत बलैया कर अँगुरिन चट ॥२५६॥

राग-धनाश्री—

राजत दुलहिनि दूलह सँग।
रास रच्यौ राधा मोहन मिलि, गुनसागर झिलि रँग॥
कमल मण्डली पुलिन खण्डमें, चन्द किरनि अनुषंग।
गावत कोकिलकलसुर, वाजत भूषन, ताल मृदंग॥

बीच बीच मुरली मन चुरली, बाजत सुख मुखचंग।
सुघर सुकेकी देसी दिखावत, लालहि फवत सुधंग॥
चञ्चल चरननि, अञ्चल अति गति, उपजावति भ्रू-भंग।
स्वेद बिन्दु गोविन्द कलानिधि पौंछत उरज उतंग॥
हस्तक मस्तक भेद दिखावत गावत गिरत अनंग।
गौर छटा छबिमें दवि निकसत साँवल के सब अँग॥
बिहसत दुरि दामिनि धुनि सुनि, सुनि मोहे वारि विहंग।
सैंननि निरखत फूले व्यासदासि के नैंन कुरंग॥२५७॥

धीरसमीर रास रस

राग–केदारौ—

दुलहिन दूलहु खेलत रास।
धीरसमीर तीर जमुनाके, जल थल कुसुम विकास॥
द्वादसकोस मण्डली जोरी, फिरत दोउ अनयास।
बाजत ताल मृदङ्ग सङ्ग मिलि, अङ्ग सुधँग विलास॥
थके विवान गगन धुनि सुनि सुनि ताननि कियौ विसास।
या रसकौं गोपिनि घर छाँड्यौ, सह्यौ जगत उपहास॥

मोहन मुरली नैंक बजाइ, श्रीपति लियौ उसास।
नूपुरध्वनि उपजाइ विमोह्यौ, सङ्कर भयौ उदास॥
कंकन किङ्किनि धुनि सुनि नारद कीनौं कहूं न बास।
यह लीलो मन महँ आवतही, सुकदेव विसरयौ व्यास॥२५८॥



रास की मल्लारि

राग-मलार—

पावस की सोभा अधिकाई।
गगन सघन बन मिले विराजत, लाजत उपमा देति,
सकुचि दबि अध ऊरध छबि कही न जाई॥
दोउ नाइक संघट पट साजैं, गावत,
नाँचत, बजावत रीझत रूप की निकाई।
विविधि वरन मनहरन छबीले, नाना धुनि,
श्रवन सिरानैं वरषत हरषत विधि सुहाई॥
मन्दहास कल भ्रू विलास चल नैंन सैंन, सुख वैंन,
ऐन भरि उमगि चले तिहिं सागर माई।
जीव जन्त मयमन्त भये सब, तरनितनया,
परिताप गये, 'व्यासहि' (प्यास) न, भई अघाई॥२५६

पावस रितुकौ रास पुलिन महँ स्याम रच्यौ।
तैसौई घुमरि घुमरि घन वरषत, गावत नाँचत रँग सच्यौ॥
कहत रमासौं वृन्दावन रूप, सील, गुन, रसु न वच्यौ।
ताल मृदँग झांझ, डफ बाजत, सुनत श्रवन सुख-पुञ्ज खच्यौ॥
कुँवरि सुकेसी मिलवत देसी, नटवर अङ्ग सुधङ्ग सच्यौ।
मन्दहँसिन सैंननि रति नाँचति, चल भ्रू-भङ्ग अनङ्ग लच्यौ॥
'व्यास' सकल लोकनसौं मूरिख,
विरँचि विनही काज पच्यौ॥ २६० ॥

मनिमय धरनि तरनितनया तट,
नाँचत मोर किशोरी वर सुधँग।
राग मलार, कोकिल कल गावत,
बाजत मधुर-धुनि मेघ मृदंग॥
चँदिवा चुँग टिपारे गाथैं,
कटि-काछनी चन्द्रांक सुरँग।
रिमिझिम बून्द स्वेद-कन-वरषत,
चातक रव जनु ताल उपंग॥
तिरप किशोरी मोरनि सिखवति,
सुलप निपुन अभिनय सब अङ्ग।

ग्रीवाँ नील-पिछौरी चमकति दामिनि,
हँसत लसत भ्रुव-भंग ॥
खग, मृग, गो, गिरि सलिता विथिकित,
मोहे निसि ससि पवन अनंग ।
राधा-रवन प्रताप दीप महँ,
'व्यास' मुदित सुख परत पतङ्ग ॥२६१॥

प्यारी नाँचत रङ्ग रह्यौ ।
पिय के बैंन बजावत गावत, सुख नहिं परत कह्यौ ॥
कोमल पुलिन नलिन-मण्डल महँ, त्रिविधि समीर वह्यौ ।
विथकित चन्द मन्द भयौ पथु चलवे कहँ रथ न रह्यौ ॥
कंकन, किङ्किनि, नूपुर सुनि, मुनि कन्यनि कौ मन उमह्यौ ।
उलट बह्यौ जमुनाकौ जल सबही के नैंननि नीर वह्यौ ॥
अँग सुधँगनि देखत गर्व पर्वत तैं मदन ढह्यौ ।
तिरप उरप, सुलपनि की गति कौ पति नहि मरम लह्यौ ॥
निरषत स्यामहि काम-बढ्यौ, रस भँग न परतु सहयौ ।
'व्यासस्वामिनी' नैंन सैंन दै नागर विहँसि गहयौ ॥२६२

राग-गौड मलार —

वंसीवट जमुना तट नाँचत, दोऊ वर सुधँग ।
लाघवजुत सब्द कहत मृदु तत् तत्,
थेई थेई थुँग थुँग तान तरङ्ग ॥

जानति संगीत साँचु सरस विरस विरम,
लेत नैंनलोल–लोचन भृकुटि भङ्ग ।
चिन्द चाल, ताल, सुघर अवघर,
गति निरखि थकित कोटि अनङ्ग ।।
वलित अलक चक्र-सम षटचक्र-भेद,
गगनमें अति तिरप प्रवीन अङ्ग अङ्ग ।
रास रसिकनी 'व्यासस्वामिनी' रस राख्यौ,
रसिक कुंवर रीझि रहे, चरन गहे लै उछङ्ग ।।२६३।।
नाँचत नटवा मोर सुधङ्ग अङ्ग तैसे बाजत मेह मृदंग ।
कटि चन्द्राँक काछनी चमकति,
सिर हँसि खंडि टिपारे चुङ्ग ।।
तैसेई कोकिल कुल गाइन गावत,
सुरत दिखावत मधुप उतंग ।
तैसैई मोहन राग मल्लारिनि बाजत,
अभिनय निपुन राधिका कुच तुङ्ग ।।
साखि जवादि कुमकुमा वरषत,
ललितादिकनि उमङ्ग ।
कुञ्जमहल तहँ पवन के हल नहिं,
'व्यास' चिराक दिखावत सङ्ग ।।२६४।।

गोपिन सह रास-रस

राग-विहागरो--

देखि सरदकौ चन्दा नन्दनन्दा वन रास रच्यौरी ।
बिच गोपी बिच स्याम छबीलौ, राधा संगहि नच्यौरी ।।
मनहुँ नीलमनि कञ्चनमाला मण्डल खण्ड खच्यौरी ।
अङ्ग सुधङ्ग दिखावत गावत सुनि धुनि मदन लच्यौरी ।।
भृकुटि विलास हास-रस बरषत, जमुना पुलिन मच्यौरी ।
सीतल मन्द सुगन्ध त्रिविधि, ता सौरभ सरस सच्यौरी ।।
नित्यविहार निहार मुक्तिपति, तू वे काज पच्यौरी ।
मोद विनोद रास निज दासि'व्यास'सुखपुञ्ज सच्यौरी।।२६५

राग-श्रीराग—

मधुर मधुर धुनि आज बेनु बजावत ।
मुदित उदित तान बन्धान रागनि के,
रसिक कुंवर श्रीराग अलापत ।।
देत सुरनि मधुकर मोर नाँचत,
विथकित चन्द मुदित घन गाजत ।।
उलटि बहति सलिता, सर उमगत,
पुलकित वृन्दाविपिन विराजत ।

कुण्डल कपोल लोल सोभित अति निचोल,
मन्द हँसनि देखि रति पति लाजत ॥
मत्त निरँकुस ब्रजराज जोई जोई,
करत सोई सोई छाजत ॥
वरषत कुसुम मुदित नभ नाइन,
जय जय धुनि सुनि सब ब्रज आजत।
सरदजामिनी रँग, 'व्यासकीस्वामिनी' संग,
नटवर अङ्ग सुधङ्गहि साजत ॥ २६६ ॥

राग-सारङ्ग—

नाँचत गोपाल वनै गोपिन सँग गावैं ।
मोहन मन, सोहत वन नैंन सिरावैं ॥
पञ्चमस्वर गान, तान; मान मिलि वढावैं ।
उरप तिरप, सुलप प्यारेहि रिझावैं ॥
चरन-रेनु उर लगाइ रीझि वेनु बजावैं ।
मन्दहाँस निरखि, काम स्यामहिं सिर-नावैं ॥
नागर गुनसागर कौ पार कौंन पावैं ।
कहत कोटि'व्यास'थके देखत बनि आवैं ॥२६७॥

राग-केदारो—

नाँचत गोपाल बनैं नटवर वपु काछैं।
गावति गति मिलवत अति, राधा के पाछैं॥
किंकिनि कंकन नूपुर धुनि ताल मृदङ्ग सोहैं।
मन्दहाँस भ्रू-विलास सैंननि मन मोहैं॥
तरुवर गिरिवर मृग नाद बान पोहैं।
वृन्दारक-वृन्द-वधू तारक विधु मोहैं॥
समीर, नीर पंगु भयौ, बालक न पय-प्यावैं।
'व्यास'सकल जीव-जन्तु नाद स्वाद ज्यावैं॥२६८॥

राग-सारङ्ग—

नदित मृदङ्ग राइ, नटत गोपाल राइ,
गावति तरुनिमनि-राधिका बनी।
नागरि नव रूप गुन आगरि,
अलापति तान वितान तनी॥
पंचमकी धुनि सुनि सुक मुनिव्रत धरचौ,
थकित मदन अनी।
बछरा न छीरु पियैं नाद के आनन्द जियैं,
उलटी सलिता बहै मोहित फनी॥

द्रुमकुल कुसुमनि वरषत गुलम लता खग जय जय,
'व्यासस्वामिनी' रसिककुँवर सिरमुकुट मनी ॥ २६६ ॥

नाँचत गोपाल बनै राधा सङ्ग गावैं ।
वृन्दावन रास रच्यौ लाल वेनु बजावैं ॥
गौर स्याम बाँहु जोरि मण्डली बनावैं ।
मनहुँ हेम मरकत मनि-मालहि नचावैं ॥
भूषन पट तन छबि,घन-चपलाहि लजावैं ।
मोर मुकुट कोटि कोटि मदन मन नसावैं ॥
कंकन,किङ्किनि,नूपुर ध्वनि,मुनिहि मोह बढावैं ।
राग,तान,मान, सुर बिमान, वन बुलावैं ॥
उरप, तिरप, सुलप, सुघर, औघर गति भावैं ।
अङ्ग अङ्ग वर सुधँग, रँग कहि न आवैं ॥
चन्दवदन मन्द विहँसि नैननि मटकावैं ।
कबहुँ नाहु प्यारी गहि बाँहु उर लगावैं ॥
जय जय धुनि सुनि सुरेस सुमनवि वरषावैं ।
'व्यासदास' रंगरास चरन रेनु पावैं ॥ २७० ॥

शय्या अभिसार

राग-कमोद—

मोहनी मोहन की प्यारी।
सुरतसेज, लै चली अली सँग,
कोटिचन्द चाँदिनी उज्यारी॥
नारीकुञ्जरकौ लहँगा (सोहै),
अँगिया कारी, झूम्मक सारी॥
कंकन, किंकिनि, नूपुर बाजत,
लाजत कोटिकाम बलिहारी।
अङ्ग अङ्ग सोभित नाना भूषन,
सहज रूप, गुन, गान सिंगारी॥
दृष्टि कमलदल पंथु रच्यौ पिय,
हिलगनि उरज माँह अनियारी।
'व्यासस्वामिनी' के सङ्ग विहरत,
विरह चमूँ अनियास विडारी॥२७१॥

रजनीमुख सुखरासि चली।
पिय सुरति सेज ससि स्याम,
वाम अंग रंगी अली।

वदन चन्द कर रंजित,
बिविध सुगन्ध सुवासित कुञ्ज गली ॥
कुमकुम रज कर्पूर धूरि पर,
चरननि परसत चम्पकली ।
सेज रचत उझकत द्वारै,
हँसि भेटत, मोहन करमबली ॥
लाल तमालहि अरुझी ललना,
कनकलता, कुच फलनि फली ।
रंग रह्यौ क्यों कह्यौ परै देखति,
दुरि सुखहि 'व्यास' वृषली ॥२७२॥



सय्या रस

राजत निकुञ्ज महल ठकुरानी ।
कुसुम सेज पर पौढ़ी स्यामा राग सुनत मृदवानी ॥
ललिता चरण पलोटत लाल दृष्टि ललचानी ।
पाँइ परत सजनी के मौहन हितसौं हाहाखानी ॥
भई कृपाल लाल पर ललिता दे आज्ञा मुसकानी ।
आश्रो मोहन चरन पलोटौ जैसे कुँवरनि जानी ॥

आज्ञा दई सखी कौं प्यारी मुख ऊपर पटतानी।
वीन वजाय गाय कछु तानन ज्यौं उपजै सुखसानी॥
गावन लगे रसिक मन मोहन तव जानी महारानी।
उठ बैठी श्री 'व्यास' की स्वामिन,
वृन्दावन की रानी॥ २७३॥

राग—केदारौ व विभास—

चाँपत चरन मोहनलाल।
प्रयङ्क पौढी कुँवरि राधा नागरी नव वाल॥
लेत कर धरि परसि नैंननि, हरषि लावत भाल।
लाइ राखत हृदैसौं तव गनत भाग विसाल॥
देखि पिय की अधीनता भई कृपासिन्धु, दयाल।
'व्यासस्वामिनि' लिये भुज भरि,
अति प्रवीन कृपाल॥ २७४॥

राग—कल्याण—

ललन की बतियाँ चोज सनी।
परम कृपाल चितै करुनामय, लोचन कोर अनी॥
उमगि ढरे दोऊ सुरत सेज पै, टूटी तरकि तनी।
परमउदार 'व्यास' की स्वामिनि,
वकसति मौज घनी॥ २७५॥

राग-सारङ्ग—

विहरत नवल रसिक राधा संग।
रचित कुसुम सयनीय, भामिनी,
कमल विमल, हरि भृंग॥
नवनिकुंज रति पुंजनि वरषत,
सुख सूचत, नखसिख अंग अंग।
अधर पान परिरम्भन चुंवन,
विलसत कर जुग उरज उतंग॥
नीवी निवन्धन मोचत, सोचत नाहिन,
नेति वचन सुनि अधिक उमंग।
नयन वयन परिहाँस वचन कहि,
हसत लसत पुलकित भ्रुव भंग॥
कवहुँक प्यारी मुरली वजावति,
मोहन अधर धरत मुख चंग।
बीचि बीचि पञ्चमस्वर गावत,
सुनि धुनि विथकित व्यास कुरंग॥२७६॥

राग-कल्याण(चर्चरी ताल)—

वाम कुञ्जधाम स्यामसुन्दरी ललन,
विहरत अभिराम काम भाम भामिनी।

आनन्दकन्द मन्द पवन, सरदचन्द ताप दवन,
जमुनाजल कमल विमल जाम जामिनी ॥
सुरंग कुच उतंग अंग माधुरी तरंग,
सुरत रंग, मान-भंग काम कामिनी।
मन्दहाँस भ्रु-विलास मधुर वैंन नैंन सैंन,
विवस करत पियहि 'व्यासदास' स्वामिनी ॥२७७॥

बिहार-रस

राग-सारङ्ग—

राधेजू अरु नवल स्यामघन,
विहरत वन उपवन वृन्दावन।
ललित लता प्रति ललित माधुरी,
कुञ्ज पुञ्ज मुनि पंछी बैठे समूह गन ॥
नैंन चकोर भये देखत हैं,
प्रेम मगन भीजे तिनके मन ॥
मिथुन हाँस परिहाँस परायन,
कोक कलानि निपुन राधा धन।
रिझयौ नवलकुँवर वर प्यारौ,
लै उछङ्ग पुलकित, आनन्द घन ॥

हरिवंसी हरिदासी बोली,
नहि सहचरि समाज कोऊ जन।
'व्यासदासि' आगैं ही ठाढी,
सुख निरखत बीते तीनों पन ॥२७८॥

राग-कान्हरौ—

मंजुलतर कुञ्ज-अयन, कुसुम-पुंज रचित सयन,
विहरत नन्दनन्दन वृषभाननन्दिनी।
आनन्दकन्द सरदचन्द, मन्दपवन तापदवन,
सीतलजल तरल पूर सूरनन्दिनी ॥
अङ्ग अङ्ग सुरत रंग नयन सयन भृकुटि भंग,
कोटि चन्द मन्द करति सुभग हाँस चन्द-चन्दिनी।
परिरम्भन, चुँवन रस उरज करज विविधि परस,
सरस जघन दरस, सुख-समूह कन्दिनी ॥
अधर सुधा पान, मत्त मुदित गान, उदित तान,
लटकति लट बाँहु जुगल कण्ठ फन्दिनी।
गार स्याम सिन्धु नदि सङ्गम जल पावन अति,
रसिक भगत मीन, जीव न व्यासवन्दिनी ॥२७९॥

राग-विलावल, विहागरौ—

विहरत गौर स्याम सरीर।
कुसुम कुल सयनीय रची, कमनीय भूषन चीर ॥

सित सीकर निकर मंजुल-कञ्ज कुञ्ज-कुटीर ।
नदति भृंग, कुरंग केकी, कोक, कोकिल, कीर ॥
विकच वकुल कुल गुलाब चम्पक केतकी करवीर ।
तरतिजा वल बीच कल पट वास वहत समीर ॥
चन्द्रकिरनि तुषार मण्डित विटप दल वा नीर ।
हरित गिरि भू-पंथ पंकित श्रवत गोधन क्षीर ॥
अमित नव कर्पूर कुँकुम मृगज मलय उसीर ।
विमल वृन्दाविपिन वाढ़ी सुभग नदी गंभीर ॥
अँग अँग अनंग सायक सहत नहिं तन पीर ।
'व्यास' त्रास न करति स्यामा स्याम रति रन धीर ॥२८०

छवीले अँगनि रङ्ग रचे ।
विहरत रसिक निकुञ्ज भवन महँ, रति सुख पुञ्ज सचे ॥
कितव किसोर चोर लहु सर्वसु, लूटत राति पचे ।
अति आवेस मदन वैरी पह मारत भले वचे ॥
खण्डित खण्ड कपोलनि उमग विदारत कुच न लचे ।
जनु रन में जूझत द्वै जोधा, तामस तमकि तचे ॥
आसन करत देत मुख वास, सैन रस ऐंन मचे ।
मानहुँ रँगमहल सें नटवा, सरस सुधँग नचे ॥

निरखि विनोद 'व्यासदासनि' के नैंन कमल विकचे ॥
पुतरिनि महँ प्रतिबिंबित जनु, मरकत मनि कनक खचे॥२८१

राग-सारङ्ग—

क्रीडत कुञ्ज-कुटीर किसोर।
कुसुम पुञ्ज रचि सेज हेज मिलि, बिछुरि न जानत भोर॥
स्याम कामवस तोरि कंचुकी, करजनि-गहि कुच कोर।
स्यामा मुँच मुँच गहिं खण्डित गण्ड अधर की वोर॥
नागर नीवी निबंधनि-मोचत चरन गहि करत निहोर।
नागरि नेति नेति कहि, कर पेलत गहि डोर॥
मत्त-मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत, वरवट जोवन जोर।
'व्यासस्वामिनी' की छवि निरखि भये सखि लोचन चोर२८२

वृन्दावन कुंज कुंज केलि वेलि फूली।
कुन्द कुसुम चन्द नलिन विद्रुम छवि मूली॥
मधुकर, सुक, पिक, मराल, मृगज सानुकूली।
अद्भुत घन मण्डल पर दामिनिसी झूली॥
'व्यासदासि' रंगरासि देखि देह भूली॥ २८३॥

राग-देवगन्धार—

विराजत वृन्दाविपिन विहारु।
यह सुख वैननि कहि न परै, सखि नैननि कौ आहारु॥

गौर स्याम सोभा सागर कौ नाहिन पारावारु ।
वलि वलि कहत, सहत पिय हिय पर, पीनपयोधर-भारु ॥
सनमुख सैंन-सरन सहि सुन्दर कीन्हे मार सुमारु ।
सुधासिन्धु मुखमें वरषति, वर विधु अरुन उदारु ॥
भुजनि भेंटि दुख मेटि विरहकौ, विहसत पर्‌यो विडारु ।
खर-नख कुन्दकली दसननि पह, छलवल नहीं उबारु ॥
कुच-गहि चुँवन करत हरत मनु, कछु न राखत सारु ।
पट भूषन अँगनि के अँग सुरत रस रंग सिंगारु ॥
'व्यासस्वामिनी' कुँवर कण्ठ पर मानहुँ चम्पक हारु।२८४

राग-सारङ्ग—

अति सुख सुनत छबीली बतियाँ।
क्रीड़त कुँवरि काम-कुञ्जनि पर,
रति रस पुञ्ज, सरद ससि रतियाँ ।
कंचुकि,, नीवी निबन्ध झटकि पट,
नागर नट कर घतियाँ ।
गौरस्याम कर कलह करतहूं,
विलसत अपनी थतियाँ ॥
छलबल चुँवन करि परिरम्भन,
सैंन चलति अनभतियाँ ।

हँसति लसति भौंहनि मटकावत,
उपजत गुनगन गतियाँ ॥
उततें उरज न टरति हरत दुख,
मुख लटकत लट पतियाँ।
देखत 'व्यास' दासि बड़भागिनि,
नैंन सिरावत छतियाँ ॥२८५॥

पिय मधपहि मधु प्यावति ज्यावति राधा कमल-कली।
अधर-माधुरी छिन न तजत, सेवत कुच कुञ्ज गली ॥
मनौं हिमऋतु हित न तज्यौ, चितु दै नहिं विचली।
सन्तत सरद, वसन्त कन्त कह रति सुख फलनि फली ॥
सहज प्रीति रस रीति सरोवर सोभा अङ्ग भली।
'व्यासस्वामिनी'के रस वस भै मोहन कर्म वली ॥२८६॥

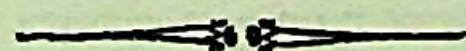
राग-विलावल—

स्याम सुन्दरी कहां अति कोमल सरल किसोर।
सुनि सुकुंवारि कहाँ अति कठिन कुटिल नखसिख अङ्ग तोर॥
कहाँ कपोल गोल मृदुमञ्जुल कहाँ नख खर-कोर ।
कहाँ विम्बाधर जलधर सम, कहाँ दसन अन्यारे वोर ॥

कहाँ कुँवरिकौ साधुहृदय, कहाँ तव कुच पीन कठोर ।
कहाँ अनुराग, सनेह कहाँ दृढ़ बाँहनि बन्धन जोर ॥
कहाँ दीन आधीन कहाँ तुव वङ्क नैंन चितचोर ।
'व्यासस्वामिनी' रसिक प्रीतमके नाते कह्यौ सु-थोर ॥२८७

राग- सारङ्ग व विहागरो—

वृन्दावन सुखपुञ्जनि वरषत कुञ्जनि कुञ्ज विहार ।
तहाँ सेज पर विहरत दोऊ, जीवन प्रान अधार ॥
अङ्गराग, भूषन, पट भूषित, नख सिख सजि सिंगार ।
अति आतुर चातुरता विसरी, लूटत मदन विकार ॥
सोई सोई करत न डरत हठीले, जोई जोई परत बिचार ।
मानहुँ कनक कामिनी कौतुक, जूझत सुभट जुझार ॥
किंकिनि नूपुर सुनि प्रमुदित उपजत कोटिक मार ।
मानहुँ निडर नट पद पटकत तोरत अति गति तार ॥
बिम्बाधर जलधर झरलायौ, बढ़े सुरत के सार ॥
'व्यासस्वामिनी' कुच तुंबनि पर,
हरें हरें कीने पार ॥ २८८ ॥



विहार की मल्लारि

राग-मलार—

मानौं माई कुन्जनि पावस आयौ ।
स्याम घटा देखत उनमद हो, मोरन सोरु मचायौ ॥
दामिनि दमकति चमकति कामिनि प्रीतम उर लपटायौ ।
निसि अँधियारी दिसि नहिं सूझति,काजु भयौ मन-भायौ॥
डोलत वग बोलत घन धुनि सुनि चातक वदन उठायौ ।
वरषत धुरवा सीतल बूंदनि तन मन ताप बुझायौ ॥
कुसुमित-धरनि तरनितनया तट चन्दवदन सुख पायौ ।
'व्यास'आस सब ही की पूजी,
सरिता सिन्धु बढ़ायौ ॥ २८६ ॥

सुरंग चूँनरी भीजत लाल उढ़ाउ पीत पट ।
झला झकोरत आवत दुहुँदिसि, निसि अँधियारी,
दामिनि कौंधति वेग चलहु प्रीतम वँसीवट ॥
वीथिनि वीच कीच मचि है,तब मोहि लयौ चहौगे,
कनियाँ कण्टक विकट घने जमुना तट ।
लई उछँग'व्यासकीस्वामिनि'रसिक मुकुटमनि,
धनि धनि मोहन वार वार कर परसत कुच घट॥२६०

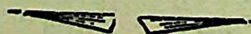
जब जब कौंधति दामिनी,
तब तब भामिनी डराति प्रीतम उर-लागति ।
उन्मद मेघ घटा धुनि सुनि,
निसि पियहि जगावति आपुनि जागति ॥
दादुर मोर पपीहा बोलत,
मदमाती कोकिल बन राजति ।
कुञ्ज-कुटीर 'व्यास' के प्रभु पै,
श्रीराधा रति रस पागति ॥ २६१ ॥

हरषति कामिनि बरषत दामिनि,
मेघन की माला पहिरें तन ।
त्रिविधि बिराजति गिरिवर ऊपर उडत पताका,
पाँति अरु सोभित सुरराज सरासन ॥
बोलत चातक चन्द्रमण्डल महँ कुञ्जित,
कोकिल कल खेलत खँजन ।
रेंगति चन्द्रबधू धुरवानि विच विच,
कोच वन घन मह सौरभ समीरन ॥
गरजत सिंघ, विथकित गज, हंस विहरत,
मीन मधुप मिलि तन मन ।

सर, सरिता, सागर भरि उमगे,
यह सुख पीवत 'व्यासहि' प्यासन ॥ २९२ ॥

प्यारीरी मोपै कही न जाइ तेरे रूप की निकाई।
लोक-चतुर्दस की सुन्दरता तेरे एक रोम पर अरुझाई ॥
तब राग मलारनि बाजति है,
तब मोरमण्डली नाँचति जु सुहाई।
निविड़ि निकुंज अँध्यारी जामिनि होड परी भामिनि,
दामिनि सौं, 'व्यासस्वामिनी' हँसि कण्ठ–लगाई ॥२९३॥

आजु कछू कुंजनि में वरषासी।
बादल दल में देखि सखीरी, चमकति है चपलासी ॥
नान्ही नान्ही बूंदनि कछू धुरवासे, पवन बहै सुखरासी।
मन्द मन्द गरजनि सी सुनियतु, नाँचति मोर सभासी ॥
इन्द्रधनुष में बग पंकति डोलति, बोलत है कोकिलासी।
चन्द्रवधू छबि छाइ रही मानौं गिरि पर स्यामघटासी ॥
उमग मही रुह से महि-फूली, भूली मृगमालासी।
रटत 'व्यास' चातृक ज्यौं रसना, रसपीवत हूं प्यासी ॥२९४॥



सय्या रास-रस

राग विलावल—

स्याम सुन्दरी सुवेष, वदन कमल भँवर केस,
वृन्दावन पुन्य देस, नवनरेस प्यारे ।
कण्ठ बाँहु मेलि केलि करत, हरत सबकौ मन डरत,
नाहिन जोवन जोर विलसत न सम्हारे ॥
नव निकुञ्ज, सुखनि पुञ्ज वरषत अति हरषत दोऊ,
मन्दहँसन दूरि करत कोटिचन्द उज्यारे ।
गावत कल नाँचत वल, भृकुटि भङ्ग लोचन चल,
अँग अँग रंग भरे भाँवते हमारे ॥
विचित्र पत्र सेज रची, विविध माधुरी न बची,
निरखि मदन घरनि लची, तन पट न सम्हारे ।
विनोद रासि राधिकाकौ कौतुक सखीवृन्द देखि,
'व्यासदासि' दारुन दुख मेटि प्रान वारे॥२६५॥

राग-कल्याण—

रूपवति रसवती गुनवती राधा प्यारी,
प्रगट करत अति सरस सुधँग ।
उरप तिरप गति भेद लेति,
अति नटवति, मिलवति तान तरंग ॥

रिझवति मोहनलालहिं छातीसों लगाइ लेति,
देति अधर-मधु प्रीत अभंग ।
कोकवती रति विपरीत गति वितरति,
निरखत 'व्यास'हि सुख अङ्ग अङ्ग ॥२६६

विहरत दोउ ललना लाल ।
वन्य अनन्य सरन सुख कारन, वैरिनि के उरसाल ॥
कुञ्ज-महल महँ हेज सेज पर चम्पक वकुल गुलाल ।
उड़त कपूर धूरि कुँकुम रंग, अङ्ग राग वनमाल ॥
गौरस्याम परिरम्भन राजत, पीवत बाहु मृनाल ।
मानहुँ कनक-वेलि बेलि सौं उरझी तरुन तमाल ॥
कुच-गहि चुँवन करत डरत नहिं, पीवत अधर रसाल ।
नीवी-मोचत नेति वचन सुनि, सोचत नहीं सु लाल ॥
जंघनि परस पुलकावलि वेपथ, कलि कूजित नव वाल ।
भृकुटी विलास हाँस मृदु बोलत, डोलत नयन विसाल ॥
उरजन पर कजि सोभित जनु कमलनि पर चुंग मराल ।
रति-विपरीति राधा निरत्तति बाजत नीवी जति ताल ॥
अँग सुधँग रँग रस बरषत, हरषित सहचरि जाल ।
वृन्दाविपिन राधिका मोहन, 'व्यास' आस प्रतिपाल॥१६७

राग-गौरी—

प्रगटत दोऊ सुरत सुधँग ।
नव निकुञ्ज मन्दिर मृदु तालिम, उपजत कोटिक रंग ॥
मनिमय वलय किंकिनी नूपुर बाजत ताल मृदंग ।
उरप तिरप आलिंगन चुँवन, लेत सुलप अँग सँग ॥
अलम लाग आतुर नागर नट कर जुग उरज उतंग ।
रति विपरीत मान महँ नागर, दसन अधर अनुषंग ॥
लोचन लोल विलोल चरन कटि मन्दहाँस भ्रू-भंग ।
यह छबि कहत 'व्यास' कवि भूलत,
सेष अनन्त अनंग ॥ २६८ ॥

विपरीत रस–बिहार

राग–देवगन्धार—

आज वन विहरत जुगल किसोर ।
सुरत रास नाँचे सब रजनी, बिछुरत नाहिन भोर ॥
कामिनि कुटिल तमकित न भूलति रति विपरीति हिलोर ।
कामी करत बयारि श्रमित अति प्यारी वसनाँचल छोर ॥
विगलित केस कुसुम कुल वरषत पिय पर, जनु घन घोर ।
अधरामृत माते कोऊ काहू गनतन जोवन जोर ॥

हरि उर ऊपर विलसत दोऊ, पीन पयोधर टोर ।
मानहुँ गौर स्याम सुख सागर, तरलित तुंग हिलोर ॥
मन्दहाँस परिहाँस परायन, भ्रकुटि-कुटिल चित चोर ।
विवि मुखचन्द सुधा रस पीवत, लोचन चारु चकोर ॥
कबहूं कामिनि कैं, हरि पाँइन लागत लेत निहोर ।
झिलत मिलत सुखनिरखत'व्यासहि'आनन्द बढ्यौनथोर२९६

आज वन विहरत जुगल किसोर ।
सघन कुँज-भवन महँ विहरत,
सहज सयान प्रीति नहिं थोर ॥
गौर स्याम तन प्रति नील पीत,
पट मोर मुकुट सिर खोर ।
भूषन मालावलि सहज मृगमद,
तिलक भाल भरि वोर ॥
प्रथम आलिङ्गनि चुंवनि करि,
अधरन की सुधा निचोर ।
मानहुँ सरद चन्द की मधु,
चातृक तृषित चकोर ॥
मन्दहँसिन मन मोह्यौ भृकुटी,
सैंननि चितु चितु चोर ।

करजनि जुगल उरज रस आतुर,
कसि कञ्चुकि बँद तोर ॥
कोमल मधुर वचन रचना-रचि,
नागर नीवीवन्धनि छोर ।
सरस जघन परसत सुख उपजत,
कुंवरि हँसी मुख मोर ॥
कोक सुरत रस वीर धरी दोऊ,
कहत रहत हो होर ॥
सिथिल नैंन पिय के देखत,
विपरीति 'व्यास' रस रति गौर ॥३००॥

राग-विलावल—

निरखि सखी विविमुख नैंन सिरात ।
रति विपरीति मीत स्यामल पर, सोभित गोरे गात ॥
लटमें लट, पटमें पट अरुझे, उरमें उर नव जात ।
मुखमें अधर नाहु वांहुनि में सुदृढ़ वन्धे वलिजात ॥
चन्दवदन रसकन्द किसोर चकोर पीवत न अघात ।
'व्यासस्वामिनी' पिय सँग विहरत,
मान सीस दै लात ॥ ३०१ ॥

विहरत राधा कुञ्ज लसीरी।
सीत सुगन्ध मन्द मलयानिल सीतल सरद ससी री ॥
करुनारस वरुनालय नखसिख मोहन अङ्ग गसी री।
मानहुँ पावसऋतुकौ आगम, घन दामिनि विगसी री ॥
रूप सील गुन सहज माधुरी, रोम रोम वरसीरी।
यह छवि 'व्यास' सेष, चतुरानन,
वर्नत वैस खसी री॥ ३०२ ॥

राग-सारङ्ग—

वन विहरत वृषभानकिसोरी।
कुसुमपुञ्ज सयनीय कुञ्ज कमनीय,
स्याम रङ्ग रस वोरी ॥
नीवी निवँधन छोरत मुख मोरत,
पिय चिवुक चारु टकटोरी।
ओली ओढ़ि खोलि चोली,
दुख मेटि भेटि कुच जोरी ॥
सरस जघन दर्शन लगि,
चरन पकरि हरि कुँवरि निहोरी।
मदन सदनकौ वदन विलोकत,
नैंननि मूँदति गोरी ॥

केसाकरषि आवेस अधर,
खण्डित गण्डनि झकझोरी।
रति विपरीति पीत छवि स्यामहि,
फवि गई अङ्गनि रोरी॥
विविध विहार माधुरी अद्भुत,
जो कोई कहै सु थोरी।
जाहि प्यास या रस की तासौं,
'व्यास' प्रीति जिन तोरी॥३०३॥

राग–जयति श्री—

गोरी गोपाललाल विहरत वनवासी।
सघन कुञ्ज तिमिर पुञ्ज हरत, करत हाँसी॥
अधर पान मत्त नैंन सैंन भ्रुव विलासी।
अकोर उरज दै किसोर बाँधे लट पासी॥
कुच धरि हरि चुँवन करि भुजन बीच गाँसी।
कर अञ्चल चञ्चल अति हित चितकी निज़ुदासी॥
विपरीत रति रङ्ग रचे, अङ्गनि छवि भासी।
'व्यास' निरखि मुदित निगम सिन्धु सीव नासी॥३०४॥

सुरत-युद्ध रस-विहार

राग-षट—

मानौं माई काम कटकई आवति ।
मद गयन्द चंचल आगैं दै, अञ्चल ढाल ढुलावति ।।
घूंघट छत्र छाँह विगलित कच जानौं चौंर ढुरावति ।
कुचजुगकठिन सुभट, कवची पट सज्जि, लट असि चमकावति ।।
कोकिलसी धुनि गावति कीर धीर सहनाइ बजावति ।
झाँझि भारही, रूंज भँवर नूपुर निसान बजावति ।।
अङ्ग अङ्ग चतुरंग सैंन रव नव नागरहि चुरावति ।
'व्यासस्वामिनिहि' बाँह बोल दै,
सहचरि हरिहि मिलावति ।। ३०५ ।।

मदनदल साजैं प्यारी आवति ।
रजनीमुख मोतन मुख कीनैं सघन निसान बजावति ।।
कवची पहिर सुभट आगैं करि मदन गयन्दै सनमुख लावति ।
नैंन बाँधि बानैंत बनैं अति उर काँपतु जब असि चमकावति ।।
सनमुख धनुष बान अनियारे ऐंचति पनच कानलौं लावति ।
मोहि प्रवीन जानिकैं अकिलौ निदरति रागमलारनि गावति ।।
जोवन मदमातो नहिं सकुचति, कोऊ बीचु करहु डरपावति ।

कहि ब्यौरौ हँसि जोरि वसीठी,
'व्यास' सखी दै बाँह मिलावति ॥३०६॥

राग-मारु—

आजु अति कोपे स्यामा स्याम।
वीर खेत वृन्दावन दोऊ, करत सुरत संग्राम॥
मर्मनि कंचुकि वर्म सुदृढ़ कुच चर्मनि, लट करवाल।
अङ्ग अङ्ग चतुरंग सैंन वर भूषन रव दुन्दुभि जाल॥
गौर स्याम बानैत बनै निजु विरदावलि प्रतिपाल।
अञ्चल चञ्चल ध्वजा पताका, छवि केस चमर विकराल॥
भौंह धनुष तैं छूटत चहुँ दिसि, लोचन बान विसारे।
भेदत हृदय कपाटनि निर्दय, तोवर उरज अन्यारे॥
दसन सक्ति नख सूलनि वरषति, अधर कपोल विदारे।
घूंघट, घूघी, मुकुट, टोपा कवची, कंचुक भये न्यारे॥
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज संकट में घेरे।
पीन पयोधर, हार नितम्ब, प्रहार किये बहुतेरें॥
प्रनय कोप बोली कैतव, अपराध किये तैं मेरे।
परमउदार 'व्यासकीस्वामिनि',
छाँड़ि दिये करि चेरे॥ ३०७॥

सुरत रन स्यामा स्याम जुझारु ।
वीर खेत वृन्दावन विरचे, कुञ्जराज के द्वार ॥
नखसिख अङ्ग सुभट दल साजैं भूषन पट सिंगार ।
सेज सुरति आरूढ़ गूढ़ गति, उपजति कोटि विकार ॥
कर उरजन सौं लरत टरत नहिं, लागत नख सर सार ।
सन्मुख अधर दसन सहि जूझत, खण्डित गण्ड उदार ॥
घूँमि घूँमि सुभट दोऊ जन रोस भरे न टरे सुकुँवार ।
अति आवेस केस विलगति गिरत न लागी बार ॥
बाँधि चतुर भुजपासि परस्पर गौर स्याम सुख लार ।
'व्यासस्वामिनी' के रसवस हरि कीने मार सु मार ॥३०८॥

राग-विहागरो--

सुरत रन वीर दोऊ धीर सनमुख लरत ।
इतहिं नागरि कुँवरि, उतहिं नागरु कुँवरु,
मल्ल प्रति मल्ल अंग संग तालिम करत ॥
अङ्ग प्रति अङ्ग सैंनिक सुभट साजि,
दल वलय नूपुर घोष रोष निसान हत ।
दसन तोवर सक्ति सूल लागत ऊलप अधर,
खण्डित गण्डित गण्ड पीक श्रोनित श्रवत ॥

कुञ्जसयनीय रथ रूढ़ सारथि सखी गूढ,
विगलित केस चँवर ध्वज फरहरत।
खर नखर वान छूटत, कवच कंचुकी,
सुदृढ फूलत उरज सूर नहिं डर डरत॥
बाँहु जुग बन्धननि बाँधि नन्दनन्दनहिं,
राधिका जयति आचरति विपरीति रत।
रमित संग्राम भरि श्रमित स्यामहि जानि,
'व्यास' निजु दासि करकमल अञ्चल चलत॥३०९॥

राग-सारङ्ग—

विहरत वृन्दाविपिन विहारी।
दूलहु लाल लाड़िली दुलहिन, कोटि प्रान ते प्यारी॥
वाम गौर स्यामल कल जोरी, सहज स्वरूप सिंगारी।
कुसुम पुञ्ज कृत सैंन कुञ्ज-महँ, चन्द वृन्द अधिकारी॥
कुँवरि कवीर-गहि चोलो खोली, तिरनी तरलित सारी।
नागर नट के पटहि झटकि, हँस मटकति नवलदुलारी॥
सुरत समर महँ सन्मुख रहत, दोऊ अनी अन्यारी।
'व्यास' काम बल जीते रति रन,
विहँसि बजावति तारी॥ ३१०॥

राग-कल्याण—

मेरे तनु चुमि रहे अँग अन्यारे ।
टारे हूं तें टरत न सुन्दरि, उर तें पीन पयोधर भारे ॥
मेरे नैंन कुरँगनि वेधत, तेरे लोचन बांन बिसारे ।
तेरे दसन प्रचंडनि मेरे, अधर गण्ड खण्ड कर डारे ॥
अति-निसंक तेरे खर नखरनि मेरे गउनि अँग सिंगारे ।
नख सिख कुसुम विसिख सर वरषत,
'व्यासस्वामिनी तोसौं हारे ॥ ३११ ॥

राग-षट व आसावरी—

वाँके नैन अन्यारे बान ।
चितवनि फन्दनि महँ मोहन-मृग,
अरुझ गिरयौ बिनु गान ॥
कियौ सहाउ अघर करुनाकरि,
दियौ सुधा धर पान ।
गहि-भुजमूल कुचनि विच राखे,
नाहु नाहु के प्रान ॥
रति रन मिथुन लरत भट दोऊ,
बाजत दाम निसान ।

'व्यासदास' के नैंन चकोरी,
पीवत कोकिल गान ।। ३१२ ।।

राग-षट—

गौर स्याम बानैत नैंन सजि,
सन्मुख चमूँ चलो ।
वाम अङ्ग तामस तकि तमके,
सुनत दांमत वली ।।
अपनी जय जस कहँ ममिता करि,
जूझत जुगल बली ।
विरद विवस चमकनि आयुधि की,
सोभा लगति भली ।।
कुच कपोल कर अधर नैंन,
भ्रुवकी मति गति वदली ।
अमित परस्पर अमृत पिवावत,
ज्यावति मिथुन थली ।।
'व्यास' किसोर भोर नहिं विछुरत,
कोक कला कुसली ।
रसिकनि की रसना रस चाखत,
विकल विरस वगली ।।३१३।।

जोवन बल दोऊ दल साजत राजत खेत खरे ।
गौर स्याम सैनिक सनमुख, रजनी मुख कोप भरे ॥
दस नख बाँन प्रहार सहत दोऊ, उरज सुभट न टरे ।
भागत नहिं लागति छति अधरनि दसनायुध निदरे ॥
नैंन सिलीमुख छूटति अँगनि, फूटति उरनि उरे ।
मानहुँ मत्त गयन्दिनि वन अहङ्कार परे ॥
तनसौं तन मनसौं मन अरुझ्यौ, धीर न प्रभु विचरे ।
'व्यास' हँसत दोऊ कुञ्ज-सैन तें,
प्रात समय निकरे ॥ ३ ४ ॥

कुञ्जमहल द्वार-रस

राग-विलावल—

ठाढ़े दोऊ कुञ्जमहल के द्वारैं ।
राधामोहन मोहि लागत है तू देखियौ,
नैंकु नैंनभरि सोभित अङ्ग सुढ़ारैं ॥
अति आतुर तोही तन चितवत इकटक,
पलक लगत नहिं लोचन, मीन लगैं ज्यौं गारैं ।
'व्यासस्वामिनी' चितवत ही चूँवित ललित,
विहँसि उरसि पिय लई विहरत राख्यौ रँग अध्यारैं ॥ ३ १ ५ ॥

राग-कमोद—

उनीदे नैंननि रसु ।
सुरत रङ्ग रंगमगे लोल डोल कछुक आलसु ॥
सिथिल पलक अलक झलक झलमलात करीट पसु ।
कमल में अलि अरुझे जनु प्रात करत गवन सहसु ॥
गर्व इतरात अति गावत गति रन जय जसु ।
स्यामस्वामिनी स्याम छवि 'व्यास' रसिक सर्वसु ॥३१६॥

राग-विहागरौ—

मुख छवि देखत नैंन लचे ।
मान कृत अपमान विसरे, पलक प्रेम नचे ॥
अधर, दसन कपोल भौंहनि, रूपसिन्धु सचे ।
मनहुँ मुक्ता लाल कञ्चन इन्द्रनील खचे ॥
लाल लोचन सैंन सर पै, मैन ओल वचे ।
अलक झलकनि नासिकामनि हँसनि रंग रचे ॥
भोर जुगल किसोर जोवन, जोर तमकि तचे ।
'व्यासदासहि' रंगरासहि देत मार मचे ॥ ३१७ ॥

राग-सारङ्ग —

सुरत रंग राचे ललित कपोल ।
मधुर मधुर कर रंग नागरहि छवि न फवति गति गोल ॥

अधर दसन नख अङ्क पीक रस पंकिल करत कलोल ।
अलक पलक प्रतिबिंबित, झलकत मनिताटंक बिलोल ॥
विहसत लसत वसत पिय नैंननि माँगत मैननि ओल ।
छूटी लट लटकति कुच घट पर नाहिन नील निचोल ॥
जानि कमलदल आनि लचे लम्पट मधुपन के टोल ।
'व्यासस्वामिनी' भ्रुवविलास लव मोहन लीने मोल ॥३१८

राग-देव गन्धार—

राधाही आधीन किसोर ।

गौर अंग के रंग सिन्धु कौ,
पावत नाहिन हरि आदि ओर ॥
महामाधुरी अधर-सुधा-विधु,
पियत जियत उर चामुये कोर ।
मेघ सुदेस केसकुल देखत,
नाँचत गावत मोहन मोर ॥
मानसरोवर ऊपर निवसतु,
लाल-मराल कमलकुच कोर ।
स्वेद सलिल सरिता महँ विहरत,
मीन मनोहर चञ्चल चोर ॥

वरषत मेह सनेह बूंद चुनि,
हरि चातिक मधु जोबन जोर।
'व्यास' बैस बस लूटत दोऊ,
छूटत नाहिन जानत भोर ॥

राग-सारङ्ग—

वनी व्रषभान जान की वेटी।
निविडि निकुञ्ज कुसुम-पुञ्जनि पर स्याम वाम अङ्ग लेटी॥
रति निसि जगी सोवत नहिं भोर किसोर जोर गुजरेटी।
पियके हियमें जिय ज्यौं राजति, नाहु वाँहु वल भेटी॥
विहँसनि नैंननि की सैंननि मनु मनमथ अनी खसेटी।
लोभी लाल'व्यासस्वामिनि'जनु,कञ्चन रासि समेटी॥३२०

हिण्डोलना-झूलन

राग-कल्याण—

देखौ गौरहि स्याम झुलावहि।
वर्षारितु वृन्दावन हित करि,
हरषि हिंडोरना गावहिं ॥
डोलत वग, बोलत चातक, पिक,
घन दामिनि वनि वन आवहिं।

रिमझिम बूंद परत तन भीजत,
मन परिताप बुझावहिं ॥
कबहूं हिलमिलि प्रीतम दोऊ,
जोबन जोर मचावहिं ।
उरसौं उरज परसि हँसि रसिया,
अधर-सुधा मधु प्यावहिं ॥
बरषत विटप कुसुम-कुल व्याकुल,
सुर वनिता सिर-नावहिं ।
ताल, मृदङ्ग बजावति दासी,
'व्यास' निरखि सचु पावहिं ॥३२१॥

राग-सारङ्ग—

मेह सनेही स्याम के वृन्दावन पर्वत ।
दामिनि दमकति चमकति कामिनि,
झूलत दम्पति तन मन हर्षत ॥
ललना लाल हिडोरा गावत,
सुनि धुनि मुनिव्रतकौ मन कर्षत ।
झुलकि पुलकि वेपथजुत भेंटत,
उर उरजनि सौं घर्षत ॥

झूका सह तन डांडी गहतन,
कर कहि चुँवन लेत न लर्षत ।
नैंन सैंन दै हँसत लसत दोऊ,
'व्यासदासि' चिवि मुख सुख वर्षत ॥३२२

राग-मलार—

झूलत फूलत कुञ्जविहारी ।
दूसरी ओर किसोर वल्लभा श्रीवृषभान दुलारी ॥
कुलकत हँसत खसत कुसुमावलि सुन्दर झूम्मक सारी ।
कवहुँक पटतरि झुलवति गावति प्यारिहि पिय रसिया री ॥
देखति नैंन सफल करि खेलत,
कोटि 'व्यास' वलिहारी ॥ ३२३ ॥

हिण्डोलना झूलत नवलकिसोर ।
वरषत मेह हरयारौ साँवन, जहँ तहँ नाचत मोर ॥
दामिनि दुरति भामिनि छवि निरखत, चंचल अञ्चल छोर ।
डोलत वक बोलत पिक चातक, सुनत मन्द घनघोर ॥
हियसौं पियहि लगाइ मचायौ अवला जोवन जोर ।
सीकत स्याम गिरत तें उवरे, कर गहि उरज कठोर ॥
पट, भूषन, लट, उरझि न छूटति, वाढ़ी प्रीति न थोर ।
कुच-गहि चुंवन करि मुख देखत, सुखसागर झकझोर ॥

गावति नाँचति सखी झुलावति गति उपजत चितचोर।
राख्यौ रंग 'व्यासकीस्वामिनि', रतिरस-सिन्धु हिलोर॥३२४॥

राग-धनाश्री—

जाकैं राधिका सी घरनि, तरनिजा-तट घर,
सो नारि नहु काहि न फूलै।
वृन्दावन सुख झिलि, ललितादिक दासी गावति,
मुदित झुलावति, सुरत हिण्डोला निसिदिन झूलै॥
सो अवतार कदम्ब मुकुटमनि सुन्दर,
सुघर स्याम-तन पीत दुकूलै।
रास विलास हाँस रस वरषत,
सपनेंहूँ जिनि 'व्यासहि' भूलै॥ ३२५ ॥

राग—जयति श्री—

झूलत फूलत रंग भरे मैंन।
सहचरि रंगभरी गान करत कल, पावति अति सुख,
झुलवति हैं सब समुझति हैं सैंन॥
नख सिख छवि विवि जु परस्पर,
अधर अरुन वीरी विवि दैंन।
नासा-मोती थकित न चकित रहे,
गहे सेजु जद्दपि चपल अन्यारे नैंन॥

उर नग मुकुर विलोकति नागरि,
हँसत लसत छवि कहत बनैंन।
उपमा जिती तिती सब वारी, तुच्छ करि डारी,
या छविउपर अब कहा कहौं लहै कछूचैंन ॥
हरिवंसी हरिदासी सनमुख,
कान लगै कछु बोलत बैंन।
व्यासदास कैं चुभी, खुभी ग्रीवा भुज,
किलकि किलकि प्रीतम उर लैन ॥३२६॥

बसन्त

राग-बसन्त—

देखि सखी अति आज बन्यौंरी, वृन्दाविपिन समाज।
आनन्दित ब्रज लोग भोग सुख, सदा स्याम कौ राज ॥
राधारवन बसन्त रचायौ, पञ्चम धुनि सुनि कान।
धरनि गिरत सुर, किन्नरकन्या विथकित गगन विमान ॥
कुलकित कोकिल कुञ्जनि ऊपर, गुञ्जत मधुकर पुञ्ज।
बाजत महुवरि, बेंनु झाँझ, डफ, ताल पखावज़, रुञ्ज ॥
केसरि भरि भरि लै पिचकारी, छिरकत स्यामहि धाइ।
छिरकि कुँवरि बूँका भरि चोवा, लई कण्ठ लपटाई ॥

मुकलित विविध विटप कुल बरषत पावन पवन पराग।
तन, मन, धन, न्यौछावर कीनौं,
निरखि 'व्यास' बड़भाग ॥३२७॥

चलि चलिहि वृन्दावन वसन्त आयौ।
फूलत फूलनि के भँवरा, मारुत मकरन्द उड़ायौ॥
मधुकर कोकिल कीर केकी मिलि, कोलाहल उपजायौ।
नाँचत स्याम बजावत गावत, राधा राग जमायौ॥
चोवा चन्दन बूँका वन्दन, लाल गुलाल उड़ायौ।
व्यासस्वामिनी की छवि निरखत,
रोम रोम सचु पायौ॥ ३२८॥

ऋतु बसन्त मयमन्त कन्त संग गावति कुँवरि किसोरी।
सुर वन्धान तान सुनि मोहन रीझि कहत हो, होरी॥
रंग छींट छवि अङ्ग विराजत, मञ्जु जलजमनि, रोरी।
वीथिन बीच कीच मची, मानसरोवर केसरि घोरी॥
बाजत ताल मृदंग बेनु डफ मन मुहचंग उमंग न थोरी।
उड़त गुलाल अबीर कीर पिक बोलत मोरन मोरी॥
छूटीलट, टूटी मालावलि विगलित कंचुकि, कटि डोरी।
'व्यासस्वामिनी' स्याम अङ्क भरि,
सुख सागर महँ बोरी॥ ३२९॥

नाँचत मोहनी मोहन सँग धुनि बाजै,
सुनि सुरत मदन रति गावत वसन्त।
राग रंग रह्यौ, रसकौ प्रवाह वह्यौ,
मोपै नहिं परत कह्यौ तान मान गुन गति न अन्त॥
मधु पटवी सुवास फुलनि कौ रंग जाकौ,
कीच वीच वीथिन के, राजत वृन्दावन सुकन्त।
गौर स्याम तन छीट, छवीली छवि फवि गई व्यासहि,
कहि क्यों आवै, सगन मगन भयौ मनमयमन्त॥३३०

खेलत राधिका गावत वसन्त।
मोहन सँग रंग सौं देखत सव सोभा सुख कौ न अन्त॥
बाजत ताल मृदङ्ग झाँझ डफ आवज वीना वीन सुकन्त।
चोवा चन्दन बूका बन्दन साखि गुलाल कुँकुम उड़न्त॥
मोरै आम काम उपजावत, गावत कोकिल मनौं मयमन्त।
गुञ्जत मधुप पुञ्ज कुञ्जनि पर, मञ्जु रैन मलजु वहन्त॥
गौर स्याम तन छीटन की छवि,
निरखि विमोहे कमलाकन्त।
'व्यासस्वामिनी' के वन विहरत,
आनन्दित सव जीव जन्त॥३३१॥

खेलत वसन्त कन्त कामिनि मिलि,
हो हो बोलत डोलत फूले।
सुखसागर गावत दोऊ नाँचत,
नट नागरि वंसीवट मूले॥
मोरै आँमनि कोकिल कुञ्जति,
फूल झूमकनि अलिकुल झूले।
विविध रंग छिरकति छबि, अङ्गनि,
भूषन भूषित चित्र दुकूले॥
परनारी परनाहु वाहु गहि,
विगत लाज जोवन मद भूले।
'व्यासस्वामिनी' सङ्ग हरि विहरत,
विलपत पथिक वधू जन सूले॥३३२॥

बसन्त खेलत विपिन विहारी।
ललि. लवंगलता वीथिन में संग वनी वृषभानदुलारी॥
सखिन ओट दै कुँवरहि छिरकति राधा भरि पिचकारी।
लाल गुलालचलावति तकितकि कुँवरि वजावति दै, हँसितारी॥
वरषानै तैं गोपी आई स्यामहिं देत काम वस गारी।
छलकरि आँकौ भरि काजर लै आँखि आंजि पहिरावति सारी॥

सैंननि ही मनकी जिय पाई,रुख कीनौं है राधा प्यारी ।
'व्यासस्वामिनी' विहँसि मिली,
मोहन की छबि करत न न्यारी ॥३३३॥

बसन्त खेलत राधिका प्यारी ।
गावत नाँचत वेनु बजावत, अँस-भुजा धरि कुञ्ज-विहारी ॥
साखि जवादि कुमकुमा केसरि,छिरकत मोहन झूम्मक सारी ।
उड़त अबीर पराग गुलालहि,गगन न दीसैदिनु भयौ भारी॥
मधुकर कोकिल गुंजनि गुँजत, मानों देत परस्पर गारी ।
नखसिख अँग बनी सब गोपी,गावति देखत चढ़ीं अटारी॥
ताल,रवाब, मुरज डफ बाजत,मुदित सबै वृन्दावन नारी ।
यह सुख देखत नैंन सिरावैं 'व्यासहि'
रोम रोम सुख भारी ॥३३४॥

लाल विहारी प्यारीके-संग, वसन्त खेलत वृन्दावन में ।
गौर स्याम सोभा सुखसागर मोद विनोद समा तन मनमें ॥
तनसुखकी चोली कुँकुम रँग,भीजि रहो न देखियत तन में।
उरज उघारें से अनियारे, चुभि रहे नागर के लोचन में ॥
धाइ धरी भामिनि मोहनपिय हियैं लसति,दामिनि ज्योंघनमें ।
'व्यासस्वामिनी' की छबि छीटैं,
प्रतिबिंबित मोहन आनन में ॥ ३३५ ॥

खेलत राधिका मोहन मिलि माई आईरी वसन्त-पंचमी।
कण्ठ बाहु धरि नाहु छबीलौ छिरकत अरगाजा,
गावत नाँचत हो हो होरी हो धमारि जमी॥
मौरे आम काम उपजावति, फूले फूलनि की न कमी।
'व्यास' विपिन वैभव अवलोकत,
नारायन बिसरी लछमी॥ ३३६॥

राग-वसन्त (इकताल)

ऋतु वसन्त दुलहिन दूलह संग,
खेलत वाढ्यौरी रङ्ग निवाहि।
दुहूं दिसि फूलनि देखि भयौ,
सुख गावत नाँचत सैंननि चाहि॥
बाजत ताल मृदङ्ग झांझि डफ,
देखति सुनि आनन्द न चाहि।
केसरि भरि पिचकारिनि छिरकत,
मोहन धाइ धाइ गहत राधाहि॥
परिरम्भन चुंवन मिलि विहरत,
सुख सागर मह अवगाहि।
करि न्यौछावर वलि वलि जाइ,
तृनु तोरि जोरि कर मधुकरसाहि॥ ३३७॥

होरी की धमारि

राग-गौरी—

आजु बनी नव रङ्ग किसोरी।
कुँवर कण्ठ भुज मेलत झेलत,
खेलत फाग कहत हो होरी ॥
बाजत ताल, मृदङ्ग, झांझ, डफ,
सहचरि गावति कीरति कोरी।
उड़त अबीर गुलाल चहुँ दिसि,
चन्दन, बन्दन चोवा, रोरी ॥
कारी अँगिया झूम्मक सारी,
तन भूषित-भूषन सिर डोरी।
प्रथम मंगलाचरण कियौ पिय,
मंगल कलस पूजि झकझोरी ॥
केसरि भरि भरि पिचकारी छिरकत,
लूटत विधि खूटति नहिं थोरी।
[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible],
मुदित उड़ावति भरि भरि झोरी ॥
नाहिंन कोऊ काहू सूझति,
चतुर सखीनु चुराई गोरी।

करि हाँसी ललितादिक दासी,
अँचलु गाँठि कुँवर जौं जोरी ॥
चाहति फिरत राधिका स्यामहि,
निरखि हँसि सुन्दरि मुख मोरी ।
मन भायौ फगुआ लै छाँड्यौ,
मोहन ठग्यौ गांठि तब छोरी ॥
विहँसि मिली प्रीतम कों प्यारी,
जनु आनन्द सिन्धु महँ बोरी ।
चरननि गहि नागरि के नागर,
करि आलिंगन चिबुक टटोरी ॥
बरषत विटप पराग फूलि फल,
मधु धारा महँ धरनि हिलोरी ।
पुलकि पुलकि गोपी कुल सर उमगत,
सरिता गति अति थोरी ॥
इहि विधि डोलत वसन्त माधुरी,
सुन्दर वृन्दावन महँ घोरी ।
स्याम तुम्हारे राज लाज तजि,
'व्यास' निगम दृढ़ सीवाँ तोरी ॥ ३३८ ॥

राग-सारङ्ग—

अब हौं हरि प्यारे सौं खेलहुँ ।
आँको भेटौं दुख मेटों सुखसागर उर झेलहुँ ॥
कुँवर नाँह की वाँह पानि गहि कण्ठ आपुनैं मेलौं ।
'व्यासहि' यह उपहाँस स्याम लगि लोक वेद पग पेलौं ३३९

खेलत फाग फिरत दोऊ फूले ।
स्यामा-स्याम काम वस नाँचत, गावत सुरत हिंडोरे झूले ॥
वृन्दावन की सम्पति दोऊ, नागरि नट वंसीवट मूले ।
चोवा चन्दन बन्दन छिरकत छींट छवीले गात दुकूले ॥
कोलाहल सुनि गोपी धाई, विसरे गृह पति, तोक झरूले ।
'व्यासस्वामिनी' की छवि निरखत,
नैंन कुरंग रहे तकि भूले ॥ ३४० ॥

राग-गौरी—

ये चलि ललन भरहि मिलि चलि हो,
चलि अलि वेगि गिरिधरन भरहिं मिलि ।
अली चली गिरिधरन भरनकौं, पहरैं सुरङ्ग दुकूल ।
नवसित-अभरन साजि चली सब अँगनि अँगनि फूल ॥
सनमुख आवत होरी गावत, सखन सहित वलधीर ।
उभै मदन दल उमड़े मानहुँ जुरे सुभट रनधीर ॥

महुवरि चँग, उपँग, बाँसुरी, बीना मुरज मृदँग।
ढोलक, ढोल, झाँझ, डफ बाजत कह्यौ न परत सुखरँग॥
व्रज जन बाला रसिक गुपाला, खेलत रँगभरे फाग।
तान तरँगनि मुनि गन मोहे, छाइ रह्यौ अनुराग॥
रतन जटित पिचकारी भरिभरि छिरकत चतुर सुजान।
कनक लकुटि छैलनि पर टूटति फिरत कुँवरिजूकी आन॥
छूटत बसन, टूटति मनिमाला, धरत भरत भुज पेलि।
लाल गुलाल आनन पर वरषत, करत चपल कल केलि॥
इक भानपुरा की अमान गूजरी फूली अँग न माइ।
छैलनि खेदि कहूं लौ आई, हलधर पकरे धाइ॥
आई सिमिट सबै ब्रजबाला, लेति आपनैं दाइ।
मानौं ससि अवनी पर घेरयौ, उड़गन पहुँचे आइ॥
एकै धाइ धरत आँकौं भरि, एक मरोरति कान।
इक सनमुख ह्वै साजि आरतौ, बहु पूजा सनमान॥
जोरि सखन मनमोहन धाये दाऊजू की भीर।
जुवती जूथ सन्मुख ह्वै उमड़े कूकें देत अभीर॥
जुवतिनि नैंन सैंन भेदनि में, मोहन लीने घेरि।
मधुमंगल हँसत दूरि भयौ ठाढ़ौ, सुवल बजावति भेरि॥

मोहन पकरि जूथ में ल्याई, पूजा रचति वनाइ।
दधि अछित रोरीकौ टीकौ गनपति गौरि मनाइ॥
एकै कुच विच लेत लालकौं लाइ रहत उर झेलि।
मानहुं तरुन तमालहि लपटी कनकलता वहु वेलि॥
गौरलेपन मोहन मुख लेप्यौ, लिखी छबीली भौंह।
ये ढोटा वृषभानराइ के सुबल तुम्हारी सौंह॥
पकरि श्रीदामा चोवा चन्दन माड्यौ लै आई भरि वाथ।
नन्दराइ यह ढोटा जायौ, दया हमारे साथ॥
भजि मनसुख जसुमति पै आयौ, कहत आतुरे वोल।
वृषभानपुरा की जोर गूजरी भैयन लैगई बोल॥
चली महरि तव यह सुख देखन, जोरि आपनौं वृन्द।
सुर नर मुनिजन एक भये हैं थकित भये रवि चन्द॥
देखति सोभा ब्रजपति रानी आनन्द मन महँ होइ।
आजु रोहिनी भाग हमारौ, ताहिन पूजै कोइ॥
तव रोहिनी ललिताजू बोली, आगैं आवहु भाम।
करजोरैं हम करहिं विनती चलहु हमारे धाम॥
तव ललिता राधा पै आई वात सुनहुँ दै कान।
वड़ी महरि आपनें गृह वोलति, पायौ चाहति मान॥

तब राधा सखियन पै आई, लगति सबनि के पाँइ।
गावत खेलत हँसत हँसावत, चलहु महरि कैं जाइ॥
इतनौं सुनत सबै जुर आईं, चली महरि के द्वार।
ब्रजपति रानी दृष्टि परी तब भाजि गये सब ग्वार॥
आगैं ह्वै रोहिनीजू आई अरघ पाँवड़े देति।
कंचन थार उतारि आरतौ वारि बलैयाँ लेति॥
रतन जटित सिंहासन आन्यौं, दियौ किसोरहिं राज।
बाबाजू अब करत बिनती मोल लये हम आज॥
अगनित मेवा गनौं कहाँ लगि भूषन, बसन अमोल।
प्रेम मगन नन्दरानी बरषति कहत बचत मधु बोल॥
नौतन भूषन खुले सबनि तन, उपंजत कौटिक भाइ।
प्रथम उतीरन दये 'व्यास' कौं,
बिमल बिमल जस गाइ॥ ३४१॥

हिण्डोल

राग-बसन्त व सारङ्ग—

स्याम। स्याम बनें वन झूलत, मरकत कनक हिण्डोरै।
ऋतु बसन्त अनुराग फाग सब, खेलत केसर घोरै॥

बाजत ताल मृदङ्ग झाँझ डफ मुरलिहि मिलिसुर थोरै।
गावत मोहन को मोहन धुनि, सुनि, सबकौ चित चोरै॥
झूका जोवन जोर देत दोऊ, कुलकि पुलकि झकझोरै।
स्याम काम बस चोली खोलत, आतुर निसि के भोरै॥
डांडी छाँड़ि करत परिरम्भन, चुँवन देत निहोरै।
सैंननि बरजति पियहि किसोरी, दै कुच कोर अकोरै॥
खैंचत पट लम्पट नटनागर, झटकति नीवीबँधन छोरै।
नेति नेति सुनि रहत न लाल निहोरत चिबुक टटौरै॥
देखि सखिन गुलाल उड़ायौ निरखत छबि कर जोरै।
व्यासस्वामिनी राजति स्यामहि, सुखसागर में बोरै॥३४२

राग-सारङ्ग—

फूलत दोऊ झूलत डोल।
रच्यौ अलौकिक कौतुक निरखत, रति पति दीजति ओल॥
पिय प्यारी उरसौं उर जोरें, अधरन सौं अधर कपोल।
चारयौं बाहु पीठि पर दीठि, नाँहु पर कुचनि विलोल॥
जोवन जोर देत दोऊ झोका चञ्चल अलक निचोल।
मुञ्च मुञ्च रव नेति नेति नवनागरि बोलत बोल॥
तन सौं तन, मन, सौं मन उरझ्यौ, बाढ़ी प्रीति अमोल।
परिरम्भन चुँवन रति लम्पट, नीवि निवन्धान खोल॥

वाजत ताल पखावज, आवज, डफ ताल दुन्दुभि, ढोल।
वीथिन बीच कीच अरगज की, गावत सहचरि टोल॥
सुक, पिक, मोर, मराल, मधुप,
मृग, मुदित पुलिन्दिनी कोल।
'व्यास स्वामिनी' को जसु गावत,
मधुरित होला होल॥ ३४३॥

फूलन की रचना

राग-कल्लाण—

फूलनिकौ भवन फूलनिकौ पवन बहै,
फूलनि की सेज रचि, फूलनि के चँदोये॥
फूलनि की सारी, चोली, पहिरें प्यारी,
देखत फूलैं मोहन के नैंननि के कोये॥
फूले उरज करज परसत ही,
पान करत फूले अधर निचोये।
यह सुख निरखि 'व्याससखी' फूली,
फूले अङ्ग न मात सकल दुख खोये॥ ३४४॥

फूली फिरति राधिका प्यारी पहिरें फूलनि की डंडिया।
नखसिख फूलन ही के भूषन, पहिरे फूलनि की अङ्गिया॥

फूले वदन सरोज पयोधर, फूली अलक पलक अँखिया ।
नाँचति गावति राग वसन्तहि,सुनि फूली मोहनकी छतिया॥
चोवा चन्दन भरि पिचकारी, छाँडत नन्दनन्दन रसिया ।
केसरि,साषि,गुलाल लाल पर,वरषि हरषि वृषभानहिया ॥
वजत मृदङ्ग,उपङ्ग,ताल डफ,रूंज,रवाव,झाँझि डफिया ।
हाव भाव परिरम्भन चूँवन,
देखति 'व्यास' भई पर वसिया ॥३४५॥

ब्रजलीला-प्रकरण

श्रीराधा मङ्गल

राग—अल्हैया, विलावल (मूलताल)

श्रीवृषभानकिसोरी सुन्दरि वृन्दावन की रानी जू ।
चन्दवदन चम्पक तन गोरै,
स्याम घरनि जग जानी जू ॥
सुक सनकादिक नारद जाकी,
गुपति रति गति पहिचानी जू ।
ताकी महिमा श्रीहितहरिवंस,
रसि जयदेव बखानी जू ॥

ताहि 'व्यास' कैसैं कै वरनै,
हरि सुन्दरि मत दै है जू ।
जो नरनारि भक्ति चाहि है,
सो निसिदिन सुनि कै है जू ॥
राधामङ्गल नाम अनभतौ,
पतितन कौं पावन है जू ।
रुचिकरि गावत हरिहि सुनावत,
सो वृन्दावन में वसि है जू ॥
जो कोऊ कोटि कल्प लगि जीवै,
रसना कोटिक पावै जू ।
तदपि रुचिर वदनारविन्द की,
सोभा कहत न आवै जू ॥
कोटि मदन लावण्य सुभग तन,
मोहन के मन भावै जू ।
नाँचति गावति क्रीड़ति नागरि,
पिय नागरहि रिझावै जू ॥
नखसिख सुन्दरता की सीवाँ,
कौतिक अवधि किसोरी जू ।

रसना एक, अनेक रूप गुन,
जो कछु कहैं सो थोरी जू ॥
निसदिन कुञ्ज भवन प्रीतम संग,
सुरत सिन्धु महँ बोरी जू ।
एक प्रान द्वै-देह रीति यह,
प्रीति सबनि सों तोरी जू ॥
सहज सिंगार लाड़िली सुन्दरि,
उपमा तरुनी कोहै जू ।
विविधि विलास हाँस रस बरषत,
सैंननि मोहन मोहे जू ॥
झूमक सारी कारी अङ्गिया,
पीन पयोधर सोंहै जू ।
कनक कमलकी कली अली जुग,
अनी अन्यारिन मन पोहै जू ॥
केस सुदेस अलक घुँघराले,
तरल तिलक भौंहनि मटकें जू ।
ऐंन नैंन की सैंन अन्यारी,
प्रीतम के उर खटके जू ॥
बेसर गजमोती झलकत,
उर कारी लट लटकें जू ।

अरुण कपोल विलोल तरकुली,
खुटिला चुटिलहि हटके जू ॥
दारयौं दसन विम्ब सरसाधर,
वदन सदन वीरी जु रची जू ।
मधुर बचन कोकिलसी कूजति,
पिय श्रवननि सुखरासि सची जू ॥
बलि वलि जाऊँ मुखारविन्दु की,
कोटि मदन सोभा न वची जू ।
चितवनि ऊपर सव जग वारौं,
जासों विधि बे काज पची जू ॥
पोति जंगाली गरै लरै द्वै,
मुक्ताफल उर माला जू ।
चौकी चमकति कुच बिच मृगमद,
तिलक कियौ गोपाला जू ॥
बने नवैया अति चौपहलू,
सोभित वाहु मृनाला जू ।
कर कंकन पौंची मखतूली,
चचरि चुरी जु रसाला जू ॥

मेंहदी नखनि अँगुरियन मुदरी,
नग अङ्गनि अति छाया जू।
हरि संसार वासना शृङ्खलनि तजि,
बांधे राधा माया जू ॥
आदि अन्त छूटत नहिं जैसैं,
विषयनि बाँधति जाया जू।
हाव भाव करि पिय पर वरषति,
रति सुख पोषत काया जू ॥
कटि केहरि किंकिनि तिरनी,
जघन नितम्बनि भारी जू।
चरन महावर नूपुर बाजत,
मनि चूरा चौधारी जू ॥
नखसिख पर भूषन सोहैं,
भूषित पिय कुँवरि सिंगारी जू।
'व्यासस्वामिनी' के पद नख की,
कमला करति न सारी जू ॥३४६॥

श्रीलालजू की बधाई

राग-गौड मलार—

गोपी गावति मङ्गलचार ।
कान्ह कुँवर प्रगटे जसुदा कें,
बाजत बैनु पखावज तार ॥
घर घर तैं बनि बनि सब दौरी,
भूषन पट सजि सहज शृङ्गार ।
फल, मञ्जरी, दूध, दधि, रोचन
हाथनि सोभित कञ्चन थार ॥
राधा लै वृषभानघरनि मनि,
आई चञ्चल अञ्चल हार ।
विहसे लठकत ललनहिं देखत,
लोचन चारु मिलत नहिं वार ॥
नाँचत ग्वाल हरषि हेरी दै,
गाइ बुलाइ गिरत न सम्हार ।
ब्रजजन घर घर द्रव्य लुटावत,
सर्वस दीनौं नन्द उदार ॥
माँगत, सूत, वन्दीजन, प्रोहित,
सबै असीषत सिंहदुआर ।

'व्यासदास' के स्वामी प्रगटे,
ताल, उसास कम्पे भुव भार ॥३४७॥

राग-गौरी—

चलहु भैया हो नन्दमहर घर वाजत आजु बधाई।
जनम्यौ पूत जसोदारानी, गोकुल की निधि आई॥
कोऊ बन जिनि जाहु, गाय लै, आवहु चित्र बनाई।
करहु कुलाहल नाँचहु गावहु, हेरी दै दै भाई॥
छिरकत चन्दन चोवा वन्दन हरदी दूब सुहाई।
माखन, दूध दही की कादौं, भादौं मास मचाई॥
नाँचत गोपी मङ्गल गावति घर घर तें सब आई।
विहँसत वदन नैंन तन पुलकित, उर आनन्द न समाई॥
वाजत झाँझ, मृदँग, चङ्ग, डफ, वीना, बेंनु सुहाई।
जय जय धुनि बोलत डोलत पुनि कुसुमावलि वरषाई॥
परमउदार सकल ब्रजवासिन घर घर वात लुटाई।
जाचक धनी भये बड़भागी 'व्यास' चरन रज पाई॥३४८॥

नन्द महरि घर बाजै बधाई।
बाजै हो माई बाजै बधाई।
जनम्यौ पूत जसोदा के उर ब्रज की जोवनि आई।
नाँचति गोपी ग्वाल रंगीले अँग अँग चित्र बनाई॥

माखन दूध दही हरदी लै गोरस कीच मचाई।
बाजत ढोल, मृदङ्ग, रुञ्ज आवज, उपँग सहनाई॥
राइ गिरि गिरी अरु निसान धुनि तिहूँलोक में छाई।
वृषभानराइ सुनि आइ सबनि पहिराइ चले सुख पाई॥
रसिक अनन्य साधु सब फूले, आनन्द हिय न समाई।
सुरनर मुनि जै जै बोलत सब चिरजीवौ जु कन्हाई॥
देति बसन पसु मानिक मोती नन्दमहरि बरबात लुटाई।
ब्रजबासी लूटत सब हारे, यह लीला अधिकाई।
गोकुल राज नन्दनन्दनकौ 'व्यासदास' बलिजाई॥३४१॥

राग-टोडी—

ग्वाल गोपी नाँचत गावत,
प्रेम मुदित जसुदा सुत ज्यावत।
फूले अङ्ग न मात परस्पर,
करत जुहार चारु सिर नावत॥
श्रीवृषभान सुनन्द उपनन्दहि,
आनन्द मैं नन्दबबा नचावत।
अति उदार सर्वसु पसु बसु दै,
रुचि रोचन दधि दूध बधावत॥

नैंननि सैंननि मटक लटकि हँसि,
झटकत पटकत कण्ठ लगावत।
सूपु उलारि उडेंलहि, मुसकति,
सुखमय मुख लखि आँखि सिरावत॥
मार मच्यौ माखन, गो दधि कौ,
भादौं झर कादौंहिं मचावत।
जयध्वनि सुनि कुसुमावलि वरषत,
हरषति देव निसान बजावत॥
कंसहि दुख साधुन सुख तन मन,
'व्यास' न त्रास चरनरज पावत ॥३५०॥

राग-टोडी चौताला वा श्रीराग—

चिरजीवै यह महरि जसोदा बालक तेरौ माई।
सुनहि नन्द ब्रजराज भैया से सर्वसु खर्चु बजाउ बधाई॥
जीवन जनम सफल भयौ तेरौ जाकें जनम्यौ कुँवर कन्हाई।
लोक चतुर्दस भई भैया हौ ब्रजवासिनि की आज बड़ाई॥
माँखन दूध दही हरदी लै, गोपी ग्वालिन दूब बधाई।
नाँचत गावत करत कुलाहल, हेही फेरी दै दै भाई॥
तरुनी तरुन तरल फले सब, अति उदार घर वात लुटाई।
भइ भावती वात भैया से आजु कृपनता देहु बहाई॥

नारी पर पुरषै नहिं जानति पुरुष न जानत नारि पराई ।
हँसि हाथा दै लै कनियाँ कै करत परस्पर नन्द दुहाई ॥
भूषन वसन परस्पर लूटत खूटत नाहिं इति बहुताई ।
प्रोहित भाट जसोंदी जाचक महाधनिक भये सब सिधिपाई॥
कोऊ बन जिनि जाउ गाइलै, आवहु नखसिख चित्र बनाई।
खग मृग गिरि तरु सलिता फूली,
'व्यास' आस करि कीरति गाई ॥ ३५१ ॥

राग-सारङ्ग—

नन्द बृषभान के हम भाट ।
उदै भयौ ब्रज वल्लभकुलकौ, मेटि हमारी नाट ॥
भूषन वसननि आज लुटावहु, अरु गायनके ठाट ।
ऐसौ देहु जु मोल लैंहि हम *मथुरा की सब हाट ॥
इन्द्र कुबेर हमारे भाऐं, ब्रज के गूजर जाट ।
बढौ वंस हरिवंस 'व्यास' कौ, वास चीर के घाट ॥ ३५२॥

राग-आसावरी (ताल सूधौ)

ब्रज-मण्डन दुख कन्दन जनम्यौ, जसुदा के माई आज ।
रङ्क मनौ निधि पाई आनन्द कह्यौ न जाई,
बजत बधाई इकछत राजु ॥

---

*मथुरा के सब भाट ।

दूध, दधि, दूब लेत परस्पर कञ्चन,
मानिक मोती भूषन गन नाज़ु ।
छिन छिन लेत देत हू उमह्यौ, विमुख नन्दकौ
नन्दन भयौ, गरीब निवाज़ु ॥
कञ्चनकलस रस भरे सिर धरि चलीं,
मुदित मङ्गल गावैं जवति समाज़ु ।
गाइ सँवारि ग्वाल अङ्ग सङ्ग हेरी देत फेरी दै,
नाँचत भयौ है मैया सब काज़ु ।
जै जै जै कहत चहुँदिसि मुनि मानव,
प्रगट्यौ रसिक कुँवरि सिरताज़ु ॥
'व्यास'से पतित अगनित भव तारिवेकौं,
राधिका रवन भयौ सिन्धुकौ जिहाज़ु ॥३५३॥

श्रीलाडिलीजू की बधाई

राग-सूहौ—

सुख वृषभानजू के द्वारें ।
जहाँ राधिका स्याम विराजत, अङ्ग अनङ्ग सिंगारें ॥
विकट सांकरी खोर फिरत दोऊ कुंवरि कण्ठ भुज डारें ।
गिरत फूल सिरते पद परसत तरुवर किसलय डारें ॥

तिमिर पुञ्ज घन कुञ्जनिमहँ देखत मुख चन्द उज्यारें ।
दुहुँदिसि सब निसि विहरत कामी,बिछुरत नहिं सकारें॥
वनकी छबि कवि कुल कहतनि बनैंन बात विचारें ।
'व्यासस्वामिनी'रूप गुन सीवाँ,नैंननि सुखद निहारें॥३५४

राग-सारङ्ग—

आजु वृषभानकैं आनन्द ।
वृन्दावन की रानी राधा प्रगटी आनन्दकन्द ॥
जसुदादिक आईं सब गोपी, प्रफुल्लित आनन चन्द ।
गो धन ग्वाल श्रङ्गारि लै आये ब्रजपति बाबा नन्द ॥
फुले व्रजबासी सब नाँचत, प्रमुदित गावत छन्द ।
माखन दूध दही की कादौं, तन कुमकुम मकरन्द ॥
देत परस्पर हीरा हाटक साटक सुरभि अमन्द ।
प्रगट भये सुख पुञ्ज'व्यास'के,दूरि गये दुख द्वन्द॥३५५॥

प्रगटी हैं वृषभाननन्दिनी चलहु वधाई बाजति ।
भादौं मास उज्यारी आठें,मन्द मन्द घनमाला गाजति ॥
व्रजवनिता,धावति,कल-गावति,आवति गाँउ गाँउ तेराजति।
विगलित वसन रसन लट लटकत,
नाँचति पर पुरुषहि न लजाति ॥

फूली फिरत नन्द की रानी,
देति वसन, पसु भ्राजति।
उदै भयौ ब्रजवल्लभ कुलकौ,
'व्यास' सबनि पर छाजति ॥३५६॥

राग—जयतिश्री व देवगन्धार—

आजु बधाई है बरसानैं।
कुँवरि किसोरी जनम लयौ सब लोक बजे सहदानैं॥
कहत नन्द वृषभानरायसौं और बात को जानैं।
आजु भैया हम सब ब्रजवासी, तेरे ही हाथ बिकानैं॥
या कन्या के आगें कोटिक, बेटिन कौ अब मानैं।
तेरे भलैं, भलौ सबही कौ आनन्द कौन बखानैं॥
छैल छबीले ग्वाल रंगीले, हरद, दही लपटानैं।
भूषन वसन विविध पहिरे तन, गनपत राजा रानैं॥
नाँचत गावत प्रमुदित ह्वै नर नारिनु को पहिचानैं।
'व्यास' रसिक सबन मन फूले, नीरस सबै खिसानैं॥३५७॥

राग—गौरी—

बाजत आज बधाई बरसानेमें।
श्रीवृषभानराय की रानी, कुँवरिकिसोरी जाई, बरसाने में॥१

गोपी सँग लै महरि जसोदा,
मङ्गल गावति आई, बरसानेमें।
नन्दीस्वरतें नाँचति नन्द महरि,
घर बात लुटाई, बरसानेमें॥
नाँचत गावत करत कुलाहल,
दधि की कीच मचाई बरषाने में।
लटकत फिरत श्रीदामा हँसि हँसि,
दीनी है नन्द दुहाई, बरषानेमें॥
व्योम विमान अमरगन छाये,
कुसुमावलि बरसाई, बरसानेमें।
भये मनोरथ 'व्यासदास' के,
फूल भई अधिकाई बरसानेमें॥३५८॥

नाँचत नन्द, जसोदा गोरी।
श्रीवृषभाननन्दिनी प्रगटी, नन्दनन्दन की जोरी॥
वृजवासिनि कें होइ कुलाहल, देखति कुँवरि किसोरी।
बाल वृद्ध नर नारिनि कें सुख, 'व्यासहिं' प्रीति न थोरी॥३५९

राग-सारङ्ग—

भैया आज रावल बजति बधाई।
ढोल भेरि, सहनाई ध्वनि सुनि, खबर महावन आई॥

वह देखौ वृषभान भवन पर, विमल ध्वजा फहराई।
दूव लयैं द्विज आयौ तब ही, कीरति कन्या जाई॥
नन्द यसोदा, फूले तन, मन, आनन्द उर न समाई।
मंगल साज लियैं व्रजवनिता, गावति गीत सुहाई॥
चोवा, चन्दन, अगर कुमकुमा, भादौं कीच मचाई।
'व्यासदास' कुँवरि मुख निरखत,
कुसुमावलि वरषाई॥ ३६०॥

राग-सारङ्ग–(मूलताल व इकतालीताल)—

वधाई बाजति रावलि आजु।
श्रीवृषभानराय की रानी, प्रगट कियौ ब्रंज काजु॥
घर घर तें गोपी आईं बनि, नाँचति गावति करि सब साजु।
गाइ सिंगारि ग्वाल लै आये, रसिक बैन वर बाजु॥
हरद, दूव, दधि, रोचन अरच्यौ नर नारीन समाजु।
दधि काँदौ, भादौं झरि बरषत, मुख देख्यौ लै छाजु॥
जाचक परम धनिक भये, पायौ धनिक इन्दिरा लाजु।
'व्यासस्वामिनी' स्यामहिं दीनौं,
कुञ्जकेलि रसराजु॥ ३६१॥

आज बधाई बाजति रावलि।
श्रीवृषभान राय गृह प्रगटी, स्यामास्याम सुखावलि॥

गृह गृह तें गोपी बनि आईं, आनन्दित नन्दावलि।
मानौं कनककञ्जमकरन्दहि पीयत जियत मधुपावलि॥
नाँचत गावत वेंनु वजावत हेरी देत गोपावलि।
दधि कादौं, भादौं झरि लायौ,
प्रेममुदित 'व्यासावलि' ॥३६२॥

राग–मारु—

ढाढिन व्रजरानीजू की कीरतिजू पै आई जू।
भुवन प्रकास करन कुल कन्या,
भाननृपति घर जाई जू॥
मम पति हौं हरषी आनन्द सुनि,
उर आनन्द न समाई जू।
उमहे सब जाचक त्रिभुवन के,
सुनि यह सुजस बधाई जू॥
कीजै मम अयाचक कुलरानी,
याचक अनत न जाई जू।
दीजै मुक्ता रतननि मनि मानिक,
नग निरमोल मँगाई जू॥
तौ दीजै, जौ सात पिढी के,
दोऊ बंस बखानौं जू।

नन्दराय वृषभाननृपति की,
कुल परिपाटी जानौं जू ॥
बंस अमीर महाबाहु नृपति,
भये कञ्जनाभ कौ गाऊँ जू ।
भुवबल चित्रसैन अजमीढौ,
जस परजन्य सुनाऊँ जू ॥
महाभाग, कुलतिलक नन्दजू,
तिनि कुल कीरति गाऊँ जू ।
जिहि कुल सुभग स्यामघनसुन्दर,
मङ्गल मोद बढाऊँ जू ॥
अब सुनि गोपवंस कौ रानी,
सर्वोपरि रजधानी जू ।
अष्टसिद्धि नवनिद्धि करजोरें,
कमला निरषि लजानी जू ॥
भये रतिभान सुभान मेरुसम,
उदैभान रतिमानी जू ।
भान अरिष्ट महीभान जान बड़,
कञ्जनाभ सुखदानी जू ॥

वंस तिलक प्रगटे जाके कुल,
श्रीवृषभान बिनानी जू।
बड़ौ वंस वर्नन कौ लघुमति,
कीरति जाति न जानी जू॥
अति आनन्दित प्रेममगन तन,
जस तुव गाइ सुनाऊँ जू।
कीरति रानी की कल कीरति,
आनन्द मोद बढ़ाऊँ जू॥
अब तुम मोकौं देहु कृपाकरि,
जो हौं माँगन आई जू।
अपनी लली पर करि न्यौछावर,
दीजै रहसि बधाई जू॥
लै ढाढिनि पाटम्बर अम्बर,
नग निरमोल मगाई जू।
देत असीस कहत ढाढिनि यौं
दिन दिन रहसि बधाई जू॥
नाँचत गावत चली भवन तें
उर आनन्द न समाई जू।

तिहि कुल, श्रीवृषभान-नृपतिकी,
कन्या 'व्यासजु' गाई जू ॥ ३६३ ॥

नाँचत गावत ढाढिन के सङ्ग ढाढी हुरक बजावैरे ।
नन्दराय कौ सत सखियाँ वृषभानहि माथौ नावैरे ॥
गोपराज कुल मण्डनजू की कीरति को कवि गावैरे ।
बरनत वदन थके फनपति के, सारद पार न पावैरे ॥
यहै मनोरथ सबही के जिय, कीरति कन्या जावैरे ।
होहिं सफल सब सुकृत्य सबनि के मङ्गल मोद बढावैरे ॥
गोपी सङ्ग लै महरि जसोदा मङ्गल गावति आवै रे ।
ब्रजवासी उपनन्द नन्द सब, घर घर बात लुटावैरे ॥
यह सुनियत सब काहूकैं सुत जाये, याचक आवैरे ।
यह कन्या कुलमण्डन 'व्यास',
बचन साँचौ मोहि भावैरे ॥ ३५४ ॥

राग-सारङ्ग--

आज बधावो वृषभानकें अहो बेटी धरहु भानमती साँथिये,
बेटी गनि गनि रोपौ सींक ।
बेटी उदै भयौ तेरे वीरकैं,
अहो बेटी लेहु आपनी लींक ॥

अहो भावी तो मैं धरिहौं री साँथिये,
भावी नेग हमारौं देउ ।
अहो बेटी माल तिहारे बापकौ,
बेटी जो भावै सो लेउ ॥
अहो भावी भानु चढ़नकौं धौरिला,
सकट जु सौंज भराइ ।
अहो भावी दासी देहु बहु सुन्दरी,
भावी पट भूषन पहिराइ ॥
अहो भावी रतन जटित की घूँघरी,
और गले कौ हार ।
अहो भावी लेंहुगी हाथ मुँदरी,
अरु मुतियन भरि थार ॥
अहो भावी सौलौं तो लेहौं कलाकौ,
भावी जात करम गाइ ।
भावी भावी धनलौं वरषौ हेम-रतन,
भावी बरषानेकौ राइ ॥
अहो भावी सकल सुवसिनि वंसकी,
भावी झगरति माँगति आइ ।

अहो भाबी भूषन बसन सबनिकौं,
दये मोहि मनभाये मँगाइ ॥
अहो भाबी और एक माँगत यहै,
भाबी गरीब दास पहिचानि
भाबी दासिनि की दासी करौ,
भाबी 'व्यासवंस' की जानि ॥३६५॥

श्रीलालजू कौ पालनो झूलन

सुबरन पलना ललना लाल झुलहु ।
अङ्ग अङ्ग प्रति गुन गन निरखत,
दुख मोचत लोचन अति फूलहु ॥
मुख-महँ अधर पयोधर उमहे,
नाहु वाहु महँ तूलहु ।
गौर स्याम गण्ड खण्डित नख,
पद मण्डित कबहुँ दुकूलहु ॥
सो रस श्रवन सिथिल तन मन,
सुख बाढयौ भालन भूलहु ।
'व्यासदासि' रस रासि दृगञ्चल,
चंचल अञ्चल दूलदु ॥३६६॥

विवाह लीला

राग-देवगन्धार—

नन्दीश्वर इकनगर अनूप नन्द गोप तहँ जानिये ।
सम्पतिहौं उनकी कही न जाइ तिहूं लोक में मानिये ॥
जाति पाँति कुल उत्तम रीति तिनकौ सुख सागरु ।
देखतही जाकौ सजन सिहाँइ, रूपरासि गुन-आगरु ॥
बोलि लेहु सब मित्र सुबन्धु वेगि मतौ इक कीजिये ।
कही बात वृषभान बिचारि, कुँवरि स्यामकौ दीजिये ॥
विप्र लेहु तुम लगन सुदेस दसहू दोष निवारकैं ।
माँगउँ प्रिय पहँ रतन अमोल अरु पटचीर सँवाँरिकैं ॥
प्रोहित पठयौ सुघरी साधि, लोग घरनि वहुराइयौ ।
पहुँचौ प्रोहित नन्द के धाम,सुखदै, पग पग पखराइयौ ॥
कीनौं नन्द वहुत सनमान, पूछ कुसल सुख पाइयौ ।
गावति हो तिय गीत रसाल सभा सु गोप बनाइयौ ॥
चन्दन हो घिसि अगन लिपाइ मोतिन चौक पुराइयौ ।
वैठे मोहन पटा अनूप अञ्जुलि करन जुराइयौ ॥
पञ्च विदित भई लगुन प्रमान रोचन तिलक कराइयौ ।
वेद मन्त्र पढि,कलस पुजाइ, तब कर लगुन धराइयौ ॥

बाजत द्वार दमामें ढोल भेरि भँवर सङ्ग गुँञ्जरैं।
बाजत सरस स्वरनि सहनाइ उपजति tाननि पुँञ्जरैं॥
पठये रानी घरनि तें बोर अरुनि ब्रत तिल चाँवरी।
पूछी एक त्रिय विप्रहि बात, दुलहिन गौरी कै साँवरी॥
बोलि नगर के बाँभन भाट मँगत औरनि, को गनैं।
जो जैसौ ताहि तैसौ ही देत कापै जुगति कहत बनैं॥
कियौ बिदा प्रोहित बहु भाँति कर जोरैं बिनती करी।
बिनु दामनि हम लीने मोल सुभ कीजै नीकी घरी॥
आयौ विप्र जहाँ वृषभान समाचार जे सब कहे।
वर सुन्दरता कही न जाइ, श्रवन सुनत अति सुख लहे॥
प्रथम दुहुँदिसि सुभ दिन साधि मङ्गल फल घर घर दिये।
द्वितीय देव कुल विधिहि बनाइ जुगति जतन जे सब किये॥
आनन्दसौं गावति वर नरि कुंवरहि तेलु चढाइयौ।
माँगे हो तब हरे हरे बाँस चन्दन खम्भ कटाइयौं॥
मण्डप रच्यौ विमल बहु भाँति खम्भनि दियल बराइयौ।
अँब-मोर, दल बन्दन वार, सोभा कहत न आइयौ॥
नन्द बुलाये गोप बरात, मन भाए बागे दिये।
पहुपमाल वर बीरी अनूप भाँति भाँति सोंधे लिये॥

हय,गये, पयदल, रथ आरूढ़ चँवर छत्र, सोभाभई।
बाजे अगनित गने न जाँइ लोक लोक प्रति धुनि छई ॥
नन्दमहरि की चली बरात, वरषानें वृषभान कैं।
ज्यों ज्यों चलत नगर नियरात त्यों त्यों सुख स्यामसुजानकैं॥
आगौनी करि सजननि भेंटि वारौठी बहु विधि करी।
देखत श्रीमोहन कौ रूप नर नारिनि की गति हरी ॥
जनवासौ दै चरन पखारि चार हुते जे सब किये।
आँगन लिपाइ उज्यारे दीप सजन बोलि भीतर लिये ॥
गोप जुगतिसों चरन पखारि बैठारे कर जोरिकैं।
पातरि हरी बहुत अति दौना परसत बहुरि भकोरिकैं ॥
बिञ्जन कौंन गनै पकवान सुवस पछ्यावरि चरपरी।
महलनि चढी देति त्रिय गारि को वरनें आनन्द घरी ॥
चौक पूरि विधि वेदी बानि दूलहु स्याम बुलाइयौ।
बैठे पंच सुजन सुख पाइ हरिकौं अरघु दिवाइयौ ॥
दच्छिन दिसि दुलहिन बैठारि वेद मन्त्र विधि सब करी।
भयौ ब्याह सबकैं आनन्द साखि दुहुँदिसि उद्धरी ॥
वाजत बहु विधि सबद निसान सुर नर मुनि कौतुक देखियौ।
फूले दम्पति अङ्ग न समात, जनम सुफल करि लेखियौ ॥

दुलहिन लै जनवासैं आइ कीनौं आनन्द वधावनौं ।
मुख देख्यौ दै रतन अमोल पायौ मनकौ भावनौं ॥
प्रात कियो पलका चार गौर-स्याम जोरी बनी ।
सोभा हौं कछु कही न जाय, भवन चतुर्दस के धनी ॥
हय गय, हाटक,पट वहु मोल गोप सबै पहिराईयौ ।
कलस पचहेटे अगिनअगित और नग मनि थार भराइयौ॥
विदाकरी, विनतो कर जोरि, हौं सेवक करि जानिवौ ।
कीनी कृपा दीन जियजानि सजन भलैं करि मानिवौ ॥
ज्यों घन गरजैं बजैं निसान,नन्द कनक जल वरषियौ ।
जाचक दान न चातक तूल त्रिपतभये मन हरिषयौ ॥
निरख बरात चलो ज्यौं नार रानी जसुमती नन्द की ।
मानिक दीपक संजोये थार जननी आनन्द कन्दकी ॥
दूलहुदुलहिनि आये पौरि राजति ज्यौं घन दामिनी ।
करत आरतो आनन्दरूप महरि महरि की भामिनी ॥
मान्य जिते तिन रोके दुआर, नेग बहु भाँतिनि दिये ।
करे दान पाँवड़े अनेक, कनियाँ लै भाये किये ॥
जो सत सेष सहस मुख होइ गुनगन तौ न कहत बनें ।
वेद उपनिषद् पायौ ना पार और इतर नर को गनैं ॥

कंकन छोरत स्यामा-स्याम निरखि वदन दम्पति हँसैं।
ताके भाग कहे नहिं जाँइ जो गावै प्रिय हरि जसैं।
चिरजीवै जोरी संजोग सकल लोक की सम्पदा।
यह जस गायौ 'व्यास' अघाइ जनम न परसै आपदा॥
जीवत रसिक जुगल रसु गाइ श्रीवृन्दावन के चन्दकौं।
नर नारी गावत सुख पाइ दरस करत नहिं द्वन्दकौं॥३६७

रास पञ्चाध्याई

राग-छन्द-त्रपदी—

सरद सुहाई. आई राति।
दस दिसि फूलि रही वन जाति॥
देखि स्याम मन सुख भयौ॥
ससि गो मण्डित जमुनाकूल।
वरषत विटप सदा फल फूल॥
त्रिविधि पवन दुख दवन है॥
राधा रवन बजायौ बैंन।
सुनि धुनि गोपिन उपज्यौ मैंन॥
जहाँ तहाँ तें उठि चलीं॥

चलत न दीनौं काहू जवाव ।
हरि प्यारे सौं वाढ्यौ भाव ॥
रास रसिक गुन गाइहौ ॥

घरु डरु विसरयौ बढ्यौ उछाहु ।
मन चिन्त्यौ पायौ हरि नाहु ॥
ब्रज-नाइक लाइक सुन्यौ ॥

दूध पूत की छाँडी आस ।
गो धन भरता किये निरास ॥
साँच्यौ हित हरि सों कियौ ॥

खान पान तन की न सम्भार ।
हिलग छुटाई गृह व्योहार ॥
सुधि बुधि मोहन हर लई ॥

अञ्जन मञ्जन अङ्ग सिंगार ।
पट भूषन सिर छूटे वार ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥

एक दुहावत तें उठि भगी ।
और चली सोवत तें जगी ॥
उत्कण्ठा हरि सों बढी ॥

उफनत दूध न धरयौ उतारि ।
सीझी थूली चूल्हैं डारि ॥
पुरुष तज्यौ जैंवत हु तें ॥

पय प्यावत बालक धरि चली ।
पति-सेवा कछु करी अनभली ॥
धरयौ रह्यौ भोजन भलौ ॥

तेल उबटनौं न्हैवौ भूल ।
भागनि पाई जीवन-मूल ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥

अञ्जत एक नैंन बिसरयौ ।
कटि कंचुकी, लहंगा उर धरयौ ॥
हार लपेटह्यौ चरन सौं ॥

श्रवननि पहिरे उलटे तार ।
तिरनी पैंर चौकी सिंगार ॥
चतुर चतुरता हरि लई ॥

जाको मन मोहन हरिलियौ ।
ताको काहू कछू न कियौ ॥
ज्यौं पतिसों तिय रति करै ॥

स्यामहि सूचित मुरली नाद ।
सुनि धुनि छूटे विषय सवाद ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥
माता पिता पति रोकी आनि ।
सही न पिय दरसन की हानि ॥
सब ही कौ अपमान कै ।
जा कौ मनवा जासों अटक्यौ ।
रहै न छिनहु ता बिनु हटक्यौ ॥
कठिन प्रीति कौ फँद है ॥
जैसे सलिता सिन्धुहि भजै ।
कोटिक गिरि भेदत्त नहि लजै ॥
तैसी गति इनकी भई ।
एक जु घरतें निकसी नहीं ।
हरि करुना करि आये तहीं ॥
रास रसिक गुन गाइ हों ॥
नीरस कवि न कहै रस-रीति ।
रसिकहि लीला-रस परतीति ॥
यह मुख सुक मति जानिवौ ॥

ब्रज वनिता आईं पिय पास ।
चितवति सैंननि भृकुटिं विलास ॥
हरि बूझी हरि मानु दै ॥
नीकें आईं मारग माँझ ।
कुल की नारि न निकसें साँझ ॥
कहा कहौं, तुम जोग्य हौ ॥
ब्रज की कुसल कहो बड़भाग ।
क्यों तुम आई सुभग सुहाग ॥
रास रसिक गुन गाइहों ॥
अजहूं फिरि अपने गृह जाहु ।
परमेश्वर करि मानौं नाहु ॥
वन में बसिबौ निसि नहीं ॥
वृन्दावन तुम देख्यौ आई ।
सुखद कुमोदिनी प्रफुल्लित जाई ॥
जमुनाजल सीकर घनें ॥
घर में जुवति धर्महि फवै ।
ता बिनु सुत पति दुखित जु सवै ॥
यह रचना विधिना रची ॥

भरता की सेवा सुख सार।
कपटै तजै छूटै संसार॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥

वृद्ध अभागौ जो पति होइ।
मूरख, रोगी तजै न जोइ॥
पतित अकेलौ छाँड़ियै॥

तजि भरता रहि जारहि लीन।
ऐसी नारि न होइ कुलीन॥
जस विहूँन नर्कहि परै॥

बहुत कहा समझाऊँ आज।
मोहू गृह कछु करनौं काज॥
तुमतें को अति जान है॥

पिय के बचन सुनत दुख पाइ।
व्याकुल धरनि परी मुरझाइ॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥

दारुन चिन्ता बढी न थोर।
क्रूर बचन कहै नन्दकिसोर॥
और सरन सूझै नहीं॥

रुदन करत बढी नदी गंभीर।
हरि करिया बिनु को जानै पीर॥
कुच तुम्बिनु अवलम्बदै॥
तुम हरि बहुत हुती पिय आस।
बिन अपराधहि करत निरास॥
कितब रुखाई छाँड़ि दै॥
निठुर बचन बोलहु जिनि नाथ।
निज दासी जिनि करहु अनाथ॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
मुख देखत सुख पावत नैन।
श्रवन सिरात सुनत कल बैन॥
तब चितवनि सर्बसु हर्यौ॥
मन्दहँसनि उपजायौ काम।
अधर सुधा दै करि विश्राम॥
बरषि सींच विरहानलै॥
जब तें पिय देखे ये पाँइ।
तबतैं हमैं न और सुहाँइ॥
कहा करैं ब्रज जाइकैं॥

सजन कुटुम्ब गुरु रही न कानि ।
तुम विमुखै पिय आतमहानि ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥

तुम हमकौ उपदेशौ धर्म ।
ताकौ हम जानत नहिं मर्म ॥
हम अबला मति हीन सब ॥

दुखदाता सुत पति गृह बन्धु ।
तुम्हरी कृपा बिनु सब जग अन्धु ॥
तुम सो प्रीतम और को ॥

तुमसों प्रीति करहिं ते धीर ।
तिनहिं न लोक वेदकी पीर ॥
पाप पुण्य तिनकै नहीं ॥

आसा पाँसि बन्धी हम लाल ।
तुम विमुखै ह्वै हैं बेहाल ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥

बैनु बजाइ बुलाई नारि ।
सिरधरि आई कुलकी गारि ॥
मन मधुकर लम्पट भयौ ॥

सोई सुन्दर चतुर सुजान।
आरजपन्थ तजै सुनि गान॥
तो देखत पुरुषौ लजै॥

बहुत कहा वरनैं यह रूप।
और न त्रिभुवन तरुन अनूप॥
बलिहारी या रूपकी॥

सुनि मोहन बिनती दै कान।
अपयस है कीनौ अपमान॥
रास रसिक गुनगाइ हौं॥

विरद तुम्हारौ दीनदयाल।
कुच पर कर धरि करि प्रतिपाल॥
भुजदण्डनि खण्डहु विथा॥

जैसे गुनी दिखावै कला।
कृपन करै नहिं हलहू भला॥
सदय हृदय हम पर करहु॥

ब्रज की लाज बड़ाई तोहि।
सुख पुजवत आई सब सोहि॥
तुमहीं हमरी गति सदा॥

दीन बचन जुवतिन तव कहे।
सुनि हरि नैंननि नीर जु बहे॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
हरि बोले हँसि ओली ओडि।
कर जोडे प्रभुता सब छोडि॥
हौं असाधु तुम साधु हौ॥
मो कारन तुम भई निशंक।
लोक वेद बपुरा को रंक॥
सिंघ सरन जम्बुक ग्रसै॥
बिनु दाम न हौं लीनो मोल।
करत निरादर भई न लोल॥
आवहु हिलिमिल खेलियै॥
मिलि जुवतिन घेरे ब्रजराज।
मनहुँ निसाकर किरनि समाज॥
रास रसिक गुन गाइहौं॥
हरिमुख देखत फूले नैन।
उर उमगे कछु कहत बनैन॥
स्यामहि गावत काम बस॥

हँसत हँसावत करत उपहास।
मनमें कहत करौ अब रास॥
गहि अञ्चल चञ्चल लच्यौ॥
लायौ कोमल पुलिन मझार।
नख सिख नटवर अङ्ग सिंगार॥
पट भूषन जुवतिनि सजे॥
कुच परसत पुजई सब साध।
सुखसागर मन वाढ्यौ अगाध॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
रसमें बिरस जु अन्तरधान।
गोपिन कै उपज्यौ अभिमान॥
बिरह कथा में और सुख॥
द्वादस कोस रास परमान।
ताकौ कैसे होत बखान॥
आस पास जमुना झिली॥
ता महिं मानसरोवर ताल।
कमल विमल जल परम रसाल॥
खग मृग सेवैं सुख भरे॥

निकट कलपतरु वंसीवटा।
श्रीराधा रति गृह कुञ्जनि अटा॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
नव कुँकुम जल बरषत जहाँ।
उड़त कपूर धूरि जहाँ तहाँ॥
और फूल फल को गनै॥
तहाँ श्यामघन रास जु रच्यौ।
मर्कतमनि कञ्चन सौं खच्यौ॥
सोभा कहय न आवही॥
जोरि मण्डली जुवतिनि बनी।
द्वै द्वै बीच आपु हरि धनी॥
अद्भुत कौतुक प्रकट कियौ॥
घूंघट मुकट विराजत सिरन।
ससि चमकत मनौं कौतिक किरन॥
रास रसिक गुन गाइहौं॥
मनिकुण्डल ताटँक विलोल।
विहसत सज्जित ललित कपोल॥
नकवेसरि नासा बनी॥

कण्ठसिरी गजमोतिन हार।
चचरि चुरी किंकिनी झुनकार॥
चौकी दमकै उरजन लगी॥
कौस्तुभमनि तैं पोतिहि जोति।
दामिनि हूँ तैं दसननिदोति॥
सरस अधर पल्लव बनैं॥
चिबुक मध्य अति साँवल बिन्दु।
सबनि देखि रीझे गोविन्द॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
नील कंचुकी मंडनि लाल।
भुजनि नवैया उर वनमाल॥
पीत पिछौरी स्याम तन॥
सुन्दर मुदरी पहुँची पानि।
कटि तट कछनी किंकिनि वानि॥
गुरु नितम्ब वैनी रुरै॥
तारामण्डल सूथन जघन।
पाइनि पैजनि नूपुर सघन॥
नखनि महावर खुलि रह्यौ॥

श्रीराधा मोहन मण्डल माँझ।
मनहुँ विराजत सन्ध्या साँझ॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
सघन विमान गगन भरि रह्यौ।
कौतिक देखन जग उमह्यौ॥
नैन सफल सबही के भये॥
बाजत देवलोक निसान।
बरषत कुसुम करत सुर गान॥
सुर किन्नर जै धुनि करैं॥
जुवतिन बिसरे पति गति देखि।
जीवन जनम सुफल करि लेखि॥
यह सुख हमकौं है कहाँ॥
सुन्दरता गुन गन की खानि।
रसना एक न परत बखानि॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
उरप लेति सुन्दर भामिनि।
मानौं नाँचत घन दामिनि॥
या छबि की उपमा नहीं॥

राधा की गति पिय नाह लखी ।
रससागर की सीवाँ नखी ॥
बलिहारी या रूप की ॥

लेत सुघर औघर में मान ।
दै चुँवन आकर्षत प्रान ॥
भेटत मेटत दुख सबै ॥

राखत पियहि कुचनि विच वान ।
करवावत अधरामृत पान ॥
रास रसिक गुन गाइ हौं ॥

भूषन बाजत ताल मृदँग ।
अँग दिखावत सरस सुधङ्ग ॥
रङ्ग रह्यौ न कह्यौ परै ॥

कंकन नूपुर, किंकिन चुरी ।
उपजत धुनि मिश्रित माधुरी ॥
सुनत सिरानै श्रवन मन ॥

मुरली, मुरज, रवाब, उपँग ।
उघटत सब्द बिहारी सङ्ग ॥
नागर सब गुन आगरौ ॥

गोपिन मण्डल मण्डित स्याम।
कनक नीलमनि जनौं अभिराम॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥

पग पटकत लटकत लट बाँहु।
भौंहन मटकत हँसत उछाहु॥
अञ्चल चञ्चल झूमका॥

मनि कुण्डल ताटङ्क विलोल।
मुख सुखरासि कहै मृदु बोल॥
गण्डनि मण्डित स्वेदकनि॥

चौरी डोरी विलुलित केस।
घूमत लटकत मुकुट सुदेस॥
कुसुम खिसे सिरतें घने॥

कृष्णवधू पावन गुन गाइ।
रीझतु मोहन कण्ठ लगाइ॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥

हरषित बेनु बजायौ छैल।
चन्दहि विसरी घर की गैल॥
तारागन मन में लजे॥

मोहन धुनि वैकुण्ठहि गई।
नारायन मन प्रीति जु भई॥
बचन कहत कमला सुनौं॥
कुञ्जबिहारी विहरत देखि।
जीवन जनम सफल करि खेलि॥
यह सुख हमकौं है कहाँ॥
श्री वृन्दावन हमते दूरि।
कैसे कर उड़ि लागै धूरि॥
रास रसिक गुन गाइ हौं॥
धुनि कोलाहल दसदिसि जाति।
कलप समान भई सुखराति॥
जीव-जन्त मै मन्त-सब॥
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीर।
बालक बच्छ न पीवत छीर॥
राधारवन ठगे सबै॥
गिरिवर तरुवर पुलकित गात।
गो धन थन तै दूध चुचात॥
सुनि खग, मृग मुनि व्रत धर्यौ॥

फूली मही फूल्यौ गति पौन ।
सोवत ग्वाल तजैं नहीं भौन ॥
रासरसिक गुन गाइहौं ॥

राग रागिनी मूर्त्तिवन्त ।
दूलह दुलहिन सरद वसन्त ॥
कोककला संगीत गुरू ॥

सप्त स्वरनि की जाति अनेक ।
नीकै मिलवत राधा एक ॥
मन मोहौ हरिकौ सुघर ॥

चन्द ध्रुवनि के भेद अपार ।
नाँचत कुँवरि मिलैं झपतार ॥
सबै कह्यौ सङ्गीत में ॥

सरस सुमति धुनि उघटत सबद ।
पिक न रिझावत गावत सुपद ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥

श्रमित भई टेकत पिय अँस ।
चलत सुलप मोहे गज, हंस ॥
तान मान मुनि मृग थके ॥

चन्दन चर्चित गोरी बाँहु ।
सेत सुवास पुलकित तन नाँहु ॥
दै चुँबन हरि सुख लह्यौ ॥
साँवल गौर कपोल सुचारु ।
रीझ परस्पर खात उगारु ॥
एक प्रान द्वै देह हैं ॥
नाँचत गावत गुन की खानि ।
राखत पियहि कुचनि विच वानि ॥
रास रसिक गुन गाइ हौं ॥
अलि गावत पिक नादहि देत ।
मोर चकोर फिरत सँग हेत ॥
घन-रु जुन्हाई है मानौं ॥
कुच,कच,चिकुर,परसि हँसि स्याम ।
भौंह चलत नैंननि अभिराम ॥
अँगनि कोटि अनङ्ग छवि ॥
हस्तक भेद ललित गति लई ।
पट भूषन तनकी सुधि गई ॥
कच विगलित वाला गिरी ॥

हरि करुना करि लई उठाइ ।
श्रमकन पौंछत कण्ठ लगाइ ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥
तिनहिं लिवाय जमुन तट गयौ ।
दूर कियौ श्रम अति सुख भयौ ॥
जल में खेलत रङ्ग रह्यौ ॥
जैसे मद–गज कूल विदार ।
ऐसैं खेल्यौ सङ्ग लै नार ॥
संक न काहू की करी ॥
ऐसैं लोक–वेद की मेंड ।
तोरि कुँवरि खेलै करि ऐंड ॥
मन में धरी फबी सबै ॥
जल थल क्रीड़त व्रीडत नहीं ।
तिनकी लीला परत न कही ॥
रास रसिक गुन गाइहों ॥
कह्यौ भागवत सुक अनुराग ।
कैसैं समुझैं बिनु बड़भाग ॥
श्रीगुरु सुकल कृपा करी ॥

'व्यास' आस करि वरनौं रास ।
चाहत है वृन्दावन वास ॥
करि राधे इतनी कृपा ॥
निजु दासी अपनी करि मोहि ।
नित प्रति स्याम सेऊँ तोहि ॥
नव निकुञ्ज सुख पुञ्ज महँ ॥
हरिवंसी हरिदासी जहाँ ।
मोहि करुना करि राखो तहाँ ॥
नित्य विहार अधार है ॥
कहत सुनत बाढ़ै रस रीति ।
श्रोतहि वक़्तहि हरिपद प्रीति ॥
रास रसिक गुन गाइहौं ॥३६८॥

स्फुट-रस

राग-गौड मलार—

श्रीवृषभानसुता पति वन्दे ।
उदित मुदित मुख सुखमत चन्दे ॥
विगत विरह रोग स्याम भँवर भोग,
उरज जलज मादक़ मकरन्दे ।

कुँज-भवन हित कुसुम-सयन-कृत,
सुरत-पुञ्ज रस आनन्दकन्दे ॥
वलित नयन-भ्रुव,ललित वयन जुव,
दलित मदन मद हाँस सु मन्दे ।
सहज-स्वरूप दम्पति,'व्यास' निरास सम्पति,
दीन विपतिहर वर आनन्दे ॥ ३६६ ॥

राग-सारङ्ग—

नमो नन्दनन्दनि-घरनि ब्रजजुवति मुकुट-मनि,
राधिका सकल गुन रस निवासे ।
राग रागिनी गान सप्तस्वर पट ताल,
ल्लक लागनि मान रंग रासे ॥
सरद-ससि-बिमल निसि मृदुल पुलिनस्थली,
नलिन अलि हंस कुल पिक विलासे ।
अङ्ग सुधङ्ग मय निपुन अभिनय,
नौतन वयनि, कल सयनि, मन्द हाँसे ॥
कुसुम सयनीय पर कुँवर कमनीय भुज,
कुचनि बिच अधर-मधु-रस विकासे ।
सुरत रससिन्धु मन मगन राधा-रवन,
निरखि सखि वृन्दावन 'व्यास' दासे ॥ ६७० ॥

राग-देवगन्धार—

सर्वोपरि स्याम की दुलिहि बहू ।
श्रीवृषभान भूप की बेटी, नन्दराइ की पुतबहू ॥
बृन्दावन मन्दिर की देवी, सुख रति रत-रसद हू ।
रूप-अवधि गुनकी निधि राधा चरनकमल सरनै रहू ॥
रसिक अनन्य धर्म आराधन साधन की धारा गहू ।
केलि रँगीली बेलि, उरज फल, गण्ड अधर मेवा महू ॥
अङ्ग अङ्ग सत रंग भोगिया, भोग भवन भामिनि सहू ।
वन अनत मुनि मनुज सुरासुर पदकौ'व्यास'उपानहू ॥३७१

राग-गौरी—

मेरे भाँवते की भाँवती ।
जाति अहीरी आहि कुँवर सङ्ग, सुघर—अहिरी गावती ॥
रास धरनि पर तरनिसुता-तट अङ्ग सुधङ्ग दिखावती ।
नदति मृदङ्ग सङ्ग ललितादिक, करतल ताल बजावती ॥
रसिक-अनन्य न होते जो, वृषभान घरनि नहिं जावती ।
'व्यासस्वामिनी' बिनु वृन्दावन,
ब्रजगोपी न कहावती ॥ ३७२ ॥

राग-धनाश्री (अठताल)—

कौंन भामिनि त्रिभुवन महँ सुन्दरि,
राधिका नागरि सौं करि सकै सारी ।
रूप गुन सील उदार मुकुटमनि,
आलस वस किये कुञ्जविहारी ॥
वायस, हंसहि को पटतरि करै,
कंचन काँचहि अन्तर भारी ।
इमिली, आँमहि, रावन रामहि,
केसर गेरू छबि रुचि न्यारी ॥
काम दुधा गाडरहि न गाथौ,
हय रासभ सौं उपमा न्यारी ।
मेवा खारी हींग कपूरहि,
खीर खाँड कै सम न सवारी ॥
रवि उदौ ता सरि न अमावस,
जामिनि कोटि चन्द उजियारी ।
चम्पक, सेंमर से धन, राजा,
रङ्कहि उमग न न्यारी ॥
सुर नर मुनि हरिदासनिकैं सब,
नारी हरिदासी नहिं डारी ।

'व्यास' अजुवा जुवति पा परसति,
गनिका हू तैं पति न विकारी ॥ ३७३ ॥

राग-कल्याण—

मोहनी कौ मोहन प्यारौ ।
आनन्दकन्द सदा वृन्दाबन, कोटि-चन्द उजियारौ ॥
व्रजवासिनकैं प्रान जीवनि धन गो-धन कौ रखवारौ ।
नन्द जसोदा कौ कुल-मण्डन, दुष्टनि मारन वारौ ॥
चरन सरन साधारन तारन आरत हरन हमारौ ।
नवनिकुञ्ज सुखपुञ्जनि बरषत,'व्यासहि'छिनन विसारौ३७४

राग-कमोद—

मदन मोहन माई मन मोहनियाँ ।
लटकतु हँसि उरके लटकन ज्यौं,
चढ़त अचानक कनियाँ ॥
सीस-टिपारौ, श्रवननि-कुण्डल,
कण्ठ सु कञ्चन मनियाँ ।
पीत पिछौरी लाल लाग कटि,
कसि किंकिनि मनि तनियाँ ॥
विहँसि कपोल विलोल विलोचन,
नमित भौंह चल अनियाँ ।

सुखद मुखारबिन्द अवलोकत,
नाँचत मोर नचनियाँ ॥
अँग अँग महँ छबि अति प्रगटत,
कोटिक चन्द किरनियाँ ।
राई लोंन उतारि तोरि तृन,
वारि पिवहु किनि पनियाँ ॥
चितु बितु हरत, वेनु धुनि करत,
मैंन वसु पाँय लगनियाँ ।
'व्यास कहै कौ मानैं यह रस,
जानैं जान मिलनियाँ ॥ ३७५॥

राग-सारङ्ग—

हरि मुख देखत ही सुख नैंननि ।
निरखत रूप अनूप निमेष लगतहीं देत कु-चैंननि ।
वारैं घर घर बात बात सुनि श्रवन भरत सुख चैंननि ।
हंस कोटि दामिनि प्रतिबिंबित, बिंबाधर रस ऐंननि ॥
विनु दामिनि हौं मोल लई-इति स्याम छबीले सैंननि ।
भौंह-धनुष तें चलत नयन-सर, भेदत उरज गुरैंननि ॥
रोम रोमकी छबि पर वारौं, कोटि सोम-छबि मैंननि ।
सहज मधुरता'व्यास'मन्द पै कहत बनैं क्यों बैंननि ॥३७६

राग–धनाश्री––

नन्द वृषभान के दोऊ वारे ।
वृन्दावन की सोभा सम्पति, रति सुख के रखवारे ॥
गोरी राधा कान्ह साँवरे, नख-सिख अङ्ग लुभारे ।
बोलत, हँसत, चलत, चितवत, छवि बरनत कविकुल हारे ॥
धीर समीर तीर–जमुना के, कुञ्ज–कुटीर सँवारे ।
विविध विहारहि विहरत दोऊ, सहज स्वरूप सिंगारे ॥
रसिक अनन्य मण्डली मण्डन प्रानन हूं तें प्यारे ।
जुगलकिसोर 'व्यास' के ठाकुर लोक वेद तें न्यारे ॥३७७॥

राग–सारङ्ग––

अपनैं वृन्दावन रास रच्यौ नाँचत प्यारे पिय संग ।
सब्द उघटत स्याम नटवर मनौं कल मुखचंग ॥
विविध वरन संगीत अभिनय निपुन नखसिख अँग ।
सा रे ग म प ध नी सप्तमस्वर गार तान तरंग ॥
सिद्ध रागिनी राग सारंग सहित सरस सुधंग ।
धंननन तंननन तक तक थुंग रुनित मृदंग ॥
तरल तिलक ललाट कुञ्चित चपल चिकुर सुमंग ।
चन्द सत सम ताटंक मंडित गण्ड जुगल सुरंग ॥

मन्दहास बिलास दसननि दमक दामिनि भंग।
हेर चञ्चल प्रगट अञ्चल मधि उरज उतंग॥
वलय नूपुर किंकिनि रव वलित ललित सुलंग।
भ्रुव-भंग तक चन्द कर्त्तरि भेद रस अनुषंग॥
थकित सुक पिक हंस केकी कोक भृंग कुरंग।
'व्यासस्वामिनी' नित्य विहरत प्रनय कोटि अनंग॥३७८॥

राग-गौड मलार—

विराजमान कानन वृभषानकुँवरि गान तान,
वान हत विमान काम कामिनी।
प्रान रवन मोहन मन मृग सु मार किये,
हो हो रव वार वार विकच जामिनी॥
राग रङ्ग पवन पग सेष लचन मान भङ्ग,
नारद सिव सारद लजति भाम भामिनी।
निरवधि गुन जलधि वृन्द वृन्दावन रस अगाधं,
राधा धव नवविहार 'व्यासस्वामिनी'॥३७९॥

राग-कान्हरौ—

ठाडी भई रङ्गभूमि में रङ्गीली प्यारी रेख प्रमान सौं।
तत्त थेइ सब्द उघटि लाग डाट,
तिरप वाँधि उरु चचमान सौं॥

नेत्र भेद, ग्रीवा भेद, हस्तक भेद करि,
रिझावति गावति तान बन्धान सौं।
राग रंग रह्यौ अति 'व्यास' के
प्रभु स्याम सुजान सौं।। ३८० ।।

राग-गौरी(अठताली)—

नाँचति नागरि सरस सुघंग।
लाल बजावत ताल तरल गति,
गावत सुघर नचावत अँग ।।
तत्त थेई तत्त थेई थुँग थुँग,
धन्नन तन्ननना बाजत मृदंग।
सप्तस्वर गान रागिनी राग सागर मान नागर,
तान पट बँधान धुनि सुनि विगत गर्व अनंग ।।
कोटि कन्दर्प लावण्य मुखचन्द मन्द,
सुचि हास, चंल नयन भ्रू-भंग।
रूप गुन निधान जान दम्पति रन समान,
आन 'व्यासदासि' रंगरासि देखत सुख संग।। ८१

राग-मारवौ (अठताल)—

नटवति नट अँग प्रति सरस सुधंग,
रंगरासि रसिक सरूप सुजान।

नागर नटवर तार लये कर, उघटि सब्द,
थेई थेई रूपनिधान करत कल गान ॥
उरप तिरप सुलप लेत ध्रुवा,
धरु चन्द्र विवि विधि मान ।
रीझि मोहन उर लगावत व्यासस्वामिनो,
स्यामा भामिनी नहिं आन ॥ ३८२ ॥

राग–सारङ्ग—

विहरत वनैं विहारी विहारिनि ।
रास रंग अंग संग रचे गावत नाँचत करतारिनि ॥
कुसमित मुकुट काछनी झलमल झूम्मक झमकत सारिनि ।
पटकत पद लटकत मुख नैंननि बाँकी सैंन विकारिनि ॥
तिरप लेत चञ्चल रस राख्यौ उरज उघारिनि ।
स्याम कामवस उर लपटानौं निरखि निपट सुख नारिनि ॥
देखत कौतुक केकि कपोत सुक पिक चढि कुञ्ज अटारिनि ।
व्यासस्वामिनी की छबि वरनत कैसैं फबै भिखारिनि ॥३८३

राग–नट व आसाधरी—

मदन मोहन गावत लाल ।
विकट तान बन्धान मान सुर, कौऊ न पावै ताल ॥

गति महँ गति, मति महँ मति, उपजति गुन गंभीर रसाल।
नारद सारद सिव गन्धर्व किन्नरकुल कौ परयौ चाल ॥
सैंननिही समझावति सखियनि राधा परम कृपाल।
'श्रीव्यासस्वामिनिहि' रीझि कुँवर मिलि,
उपज्यौ सुरत सुकाल ॥ ३८४ ॥

राग-गौरी (जयतिताल)—

विहँसि नैंननि कछु बात कही।
दोऊ सैंननिं एकहि सङ्ग सरके, विषय वेलि उलही ॥
आतुरता भुलई चातुरता, नाहु सु बाँहु गही।
रस बाढ्यौ तिहिं अवसर परसत, कछु सुधि बुधि न रही ॥
स्याम कामबस चोली खोली, रचकि गहत कुच ही।
मनहुँ रंक के हाथ परी निधि अपुन उमगि उमही ॥
तनसौं तन, मनसौं मन मिलि झिलि रति रस लै निवही।
'व्यास' सुरङ्ग तरङ्गिनि जस सुखसागर मांझ वही ॥३८५॥

राग गौरी—

आजु लवँगलता गृह विहरत राजत कुञ्जविहारी।
कुसुमनिकर सचि, ललित सेज रचि, नखसिख कुँवर सिंगारी॥
प्रथम अङ्ग प्रति अङ्ग सङ्ग करि, मुखचुंवन सुखकारी।
तव कंचुकी बँध खोलत बोलत, चाडु वचन दुखहारी ॥

हस्तकमल करि विमल उरज धरि,हरि पावत सुख भारी।
वधू कपट भुज पटनि दुरावति, कोप भृकुटि अनियारी ॥
नीवी वन्ध मोचत मुँच अलंकृत, नेति कहत सुकुंवारी।
चिवुक चारु टक टोलनि वोलनि पिय कोपित मन प्यारी ॥
नैंन सैंन मधु वैंन हँसत जनु कोटि चन्द उजियारी ।
कोक कुसल रसरीति प्रीति वस,रति प्रगटत पिय प्यारी ॥
अधर सुधा-मद मादिक पीवत,आरज पथसो सीव बिदारी।
वृन्दावन लीला रस जूठनि,वाइस 'व्यास' विटारी॥३८६॥

राग-कमोद--

क्रीड़त कुञ्ज कुरङ्ग-नैंनी ।
काम चढ़ाइ स्याम अँग कहँ मनहुँ सुरत रंग चैंनी ॥
सोभा सिन्धु न मात गात महँ, कुच श्रीफल रुचि दैंनी ।
कुंजनि सुनत मानु-करि कोकिल, चाल मरालनि लैंनी ॥
चौकी की चमकनि कें आगें, दामिनि भई कुचैंनी ।
बसि पताल व्याल नहिं आवत, जानि मन्यारी बैंनी ॥
उरजनि-पर नख-अङ्क मनहुँ विधु सुधा स्रवत घन मैंनी ।
मानहुँ कनक कलस पर दीनी, हेम चौर छबि छैंनी ॥
रसना एक अनेक मधुर गुन, बरनत बनहिंन भैंनी ।
'व्यासस्वामिनी'की चलि सैननि वाननहूँ तें पैनी ॥३८७॥

राग नट व आसावरी—

मनोहर मोहनी की भाँति ।
पलकनि नैन समात न देखत, नव बिटपनि की पाँति ॥
कुंजनि गुँजत-मधुप पुँज पिक कूञ्जति कै इतराति ।
कुसुमित अमित कुसुम नव वेली, निरझर सुधा चुचाति ॥
मन्द समीर धीर गति चन्द किरनि मनि भुव मुसकाति ।
मिथुन प्रगट मैथुन रस-सिन्धु माधुरी सी बरषति ॥
'श्रीव्यासस्वामिनी' पियके हिय पर,
विलसत हू न अघाति ॥ ३८८ ॥

राग-षट व गौरी—

सब अँगनि महँ उरज निसंक ।
चोली कसें बसें अञ्चल में तऊ न होत ससंक ॥
आगें आगें फिरत सबनि के सकुचत नहीं सकलंक ।
पहलैं दीठि परत ही पीठि न देत लगावत लंक ॥
बाल काल तब बाल विधु निरखत आँकौभरि अंक ।
सदाँ सकाम हृदय के भेंटत मेटत दारिद अंक ॥
गौर स्याम सोभा सागर जनु, कंचन मरकत पंक ।
'व्यासस्वामिनी' द्वै निधि बीच, बसाये रति रस रंक ॥३८९

राग-सारङ्ग—

तन छवि के फल उरज अन्यारे।
सहज स्वरूप सुवेस सुरेसी, गौर गात सित कारे॥
मन मोहन सुख दोहन देखत, प्रीतम पलक विसारे।
सर्वसु लूटत छूटत मानौं माई मनमथ वान अन्यारे॥
तोरत तनी तमकि चोली की, जोबनजोर उघारे।
'व्यास' न त्रास करत विषयनि सौं,
रति रन खर नख हारे॥ ३९० ॥

राग-षट—

याही तैं माई कुचनि के ओर भये कारे।
ये पियके नैंननिमें बसत, इनके पिय के तारे॥
भेंटत दुख-मेंटत सखि उरमें, नाहिन गड़त अन्यारे।
रति विपरीत मीत से लागत, जद्यपि जोबन भारे॥
हाथनि माँझ साँझ समात, रहत वासर अतिवारे।
अँचर डारि फारि चोली पट, सुभट लौं फिरत उघारे॥
श्रीफल, कनक कलस, गजकुम्भ, कविन छवि ऊपर वारे।
'व्यासस्वामिनिहि' लागत प्यारे, मोहन के रखवारे॥ ३९१॥

राग-नट—

बनै राधाके नैंन सुरङ्ग।
झलकत पलक अङ्क छवि लागत विडरे मनहुँ कुरङ्ग॥

मानहुं कमल परागहि चाखत, तारे चञ्चल भृङ्ग।
गोलक बिमल सरोदक खेलत मीन मनहुँ भ्रुव भङ्ग ॥
भृकुटि कटाच्छ बान मोहन मन बेधत व्याधि अनङ्ग।
व्यासस्वामिनी नागरनटहि नचावति सरस सुघङ्ग ॥३६२॥

राग-सारङ्ग—

मुख देखत दुख पावत नैंन।
काहू चोट पीर अति काहू, मोपै कहत बनैंन ॥
सम्पति विपति निसि की बिसरी, भोर भई कत ठैंन।
कपट प्रीति कौ सिद्ध समात न, हृदय सांकरे ऐंन ॥
निलज सलज़ सों वैर घेरु घर घरहू चलत सुनैंन।
लै उसास पितु पोषि व्यास प्रभु कण्ठ लगै दै सैंन ॥३६३॥

नैंन सिरात गात अवलोकैं।
इनि महँ सोभा सिन्धु समात न पलक साँकरी औकैं ॥
श्रवन होत सुख भवन हमारे, सुनत तुम्हारी टौकैं।
कहा कहा अनुभव कहिये हौ, सकल कला कुल कौकैं ॥
कुच कौ रस चाखत कर जैसैं, रुधिरहि पीवत जौकैं।
ऐसैंही 'व्यास' रसिक रस भोगी,
विरस दुखित सिर ठौकैं ॥ ३६४ ॥

पगे रङ्गीले नैंननि रङ्ग ।
अद्भुत छवि कवि कहि न सकत कछु,लाजत निरख कुरंग।।
मुक्ता मर्कत लाल कमल रस रचे कनक जल अंग ।
गोलक गति निर्मोल लोल मति देखि लज्यानैं भृंग ।।
तारे चञ्चल पलक पुतरिया, देसी राय सुधंग ।
चोज चाव नव हाव भाव लव सैंननि नचे अनंग ।।
कहिवैं कहत उपमा झूंठी खञ्जन मीन पतंग ।
अनत स्याम सर्वोपरि सकुचत'व्यासस्वामिनी सङ्ग ।।३६५

निरखि सखी स्यामा विहरति पियसौं ।
मुख महँ अधर, नाहु वाहुनि-महँ,
विछुरत नाही कुच युग हियसौं ।।
लट में लट, पट में पट अरुझे,
तनमें तन मन में मन हियसौं ।
मिलि विछुरी न 'व्यासकी स्वामिनि'
ज्योंव खाँड मिलि घियसौं ।।३६६।।

राग-धनाश्री—

सब गुन गौरी तेरे गातनि ।
कछु काम वस स्यामल हैं कछु,
मलय चन्द निसि प्रातनि ।।

मृगज, मीन, खञ्जन, गज,
हंस, हेम कपट के आतनि।
घन दामिनि पञ्चानन सुक,
पिक मधुप सर घातनि॥
नागर राग विराग लयै कछु,
सुधि कृपन धन-दातनि।
तव विलास छवि कवि न अगोचर,
कोटि कविन के तातनि॥
सबै भाव मन में क्यों आवत,
कहत सुनत सठ वातनि।
'श्रीव्यास' रसिक तव फल पायौ,
निरखत नैंन समातनि॥ ३९७॥

मनौं भई भूषनि कीसी पट कुटी।
वनी विचित्र उतंग तनो तनि,
देखति करति वट-कुटी॥
कर गहि चुटी लुटी रति रन महँ,
जहाँ जमुन-तट-कुटी।
'व्यासस्वामिनो' के आदेस,
सुदेस भई व लट कुटी॥३९८॥

राग-सारङ्ग—

विहरत राख्यौ रङ्ग अध्यारें ।
परे पीठ दै रूसत दोऊ लपटि भये नहिं न्यारे ॥
चञ्चल अञ्चल सनमुख ह्वै लै उसास दै गारे ।
वरवट ही आँकौ-भरि वन्धन करि हँसि नैंन उघारे ॥
अति-आवेस सुदेस देखियत, दूरि करत पट फारे ।
'व्यासस्वामिनी'रूठी तूठति पियके दुखहि विसारे ॥३६६

राग-कल्याण—

ओली ओढ़ति चोली तोसौं ।
मम हिय पिय के बीच बसत कत,
बैर करत बिनु काजहिं मोसौं ॥
अरुन नैन के पलक किये जिहिं,
ताहि कहाँ लगि कोसौं ।
पारति बीच 'व्यास'के प्रभु सौं,
ता पापिनि की नारि मसोसौं ॥४००

राग-देव-गन्धार—

अब मैं जाने हौ जू ललन,
ताही पै सिधारिये जहाँ नवो-नेहरा ।

मुख की हला भला मोही सौं करन आये,
जियकी ओरसौं, तुम बिन सूनौ है जु वाकौ गेहरा॥
निसि के चिन्ह प्रगट देखियत अँग प्रति अँग,
काहेकौं दुराव करत नख रेख लागे देहरा।
'व्यास' के स्वामी स्याम वेगि पाँय धरियौं,
नातर भीजैगो पीरौपट आवत है जु मेहरा॥४०१

राग–सारङ्ग––

आजु पिय काके हाथ बिकानै।
ताही कौ भाग सुहाग छबीलौ, जाके उर लपटाने॥
सुरत रङ्ग की अङ्गनि उपमा दुरति, न बनति वखाने।
उर नख, अङ्ग सोहत मानौं, ससि गन गगन समाने॥
पीक लीक नैननि फिरि आई, सोभित फल अलसाने।
मानौं अरुन पाट के फन्दनि, द्वै खञ्जनि अरुझाने॥
पीत अधर अन्जन रस राचे, परत नहीं पहिचाने।
मानों सरद ससि निसि के प्रात, सुधाकन वारि निधाने।
वसन रङ्गमगे केस रङ्गीले, विगलित स्वेद चुचाने।
मानहुँ भूमि पपीहा कारन, घूमि घटा घहराने॥
गण्डनि मनि-ताटङ्क अङ्क जनु, रथ चकपैया वाने।
वाहनि कुण्डल-मकर थके जनु, मनसिज कियौ पयाने॥

सनमुख पाँइ न धरत इतै धर, कुँवर कहा अकुलाने ।
लै धन चले चोर ज्यों भोरई, कुसमैहि देखि डराने ॥
उघर गई मुलमाकी वाजी स्याम कपट मन आने ।
करत कितव की आस 'व्यास',
सुनि बहुत लोग पछिताने ॥ ४०२ ॥

राग-धनाश्री—

ललिता राधाहिं नेंकु मनाइ दै ।
हों वलि जाँउँ नाम तेरे की,पर दुख में सुखहि जनाइ दै ॥
नागरि रस-सागर महँ मेरे, अङ्गनि रङ्ग सनाइ दै ।
मेरे तीन जाचकनि, पाँच पदारथ वेगि गनाइ दै ॥
सुनि हँसि रहसि उरसि लपटानी,मनकी बात बनाइ दै ।
'व्यासस्वामिनी रति गुन गति लै,
सर्वसु पतिहिं रिझाइ दै ॥ ४०३ ॥

राग-गूजरी (कमठैताल)—

कह भामिनि तूँ फूली फिरति ।
राति जगी नव रङ्गराय संग कतहि दुराव,
करति तूँ नागरि अङ्ग अँग झिरति ॥
नैन कपोल अरुन उर नख छवि,
अधरनि रँग कुसम सिर कीरति ।

'व्यासकी स्वामिनी' जोबन मदमाती,
गजगामिनि कैसें घेरी घिरति ॥ ४०४ ॥

राग-गूजरी--

अधर सुधा मद मोहन मोह्यौ।
भुज वन्धन बन्धवाइ पाइ सुख,
कुच गिरिवर भरतार चपि सोह्यौ ॥

खर नखरेख सुरेख गण्ड छबि,
खण्डित दसन बसन रति मानत।
गुरु नितम्ब अँग हन आनन्दित,
कच करसत हरषत हँसि जानत ॥
रवनी कौ रति रोष रवन कहँ,
पोष रहतु हरन मान कौ।
'व्यास' काम गति वाम स्याम हू,
तृपति न राधा सुरत दानकौ ॥४०५

राग-कल्याण--

मेरौ कह्यौ मानि री भैंनी।
अटकरु पायौ नटनागर कौ,
प्रान तूँहीं मृगनैंनी ॥

हिय में पियहिं राखि तूँ खेलति,
कहत पिसुन चल सैंनी।
अँग अँग रति रंग रचे हौ,
सूचति अति मो सों सुखचैंनी ॥
खण्डित अधर, गण्ड पुलकावलि,
सक सकाति सुख ऐंनी।
चोली नेंकु जु खोली सुन्दरि,
मनौ मदन की गिरी गुरैंनी ॥
दुरत न चौरी कुँवरि किसोरी,
कहत और सब छूटी बैनी।
प्रगट पीक नख लीक कुचनि जनु,
कनक कमल पर छैंनी ॥
चँक विलोकनि, हँसनि छबीली,
सकुच परम सुख दैंनी।
'व्यासस्वामिनी' स्याम सँग जनु,
दूध भात महँ फैंनी ॥ ४०६ ॥

राग-सारङ्ग—

कामवधू कन्दुकसौं क्रीड़त,
सुनि राधा, पिय सन्मुख आवति।

कमल पटल तजि, तव मुख सनमुख,
देखि तूँ मधुपावलि धावति ॥
सम्भ्रम भामिनि चितवतहिं पिय,
चूँबित ललित रतिहि उपजावति ।
छलबल करि हरि राधा विहरत,
देखत व्यास सखी सचुपावति ॥४०७॥

राग-विलावल व विहागरो—

आजु अति सोभित सुन्दर गात ।
अरुन सु लोचन पिय दुख मोचन, अति आतुर अकुलात ।
डरत न हरत परायौ सर्बसु, मन्द मन्द मुसिकात ॥
मानहुँ रंक महा निधि पाई, फूले अँग न मात ।
'व्यास' कपट फल तव पाहुगे,
जबहि मदन सर घात ॥ ४०८ ॥

राग-नट--

बतरस कत बौरावति मान दुरावति मेरौ ॥
सुमुखी तुहीं दुख पावतु रूसैं प्रान रवन विलपत री तेरौ ॥
तेरौई चरन सरन सुन्दर कौं विरह सिन्धु तरिवे कहँ बेरौ ।
कामहि स्यामहि कठिन परी सखी तोहीतें अब होत निवेरौ ॥

हा ! राधे हा ! प्रान-वल्लभा, रटतु कुँवर कुञ्जनिकरिफेरौ ।
'व्यासस्वामिनी' रहसि विहँसि मिली,
रसिक कियौ बिनु दामनि चेरौ ।। ४०६ ।।

राग-सारङ्ग—

मूरतिवन्त मान तेरे उर फब्यौ कठिन कुच भेष ।
याही तें सुख में, दुखके मुख हँसत न नैंन निमेष ।।
प्रान रवन की तजि परतीति अनीति बढ़ावत तेष ।
सुभग जामिनी घटति भामिनि, रति बिनु जान अलेष ।।
'व्यास' वचन सुनि पियहि दियौ सुख,
वरनत विथके सेष ।। ४१० ।।

सुखद मुखारविन्द बिनु सुन्दरि स्यामहि लगी चटपटी ।
पिय की बाधा मेटति राधा छाँडहि टेव अटपटी ।।
मेरी मिलत बसीठी तेरी सब ही बात लटपटी ।
'व्यासस्वामिनी' सुनत पियहि मिलि विरह घटपटी ।।४११।।

राग-गौरी—

लागीरी मोहि तालावेली ।
स्याम काम बस विलपत वन वन,
फिरत हैं अरु राधिका अकेली ।।

नैंन चटपटी प्रीतम बिछुरैं,
कहा करौं तन छुटत नाहिनैं सहेली।
सुनत 'व्यासकी' स्वामिनि पियसौं,
हियौ मिलावति सुरत सिन्धु में खेलत झेली ॥४१२॥

राग–षट (गजतिताल)—

सुनहि सुचित ह्वै सुन्दरि गुपत सन्देसौ स्याम कह्यौ।
कठिन दह्यौ जिहि वारक चाख्यौ ताहि न रुचित मह्यौ ॥
सुवसु सरोवर सूखि गयेहूं, दादुर धीर रह्यौ।
पावस ऋतु बिछुरें सब सूखैं, चातक सबै सह्यौ ॥
उपहति बहुत सहति मृग वनसों, प्रीति रीति निबह्यौ।
एक एक अङ्ग के सुख विनु दुखसागर नहिं परतु थह्यौ ॥
सब कोऊ अपनौ हठ पोषत करि जेहीने जु गह्यौ।
'व्यासस्वामिनी' सुनत मिली हँसि, करुना सरु उमह्यौ॥४१३

राग–गौरी—

छलबल छैल छुवत कत पाइ।
अपनौं काजु सँवारि, औरकौ काज विगारत आइ ॥
सटपटात लघटात कपट दुख देख मुखहिं दिखराइ।
जामहि जाइ दुरावत सोई चोरी देत बताइ।

मानहुँ कीर चतुरई तुव तन कहत महा पछिताइ।
पोष्यौ भर्यौ कहूँ हूँ कैतव कहूँ लगाये घाइ॥
नैंन पिसुनता करत सैंन दै, बरजत तुम अकुलाइ।
कुटिल सँग भ्रू-भंग रंग सुख कहत रहै मुसक्याइ॥
घर कौ चोर बिकारी सौं कछू काहू कौ न बसाइ।
व्यासस्वामिनी बिहसत, मोहन कण्ठ रहे लपटाइ॥४१४॥

राग–कल्याण—

राति अकेलें नींद न आवति।
सुनि सखी हौं पियसों कत रूसी, पावस चितहिं चलावति॥
बोलन लागे मोर, पपीहा, कोयल काम बढ़ावति।
घन घोरत चितुचौरतु कामिनि दूती चमकि मनावति॥
लै करि अपने साथ नेंक महँ, सूनी सेज न भावति।
प्रीतम बिछुरे कौ दुख तेरे मुख की छबि विसरावति॥
बोल बन्धान भयौ, मिलि पौढ़तु उर सों उर लपटावति।
कुच बिनु सकुच न जानि 'व्यास' की
स्वामिनि अति सुख पावति॥ ४१५॥

राग–सारङ्ग—

किसोरी सहचरि संग चली।
जिय की वाँनि हानि करि मानी सुनि पिय की मुरली॥

सुनत सुरनि सज्जति ह्वै लज्जति, उझकति कुञ्जगली।
मैंन विवस ह्वै भई ठेंन वीचही,मोहन मिलि कर्म बली ॥
उरसौं उरज मिलत न झिलत सुखसागर बढ़े अली।
हरि मधुपहि मधु प्यावत'व्यासस्वामिनी'कमल कली॥४१६

राग-नट—

वसीठी सैंननि ही जोरी।
रूठेहूं न तजी चञ्चलता, जानत चित-वित्त चोरी ॥
कुँचित नासा लोल कपोलनि,मोहति मन मुख मोरी।
अङ्ग अङ्ग प्रति रतिरस लालच, साहस चिबुक टटोरी ॥
काम कनक सिंहासन तरलित, सिथिल वसन कटिडोरी।
कम्पित कुचकर जघन अधर उर श्रमजल पुलक न थोरी॥
नैंननि राची भौंहनि विरची, हँसि पिय कुंवरि निहोरी।
कैतव गुरु गोपाल 'व्यास' प्रभु,चरन गहै लट छोरी॥४१७

राग-कल्याण—

रुसत हूँ तूषत दोऊ मन मन।
मैंन विवस सैंननि दै विहसत,
वैंन सुहात न कन कन ॥
नीवी छोरि निहोरति गोरी,
मूंदि श्रवन कहै जन जन।

गौर चरन हिय धरि पिय समुझि,
बजावत किंकिनि खन खन ॥
ओलि पसारि खोलि चोली,
दुख मेंटत भेटत थन थन ।
जमुना पावस ऋतु हित करि,
दामिनि सौं मिलि घन घन ॥
सुरत सिन्धु पोष्यौ मोहन मुनि,
कीनौं जप तप बन बन ॥ ४१८ ॥

कुण्डल जुगल फन्दन डर लोल,
द्वै गोलक घटतें सटके ।
सुख पायौ इनि लोभिनि मिलि,
मकरन्द बृन्द रस गटके ॥
मिलत सहेली सुदेसु परिहरि,
दोऊ सर्वसु देत न मटके ।
घूँघट पट पिञ्जरा महँ निजुकुल,
निरखत कोरनि ठटके ॥
कातरता तजि, चातुरता सजि,
निजु कंचुकि महँ लटके ।

तोसौं जोरि हितु मोसौं तोरि,
चितु तातैं मैं नहिं हटके ॥
'व्यासस्वामिनी' तेरे कारन,
घन वन कुञ्जनि भटके ॥४१६॥

राग-देवगन्धार—

छिड़ाइ लये तैं मेरे नैंन ।
वँक विलोकि सुमार बिहसि किये,
भौंह धनुष सर सैंन ॥
देखत गुन गति मति हरि लीनी,
दै कजरा महँ ऐंन ।
इनही मेरौ मन मोहयौ,
ह्वै गई पलक सौं ठैंन ॥
तारे तरल पुतरिया कोये,
रतिरस में ये मैंन ।
सहज मोहनी इनही की यह,
कि धौं कियौ कछु तैंन ॥
उन बधिकनि ये मृगज गीधे,
बिधये लट फन्दनि चैंन ।

बिलगु न मानैं हिलगि हिये की,
'व्यासहि' कहत बनैंन ॥४२०॥

राग-रामकली—

सदाँ वन बरषत साँवल मेहुरी।
अरु दामिनि कौंधति दुहुँदिसि,
निसि टूटे जुरत सनेहुरी ॥
घूम घुमरि नान्हीं बूंदनि लागत,
अति जुडात तहँ देहुरी।
दादुर मोर पपीहा बोलत,
डोलत छाँड़ै गेहुरी ॥
हरित घरनि महँ बूढ़नि रैंगति,
निरखत रहतन तेहुरी।
'व्यास' आस सबही की पूजी,
जीवन कौ फल लेहुरी ॥४२१॥

स्फुट ब्रजलीला रस

राग-सारङ्ग—

नाँचत गोप पराग फूल फल,
मधुधारा महँ धरनिहि बोरी।

पुलकि पुलकि गौ, गिरि, गोपीकुल,
सर उमगत, सरिता गति थोरी ॥
इहि विधि डोल बसन्त माधुरी,
सुन्दर वृन्दावन महँ घोरी ।
स्याम तुम्हारे राज लाज तजि,
'व्यास' निगम दृढ़ सीवाँ तोरी ॥४२२॥

राग-धनाश्री—

कन्हैया देहि धौं, नेंकु हेरी ।
अपनौं राग सुनाउ छवीले हौं बलिहारी तेरी ॥
मो सन्मुख नेक गाइ बुलाउ, आँखि चाँपि नेकु डेरी ।
वैनु बजाउ लटकि मेरे लटकन नाँचहि दै दै फेरी ॥
सुनि मोहन, सब कियौ, दियौ सुख,
व्यास मोल बिनु चेरी ॥ ४२३ ॥

राग-गौरी—

आवोरे आउ भैया से हे हेरी दीजै ।
गाइ बुलाउ दुहाउ छवीले, मथि मथि घैया पीजै ॥
आस पास गोपाल मण्डली, मिलि कोलाहल कीजै ।
मुहुवर वेनु वजावत गावत, आनन्द ही तन भीजै ॥

गौरस बेचन जाति ग्वालिनी, घेरि दान किन लीजै।
'व्यासदास' प्रभु झगरत घर वन,
आनन्दहि सुख जीजै ॥ ४२४ ॥

ग्वाल चवैनी ग्वाल चवात।
मीठी लागत मोहन सँग घर की छाक न खात॥
टोरि पतउआ जोरि पतोखी पय पीवत न अघात।
मधुर दही के स्वाद निवेरत, फूले अङ्ग न मात॥
कबहुँक जमुना जलमें पैरत, मोहन मारत लात।
बूड़क लै उछरत छलबल सों, स्याम गात लपटात॥
कबहुँक खग मृग भाषा बोलत, वन सिंघै न डरात।
अद्भुत लीला देखि देखिकैं,'व्यासदास' बलिजात ॥४२५

कान्ह मेरे सिरि धरि गगरी।
यह खारी, पनिहारी कोउ न, मनसा पुजवत सगरी॥
राति परी घरु दूरि डर बाढ्यौ, मेरी सासुज नगरी।
देहु पीतपट करहु इएडुरी, छाँड़हु छैल अचगरी॥
अञ्चल गहि चञ्चल बने, झगरत नगरत लट बगरी।
विहरत 'व्यासदास' के प्रभु सौं,
ग्वालिनि सुख लै डगरी ॥ ४२६ ॥

जमुना जातिही हौं पनियाँ ।
बीचहिं भई और की औरहि,
मिलि गये मन मोहनियाँ ॥
मोतन बिहँसि विलोक्यौ नागर,
चलि नैंननि की अनियाँ ।
धीरज रह्यौ न कह्यौ परै कछु,
रवकि लइ हौं कनियाँ ॥
चिवुन पकरि चुँवन करि खोली,
चोली छुन तन तनियाँ ।
सघन कुञ्ज लै गयौ लालची,
हाथ परे कुच मनियाँ ॥
परी मुहरत वैस ही भागन,
पायौ प्रान-रवनियाँ ।
'व्यास' मिलाये केवल छैलहिं,
मिलत गैल पर धनियाँ ॥ ४२७ ॥

राग-गौरी (तर्ज (तिताला)—

आजु जिन आउरी भाई कोऊ पनघटि है मोहन फैंटी ।
नन्दकिसोर दुरयौ कुञ्जनि में, चोर देत है सैंटी ॥

बाट चली आवत हीं वरवट, नागर सौं भैंटी ।
परसत ही धीरज न रह्यौ तन, मनसिज आन खसैंटी ।।
तोहि निहोरौं सुन्दरि मेरौ, बचन मानि गुजरैंटी ।
पुजई आस 'व्यास' के प्रभु की,
कुसुम सेज पर लेटीं ।। ४२८ ।।

राग-सारङ्ग--

भूली भरन गई हो पानी ।
गैल बतावहि छैल छबीलौ, तू न परत पहिचानी ।।
मेरी सासु त्रासु करि है घर, मेरौ पति अभिमानी ।
कुलकी नारिहिं गारि चढै, जो वनमें रैन विहानी ।।
झलकति गागरि अलक सलिल भई,सारी स्वेद चुचानी ।
सीत भीततें कम्पु बढ्यौ, विपति न जात बखानी ।।
मेरे भागनि भेट भई तोहीसों, मारनि चाँदि पिरानी ।
नेंकु उतारहि पाँइ परत हौं, तौतें कौंन सयानी ।।
दीन बचन सुनि सदय हृदय के,निरखत मुख मुसकानी ।
पूजी आस 'व्यासदासी'की,देखत आँखि सिरानीं।।४२६।।

सघनकुञ्ज वन-वीथिनि वीथिनि,
अरुझति पनियाँ जात ।

निकट बिकट कण्टक पट फाटत,
दुख पावत सुखदात ॥
खूर खुदे तृन पथ भूलत,
वेपथ नैंन चुचात ।
औमल पट खैंचत नीवी,
कुच कटि कंचुक न समात ॥
खण्डत गण्ड अधर प्रचण्ड,
सखि कासौं कहिये बात ।
स्यामहि देत अलोक लोक सब,
'व्यास' न मोहि सुहात ॥४३०॥

राग-गौरी—

ऐसे हाल कीनेरी नागरनट ।
गौरस बेचन जाति अकेली,
आनि पर्यौ औचक जमुना तट ॥
फौरि मथनियाँ तोरि मौतिन लर,छौरि कचुकी,
गहि झकझोरि अञ्चल चञ्चल लट ।
फारत पट,कुच-घट औघटरी 'व्यासहि'
देखत भागि चढ्यौ वंसीवट ॥४३१॥

राग-धनाश्री--

चन्द्रवदन चन्द्रावलि गावै ।
सोने कीमडुकिया पाट की इण्डुरिया,
सिर-धरि-गौरस बेचन आवै ॥
घेरें रे भैया हौ जैसैं जान न पावै,
इहि सघन कानन वन ऊबट बाट घाट धावै।
आजु नन्दबाबाकी सोंह दान लै,तब छाँड़ौ याहि,
जोबन गर्व यह अधिक कहावै ॥
बतरस अटकति भोंह नैन मटकति,
छलकरि कुच घटनि दुरावै ।
अञ्चल कंचुकी लट-गहितहीं रूठ्यौ देत,
मुरली छिड़ाय लेत अँगूठा दिखावै ॥
आजु हौं कन्हैया लूटी, मोतिन की लर टूटी,
चूरा चांपि फूटी,घर झूँठी ये बनावै ।
'व्यास'जोरन बीच हौत,को जानैं कहा यह करतौ,
ऐसी बातें जोरि ब्रज माँझ सुनावै ॥४३२

राग-गौरी—

छाड़िये नागरनट की नगरी ।
गैल साँकरी छैल गही लट, जाति हुती डगरी ॥

पनघट गहें उरजघट घाटहिं, गहि राखी गगरी ।
चुँवन के बदले में दीनी, मुक्ता लर सगरी ॥
वरवट हौं लै गयौ गहवर वन, अपनौ सौ हैं झगरी ।
मेलि मोहनी वसकरि मोहि, लगाय टकटकी टकरी ॥
अब कहि कैसैं रहिये ब्रजमें, हमहि ये सबै अचगरी ।
'व्यास'सुनत उपहाँस त्रास नहिं,जोबन जोर उमगरी॥४३३

राग-सारङ्ग—

नाहिंन काहूकी स्यामहि संक ।
आइ औचक लट-गहि मेरी चोली चटकि निसंक ॥
मुरि मुसकात सकात चोर चितु, चितै विलोकनि बंक ।
भागि चलै छोरै पुनि टोरै, कितवनि कहाँ कलंक ॥
अञ्चल फारि उतारि हार उर दीने खर खन अंक ।
कुञ्ज-कुटीर गयौ लै छलबल छैल तोहि भरि-अङ्क ॥
रँग रहयौ न कहयौ परै मोपै, माँची रति रन पंक ।
'व्यास'आस पुजई तन मनकी,निधि पाई जनु रंक॥४३४॥

गई ही खरिक दुहावन गाइ ।
खोरि साँकरी छैल छबीलै अञ्चल पकरयौ धाइ ॥
तैसी निसि अँधियारी, तैसौई स्याम न जान्यौ जाइ ।
इहिं गौरे तन घर के भेदी, वन में दैय बताइ ॥

कुचयुग-घट अटके नागरनट, कण्ठ रहे लपटाइ।
सखि सुधि बुधि न रही तिहिं अवसर धरनि परी मुरझाइ॥
सुखमें दुख उपजत उत देखत नैन मुदे अकुलाइ।
परी हती हौं आरज पथ में, लीनी 'व्यास' बचाइ॥४३५॥

राग-गौरी (तिताला)—

आजु मैं-मोहनकौ मुख मोह्यौ।
दह्यौ मथत चञ्चल अञ्चल महँ,
छबि देखि कुँवर जोह्यौ॥
नैंन-भवन कुच-कमलनि अटक्यौ,
लटकत लटकन सोह्यौ।
बिकल स्याम गैया के धोखें,
लोई बृषभु सों दोह्यौ॥
चितै बिचेत भई मुहिं जानी,
पानि निजु हियौ टटोह्यौ।
परवस रसिक 'व्यास'कौ स्वामी,
प्रीति रीति सर पोह्यौ॥४३६॥

राग-सारङ्ग—

गोविन्द मेरे मन भायौ।
आनन्दकन्द नन्दनन्दन सखि,
भागनहीं मैं पाइ कण्ठ लपटायौ॥

सुख-सागर-मँह मगन भये इहि,
रस झर में जेहिं झर लायौ।
को हौं को वह को निसि वासर,
वन किहि बिसरायौ ॥
हिलग बावरी विलग न जान्यौं,
विधि संयोग बनायौ।
जौ पै 'व्यास' प्रभुहि भाइ इतनौं,
कुलोक अलोकु अझायौ ॥४३७॥

राग-कल्याण—

कान लगि सुनहि सखी तौ कहौं मते की बात।
हानि कानि दोऊ न रहति री, पाँचनि में पछितात ॥
नेंकु अँगुरिया परसत साधु, कुम्हड़े नौं मरि जात।
सुनत मिलैं मुंह चार कनभरा, फूले अङ्ग न मात ॥
नाहिंन लाज सकुच डर अपने, गुरुहिं दुरायैं खात।
कहा द्वारि गरि भागनि वै सौं, दूधु पीयत अघात ॥
सुनत सखी लै उसर कुञ्ज गई, सुन्दरि अति अकुलात।
'व्यास' त्रास तजि मिलत कपोलनि,
चुँबन दै लपटात ॥ ४३८ ॥

राग-देवगन्धार—

मन मोह्यौ मेरौ मोहन माई।
कहा करौं चित लगी चटपटी,
खान पान घरु वन न सुहाई॥
विहँसनि बँक बिलोकनि सैंननि,
मैन बढ्यौ कछू कहत न जाई।
अद्भुत छबि बदनारविन्दु की,
देखति लोक लाज बिसराई॥
मेरैं साहस उनके बाहस,
मनचीती विध भली बनाई।
पालागौं यह कहहि कहूँ जिनि,
विरस न जानैं लाज पराई॥
रह्यौ न परतु, कह्यौ बहुतनि मिलि,
है न होहि कबहूं सुखदाई।
व्यास त्रास करि को अब छाँढ़ै,
भागन पायौ कुँवर कन्हाई॥४३६॥

राग-धनाश्री—

जो भावै सो लोगनि कहन दै।
अबनि पिछौड़ौ पाँव न दीजै,
न्याव मेटि प्रीति निबहन दै॥

हौं जोबन मदमाती सखीरी,
मेरी छतियाँपर मोहन रहन दै॥
नवनिकुञ्ज पिय अङ्ग सङ्ग मिलि,
सुरति-पुञ्ज रससिन्धु थहन दै।
या सुख-कारन 'व्यास' आस कै,
लोक वेद उपहास सहन दै॥४४०॥

राग-आसावरी--

गोविन्द सरद चन्द वन मन्दहास सोहै।
नटवर-वपु-वेष निरखि सकल लोक मोहै॥
मेघ स्याम पीत-बसन वनमाला सोहै।
बरह-धात गुञ्ज-पुञ्ज उपमा कौ कोहै॥
वंसीवट वेनु-नाद सब कौ मन-मोहै।
गोरी चितु चोरि लयौ विकल वृषभ दोहै॥
मोहन धुनि सुनत लोह-चुम्बक बिछोहै।
'व्यास' मन्द, स्यामहि तजि और प्रभुहि टोहै॥४४१॥

राग-गौरी—

बजायौ कौनें वन महँ बैंन।
मोहनि धुनि सुनि मुनिमन मोह्यौ,
बाढ्यौ नख सिख मैंन॥

मोहन बीर सुरकेताननि,
बाननि बींधे उरकौ ऐंन।
तजिये सुत पति सम्पत हीरा.
भजिये कुसुमनि कौ सैंन॥
चली अली सब तजि, सुन्दर,
पहिं आईं मेटि कु-चैंन।
नैंन चषक भरि पीवत जीवत,
हरि दरसन पय फैंन॥
पियकौ हियौ जानि नहिं मानैं,
वचन परसि पद रैन।
'व्यासस्वामिनी' की सब सहचरि,
रास नची दै भैंन॥ ४४२॥

राग-सारङ्ग--

दुहुँ आतुरन चातुरता भूली।
कुञ्जगली अनबोले डोलत, भेट भई सुख मूली॥
स्याम पीतपट सेज करी, स्यामा निज्ञ कुंचुकी खूली।
रजनीमुख सुख देख परस्पर, चितवत भूला हूली॥
अङ्ग टटोरी अँगुरियनि बातै, कहत कुँवरि सुख फूली।
पिय हिय सुख दै 'व्यासस्वामिनी',
सुरत डोलि चढ़ि भूली॥ ४४३॥

राग-गौरी—

भोर किसोर चोर लौं सकुचत,
फूले अङ्ग न मात।
चोरी फबी न थोरी,
चोरयौं करत तुम्हारे गात ॥
नैंन भरे सुख, चोर सैंन दै,
कहत गुपित की बात।
सनमुख पाँइनि परत डरत कत,
सुखहू में पछतात ॥
भागु रावरौ कपट करत हूं,
महँगे मोल बिकात।
सुनत अनादर हँसत जात,
बरवस ही उर लपटात ॥
सर्वसु दान 'व्यास' जौ दीजै,
तौलौं मीन अघात ॥ ४४४ ॥

राग-सारङ्ग—

रंग भरे लालन आए मेरैं हौं देखत भूलि रही।
चित्र बिचित्र बनाव कियौ अङ्ग अङ्ग,
अनङ्ग कोटिवारौं, मोपै सोभा नहिं परति कही ॥

जब मुसक्याय चितै सैंननि दै,
नैंननि सौं नैंन मिलत मेरी बहियाँ गही।
अति नवीन प्रवीन सब ही अङ्ग 'व्यास' कौ,
प्रभु, चाहत सुरत केलि सुख ही ॥४४५॥

राग-धनाश्री व आसावरी—

माईरी मेरैं मोहन आये।
बहुत दिनन के बिछुरे भाग बड़े घर बैठे पाये॥
करि न्यौछावरि तन मन धन जोवन, आनन्द गीत गवाये।
चौवा चन्दन चौक पूरि मैं, मंगल कलस पुजाये॥
मगन भयौ मन में मनु हँसि, नैंननि सैंन मिलाये।
कछुवन सकुच रही तिहि अवसर उरज उमगि उरलाये॥
भये मनोरथ पूरन मेरे सब परिताप बुझाये।
'व्यास' काम बस हम दोऊ जन,
सिगरी राति जगाये॥ ४४६॥

राग-कल्याण—

कठिन हिलग की रीति प्रीति करि लम्पट पै न अघात।
अति आतुर चातुरता भूलत प्रीतम कह अकुलात॥
परत तेल में माखी मरति न जानत दुख की बात।
चञ्चल चेंटी चाखि राब रसु प्रान बिसरि लपटात॥

चञ्चल मृग घण्ट सुनि सिर धुनि, बैठि बधावत गात।
परत पतङ्ग दीपज्वाला महँ, आरत काहि डरात॥
चोर, चकोर, मोर, निसि, ससि, घन, देखत नैंन सिरात।
सबसों कपट करत अलि, कमलहिं जीवन दै अरुझात॥
धावत कृपन धनहिं गहि राखत, काहू देत न खात।
जियत महीरुह सरिता चातिक, घन बूंदनि चुचबात॥
जा बिनु मीन, जलज नहिं जीवत दादुर नहिं पछतात।
'व्यास' बचन सुनि कुँवरि कुँवर के,
कण्ठ लागि मुसकात॥ ४४७॥

राग—देवगन्धार—

आजु पिय राति न तुम कछु सोये।
कौंन भामिनि के भवन जगे हरि,
जाके रस-बस मोये॥
रति रस उमगि चले नखसिख अङ्ग,
नीरस अधर निचोये।
खण्डित मण्ड पीक मुख की छबि,
अरुन अलस अति पोये॥
जावक पोक मषी रस कुमकुम,
स्वाद बासना भोये।

लटकति सिर पगिया, लटबिगलत,
सुन्दर स्वाँग सजोये ॥
तन मन कारे हौंहिं न गोरे,
कोटि बारि जो धोये।
खोटी टेव न तजत 'व्यास' प्रभु,
मैं कै बार बिगोये ॥ ४४८ ॥

राग-धनाश्री--

सर्वसु लूटि छूटि क्यौं आये।
सकुचि न करी सारी ओढ़ैं, नैंन न दुरत दुराये ॥
लटपटी पाग, सटहटे पाँइ परत ही, तुम लखि पाये।
ता कहँ दुख दै सुख सनमुख कै, हम कहँ अति दुख लाये ॥
नाक महावर काजर कौ रंगु अस सुरँग रंगाये।
एक घरी के बिछुरैं 'व्यास' त्रास तजि भये पराये ॥४४९॥

राग-सारङ्ग—

राख्यौ रङ्ग कौंन गोरी सौं।
सुनहु स्याम छबि आइ कित, व तुमहिं लहनौं चोरी सों ॥
चन्दन बिन्दु ललाट इन्दु सम, सिर बन्दन रोरी सों।
अधरनि अञ्जन रेख न मेप नैंन अरुन तेरी सों ॥

भोर किसोर चोरलौं आये प्रीति करत भोरी सों।
सौंह करत चीन्हैं पर कछू वसाइ न बरजोरी सों॥
नील निचोल प्रगट चोली भूषन चूराडोरी सो।
जानति सबै 'व्यास'के स्वामिहि प्रीति टराटोरी सों॥ ४५०॥

मौंगे रहहु तुम कहहु जिनि बात।
सुनहुँ किसोर चोर तुम खोटे,
आये प्रगट प्रभात॥
सकुचत नख कुच अँक दुरावत,
नील वसन महँ गात।
मनौं द्वय राकानिसि ससि गन,
घन में मुदित न मात॥
ता महँ अद्भुत छबि उपजति,
उर जावक जुत पद लात।
मनहुँ सुधा मधु वरषि मिले रिपु,
मति तजि विधु जलजात॥
पीक अधर खण्डित मषि मंडित,
फूले अँग न मात।
मानहु विद्रुम मर्कतमनि मिलि,
कनक खचित मुसिकात॥

लोचन पीक लीक रस रंजित,
अरुन अलस इतरात।
जनु कुमकुम मकरन्द सु रंजित,
भ्रमर भ्रमत न अघात॥
जानत हूँ मानत नहिं चोरी,
ता ऊपर अनखात।
'व्यास' न करत त्रास दुख दाता,
बरबट उर लपटात॥ ४५१॥

राग-कल्याण—

आये माई प्रात कहाँ तैं नाहु।
गात चुचात सुरत रस मोहन, नैंननि बहुत उछाहु॥
खण्डित-गण्ड, अधर-मण्डित दर्पन तन धौबाहु।
जैसी प्रभुता दिन दिन वाढ़ी कोटिक हाथ बिकाहु॥
चा कहँ सुख अखिल दुख दै मोहि,
पिय अबजिनि तुम लपटाहु।
जासौं हिलिमिलि राति पगे,
अब वेगि तहीं तुम जाहु।
सुनहु 'व्यास' के प्रभु तुम,
ऐसौ कीनौं कपट निवाहु॥४५२॥

मोहन न्याउ कहावत स्याम ।
भोर किसोर चोर लौं आये, जगे कौंन के धाम ॥
कितवनि के भैयनि की लेंहु बलैया, हँसनि ललाम ।
मुख देखे विनु सुख न पाइये, दुख न रहत सुनि नाम ॥
नखसिख अङ्ग अनङ्ग सँग रति रंग रचे अभिराम ।
अद्भुत छवि की छटा विलोकत लोचन मिलत न वाम ॥
महँगे मोल बिकानें पर धन, जोबन बल बिनि दाम ।
'व्यासहि' है परतीति तुम्हारी,
संगति कौ फल काम ॥ ४५३ ॥

राग-देवगन्धार—

आजु पिय पाये मैं जानि ।
कहत बचन बृषभानकिसोरी, तुम्हरी कहाँलगि कीजै कानि ॥
सूचत सुरत-प्रसंग सकल अँग, कतहि दिखाये आनि ।
अधरनि-अञ्जन, नयन-पीक-रस, उर नख रेख सुवानि ॥
कहहु कृपाकरि कैसैं आये, बहुत सही सुख हानि ।
मदअन्तिका मषि जावक रंग, कहाँ रँगाये पानि ॥
जानत हौं परधन रसलम्पट कपट सम्हारी थानि ।
कैतव कपट तजत नहिं कबहूँ,
'व्यास' वृथा पहिचानि ॥ ४५४ ॥

भोर भयैं आये पिय जीय महँ,
सकुचात हौ न सन्मुखहू चितवत।
वारक चूक परी तौ कहा भयौ अवगुन,
करि, अश्रुन भरि, कत नैंननि रितवत॥
सब अङ्ग रति रस रंगे लाल तुम याके,
रसवस नहीं जानत रैनिहू बितवत।
काकी आस 'व्यास' के स्वामिहि टेव परी,
खोटी लोटि पोटि हारेहू जितवत॥४५५॥

राग-षट व आसावरी—

स्यामा स्याम बलैया लैहौं।
दुख सुख तजि बृन्दावन रहिहौं॥
अति पावन जमुना जल न्हैहौं। ब्रजवासिनकी जूठनि खैहौं॥
वंसीवटकी छैयाँ रहैहौं। कुञ्जनि छाँड़ि अनत नहिं जैहौं॥
श्रीराधा रूसी वेगि मनैहौं। क्रीड़ा रस पीवत न अघैहौं॥
सुन्दर नाम स्याम गुन गैहौं।
'व्यास' कहत रासहिं मन दैहौं॥४५६॥

श्री माध्वमत मार्तण्ड अनन्यरसिक परमवैष्णव श्रीव्यासजू कृत
विविध वनविनोद विलासिनी, भाविकजन मनभावनी
शृङ्गार रस-विहार सु-वानो उत्तरार्द्ध सम्पूर्ण।

सिद्धान्तरस के स्फुट पद

राग-विलावल—

जगजीवन है जीवनि-जगकी ।
दीन, हरिहिं आधीनव जेसैं,
औरन गति वोहित के खग की ॥
जैसैं दम्भु अम्बु महँ ठानत,
होत जीविका वग की ।
ऐसैं कपटी नभ भट नाइक,
पिटभरि करत ठगौरी ठग की ॥
पण्डित मुण्डित तुण्ड बल भोगी,
आसा बढ़ै कुटुम्बहि मगकी ।
सो को व्यास न वन्ध्यौ दुरास ज्यौं,
गनिकाहि कठिन-कुच भगकी ॥२६२॥

राग-नट व आसावरी—

मुहँ पर घूँघट नैन नचावै ।
बातन-ही की लाज जनावै ॥
अपने ही मुँह सुपत कहावैं ।
जारुहिं लीन भरतार न भावै ॥

बाहिर पहिर औढ़ि दिखरावै।
भीतर विष की बेलि बढ़ावै॥
सोई सुहागिल सती कहावै।
गुन बल जो इहि भाँति रिझावै॥
अञ्जन मञ्जन कै भरताहि नचावै।
'व्यासुजु' साँचे सुख नहिं पावै॥२६३॥

राग-गौरी—

स्याम कृपा बिनु दिन दुख दूनौ।
अपनैं ही अभिमान जरत जग,
भयौ काज अति भूनौं॥
भक्ति मुक्ति कौ दाता है हरि,
प्रभु वगसत अति पूनौं।
कूरनि कौं मुहरें देत,
'व्यास' कौं ईंट पाथर चूनौं॥२६४॥

तन छूटत ही धर्म न छूटै।
जीवत मरैं न माया छूटै,
काल कर्म मुँह कूटै॥
पुत्र कलत्र सजन सुख देवा,
पितर भूत सब लूटै।

कबहुँ रङ्क राजा कबहूँ ह्वै,
विषै विकार न छूटै ॥
साधु न सूझै गुन नहिं बूझै,
हरि जस रस नहिं घूटै।
'व्यास' आस घर घालै जगकौ,
दुखसागर नहिं फूटै ॥ २६५ ॥

❀ दोहा ❀

श्री व्यास गिरा निधि रत्न पद, कच्छप की उनिहार।
माला नित वल्लभ रची, रसिकन उर आधार ॥

श्रीव्यास-वाणी सम्पूर्ण

प्राप्त स्थान —

१. व्यास घेरा, वृन्दावन ।

२. श्रीविष्णु ग्रन्थमाला
वृन्दावन ।

३. लाड़ली बुकडिपो,
वनखण्डी महादेव,
वृन्दावन ।

